राजस्थान के शाहाबाद क्षेत्र के पुरातत्व का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

Historical and Cultural Study of Archaeology of Shahabad Area of Rajasthan

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की
सामाजिक विज्ञान (इतिहास) में
पी–एच.डी. उपाधि
हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशिका :
डॉ. शकुन्तला मीणा
उपाचार्य (इतिहास विभाग)
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
सवाईमाधोपुर (राज.)

शोधार्थी :
जया भार्गव

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2015–16

Certificate

This is to certify that the thesis entitled **"Historical and Cultural Study of Archaeology of Shahabad Area of Rajasthan"** Submitted for the Degree of Doctor of Philosophy in the Subject of History, University of Kota, Kota is bona fide research work carried out by **Jaya Bhargawa,** D/o Shri Murari Lal Bhargawa & Smt. Suraj Devi under Our Supervision and quidance. No part of this Original work has been submitted for the degree before any University. The assistance and help Receined during the Course of Investigation has been fully Acknowledged.

He has also completed the residential Requirements of 200 days including the days spent on field work. The Thesis is in our opinion, Complete and Suitable for presentation for the award of Doctor of philosophy.

Supervisor
Dr. Shakuntala Meena
Vice Principal,
(Department of History)
Govt. Girls P.G. College,
Sawai Madhopur.

प्राक्कथन

शाहाबाद की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर गांव–गांव और कस्बे में बिखरी हुई है। चूंकि शाहाबाद शोधार्थी की जन्मभूमि है, अतः शोधार्थी की विद्यार्थी काल से ही शाहाबाद क्षेत्र के इतिहास को जानने की जिज्ञासा रही है। यही कारण है कि शोधार्थी ने अपने शोध कार्य में राजस्थान के **'राजस्थान के शाहाबाद क्षेत्र के पुरातत्व का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन'** का अवलम्बन किया है। मेरे संज्ञान में पुरातत्व विभाग एवं विद्वजनों द्वारा इस क्षेत्र में अधिक शोध कार्य नहीं हुआ है। इस रिक्तता को पूर्ण करने हेतु शोधार्थी ने अपना सूक्ष्म प्रयास किया है। यद्यपि शाहाबाद क्षेत्र का शोध संसार व्यापक है जिसमें नित नई कड़ियाँ जुड़ना सदैव जीवन्त है। शाहाबाद सहरिया–आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र है जिनकी वर्तमान संस्कृति का निश्चित ही इतिहास से सम्बन्ध रहा होगा। सम्भव है इस क्षेत्र की संस्कृति के अवयवों के निर्माण में इस वर्ग के लोगों ने अपना पर्याप्त योगदान दिया होगा। इस क्षेत्र के इतिहास से जुड़े इन अनछुए पहलुओं को उजागर करने हेतु भी शोधार्थी प्रयासरत रहा है।

शाहाबाद क्षेत्र में हमें पर्याप्त पुरातात्विक अवशेष यथा प्राचीन मूर्तियाँ, खण्डहर, अभिलेख, दुर्ग, महल, छतरियाँ, मन्दिर, मस्जिद, बस्तियों के भग्नावशेष, बावड़ियाँ आदि उल्लेखनीय रूप से ज्ञात हुए हैं, जिनका शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध–ग्रन्थ में सामर्थ्यानुसार विवरण प्रस्तुत किया है।

इस शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति के लिये सर्वप्रथम मैं अपने समस्त गुरुजनों एवं माँ शारदे की चरण वंदना करती हूँ, जिन्होंने मुझे शाहाबाद क्षेत्र के इतिहास से परिचित करवाया।

प्रस्तुत शोध कार्य निर्देशिका **डॉ. श्रीमती शकुन्तला मीणा** के असीम स्नेह, उत्साहवर्द्धक मार्गदर्शन व कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ है, जिसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ। इसके साथ ही **डॉ. जगतनारायण श्रीवास्तव**, सेवानिवृत्त प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय कोटा का अत्यन्त आभार व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने शोध कार्य के चयन में अपना विशिष्ट आशीर्वाद एवं सहयोग मुझे प्रदान किया।

इस अनूठी साधना में मेरे **पिता देवलोकवासी श्रद्धेय श्री मुरारीलाल भार्गव** के प्रति कृतज्ञ हूँ। इस व्ययसाध्य कार्य को पूरा करने में उनका स्नेह एवं प्रेरणाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मैं उनके प्रति शत्–शत् श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ एवं **माता श्रीमती सूरज देवी** के प्रति नतमस्तक हूँ, जिन्होंने मुझे इस योग्य बनाया कि मैं शाहाबाद क्षेत्र के पुरातत्व के सम्बन्ध में कुछ शोध कर सकूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से सम्बन्धित इतिहास विषयक सामग्री को व्यवस्थित रूप प्रदान करने की प्रक्रिया में **डॉ. अतुल कुमार श्रीवास्तव** व्याख्याता, इतिहास महाविद्यालय छबड़ा के प्रति हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे प्रयत्नों को भरपूर प्रोत्साहन प्रदान किया। साथ ही **डॉ. जितेन्द्र सिंह** व्याख्याता, समाजशास्त्र एवं श्री भूपेन्द्र भार्गव व्याख्याता, संस्कृत का मैं हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे सहयोग प्रदान किया।

मैं **श्री दिनेश सक्सेना** पुस्तकालयाध्यक्ष, छबड़ा महाविद्यालय का आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय–समय पर आवश्यक पुस्तकें प्रदान कर शोध कार्य में सहयोग प्रदान किया।

इस प्रबंध के प्रणयन में मेरे कई मित्रों, सहयोगियों और परिजनों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग रहा है, उन सबके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए हृदय से धन्यवाद अर्पित करती हूँ। विशेषतः **श्री जितेन्द्र सिंह चारण, उदयपुर, सोमदत्त भार्गव, मुण्डियर, श्री निदेश भार्गव शिक्षक, केलवाड़ा** के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने इस शोध प्रबंध हेतु सहायक सामग्री जुटाने में सहयोग किया।

शोध प्रबन्ध की सामग्री हेतु अपार ज्ञान के संचित कोष से जिन ग्रन्थों एवं ग्रन्थ भण्डारों, राजकीय संस्थानों एवं निजी संग्रहों से मैंने सहायता प्राप्त की है, मैं उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। सर्वप्रथम **केन्द्रीय पुस्तकालय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, केन्द्रीय पुस्तकालय मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर, केन्द्रीय पुस्तकालय महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर** आदि उपर्युक्त संस्थाओं द्वारा दी गई सुविधाओं के लिए मैं इन सभी के प्रति साधुवाद प्रकट करती हूँ।

में अपने **पितातुल्य श्वसुर स्व. श्री विजय कुमार जोशी** एवं **मातातुल्य सास श्रीमती कान्ता जोशी** का हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके सहयोग और आशीर्वाद के बिना मेरे लिए यह कार्य असंभव था।

मैं अपनी बड़ी बहिन **डॉ. श्रीमती आशा भार्गव**, व्याख्याता, लोक प्रशासन एवं **श्री सत्यनारायण भार्गव** के प्रति कृतज्ञ हूँ। इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में उनका स्नेह एवं प्रेरणाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही अपने बहन–बहनोई **श्रीमती रानी–श्रीकृष्णकान्त, श्रीमती मोनिका–श्री मुकेश, श्रीमती सन्जू–श्री पंचराम एवं नीलम भार्गव** के अमूर्त एवं अकथनीय सहयोग हेतु हृदय से उनकी आभारी हूँ, जिनके प्रत्यक्ष सहयोग के बिना मैं शोध–प्रबंध पूरा नहीं कर पाती।

मेरे पूज्य पति **श्री अभिषेक जोशी** से मैं किसी भी जन्म में उऋण होना नहीं चाहती, जिन्होंने सदैव मेरे प्रत्येक प्रयास को ठोस आधार प्रदान किया है। उनके अकथनीय सहयोग से ही शोध प्रबंध के बिखरे पृष्ठों को समेटकर इस रूप में प्रस्तुत कर पायी हूँ।

मुझे विश्वास है कि मेरे द्वारा इस अछूते विषय पर किया गया कार्य इतिहास जगत को महत्वपूर्ण तथ्य देगा। यदि इस अध्ययन से इतिहास जगत के सृजनशील किंचित भी प्रेरित होंगे तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगी।

जया भार्गव

अध्याय विन्यास

(Chapterisation)

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	(i-iii)
	चित्र सूची	
1.	भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Geographical and Historical Background)	1–38
2.	पुरातन धार्मिक स्थल (Ancient Religious Places)	39–78
3.	पुरातन अभिलेख (Ancient Inscriptions)	79–96
4.	पुरातन किले एवं अन्य पुरातात्विक स्थल (Ancient forts and other Ancient Places)	97–148
5.	पुरातन जल स्त्रोत (Ancient Water Sources)	149–160
6.	क्षेत्र के पुरातत्व का महत्व (Archaeological Importance of the Region)	161–189
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)	190–197
	परिशिष्ट–1	i - vii
	छायाचित्र	1–15

छायाचित्र सूची

क्र.सं.	नाम चित्र
1.	अवस्थी जी की बावड़ी का भीतरी दृश्य एवं पोखाराम की बावड़ी
2.	राजदरबार के अलंकृत स्तम्भ, शाहाबाद दुर्ग
3.	शाहाबाद दुर्ग से ज्ञात मूर्तियाँ
4.	शाहाबाद दुर्ग के कलात्मक प्रवेश द्वार
5.	राधा–कृष्ण मन्दिर एवं लक्ष्मण मन्दिर का दृश्य, शाहाबाद दुर्ग
6.	आपातकालीन गुप्त मार्ग एवं शिलालेख शाहाबाद
7.	शाहाबाद दुर्ग स्थित नवलबाण तोप एवं क्षार बाग छतरियाँ
8.	नगर कोट माता मन्दिर एवं जामा मस्जिद शाहाबाद
9.	शिवलिंग, तपसी जी की बगीची एवं कपिल धारा की प्राचीन मूर्तियाँ
10.	भण्डदेवरा मंदिर समूह एवं भण्डदेवरा मन्दिर का कलात्मक शिखर
11.	भण्डदेवरा शिवालय के अलंकृत स्तम्भ एवं उन पर उकेरी गई मूर्तियाँ
12.	लक्ष्मण कुण्ड एवं सूरज कुण्ड सीताबाड़ी
13.	नाहरगढ़ दुर्ग स्थित बारहदरी एवं मुख्य प्रवेश द्वार
14.	कस्बाथाना दुर्ग की प्राचीर, आन्तरिक दृश्य एवं अन्तर्निर्मित भवन
15.	कठमहला, गुलाब बावड़ी, बाला किले का विशाल प्रवेश द्वार एवं नवलसिंह की हवेली शाहाबाद दुर्ग।

अध्याय–1

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भौगोलिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष के राजस्थान प्रान्त का कोटा जिला एक सम्भागीय मुख्यालय है। कोटा सम्भाग के अन्तर्गत हाड़ौती क्षेत्र आता है। हाड़ौती से आशय अरावली पर्वत श्रृंखला व मालवा पठार के मध्य का क्षेत्र। हाड़ौती क्षेत्र में वर्तमान समय में बून्दी, कोटा, बारां व झालावाड़ जिले परिगणित है।[1]

बारां जिला मुख्यालय बारां कस्बे सहित पहले कोटा जिले और इससे भी पूर्व कोटा राज्य का एक भाग था। यह चौदहवीं–पन्द्रहवीं शताब्दी में सोलंकी राजपूतों द्वारा बसाया गया। सम्भवतः इसका नामकरण बारह लोगों के बसाये जाने से हुआ। एक मान्यता यह भी है किसी समय इस भू–भाग पर बारह तालाब थे, जिन्हें पाटकर यह नगर बसाया गया।[2] भगवान विष्णु के दशावतारों में से एक वाराह अवतार गुप्तकाल में अपनी प्रतिष्ठा के चरम पर था। उनके काल में वाराह अवतार की अनेक मूर्तियाँ पूरी भारत भूमि पर स्थापित की गई। गुप्तों के शक्तिशाली उत्तराधिकारी प्रतिहारों के काल में भी विष्णु की पूजा एक बार फिर अपने चरम पर पहुंची। इस काल में भी वाराह की प्रतिमायें सम्पूर्ण उत्तरी भारत में स्थापित हुई। बारां नगर से भी वाराह की प्रतिमायें बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। अतः अनुमान होता है कि यह स्थान पूर्व में वाराह नगरी कहलाता था जो बाद में बारां के नाम से विख्यात हुआ।[3] अतः बारां शब्द वराह अथवा वाराह[4] का अपभ्रंश है।

वर्तमान बारां जिले का अधिकांश भाग पहले कोटा राज्य तथा टोंक राज्य में विभाजित था जो कि 1948 में राजस्थान संघ में विलय हुआ और 1949 संयुक्त राजस्थान का अंग बना फिर भी इसका अधिकांश भाग कोटा राज्य में रहा और छबड़ा टोंक राज्य के अन्तर्गत था। वर्तमान में बारां राजस्थान का एक जिला है जिसकी स्थापना 10 अप्रैल 1991 को हुई।[5]

अवस्थिति (Location) – बारां जिला $24^0 24'$ से $25^0 26'$ उत्तरी अक्षांश और $76^0 12'$ से $72^0 26'$ पूर्वी देशान्तर पर राजस्थान के दक्षिण पूर्व भाग में अवस्थित है। यह जिला

मध्यप्रदेश से पूर्व, दक्षिण, दक्षिण–पूर्व और उत्तर में तथा कोटा जिले से उत्तर–पश्चिम में और झालावाड़ जिले से दक्षिण–पश्चिम में घिरा हुआ है। बारां जिले का उत्तर से दक्षिण की ओर विस्तार लगभग 110 किमी. और पश्चिम से पूर्व की ओर विस्तार लगभग 120 किमी. है। कालीसिंध नदी बारां को कोटा जिले से पृथक करती है।[6]

क्षेत्रफल एवं जनसंख्या (Area and Population) :– बारां जिले का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 6992 किमी. (नगरीय 82.87 वर्ग किमी., ग्रामीण 6909.22 वर्ग किमी.) है। जिले में गांवों की संख्या 1218 हैं जिनमें नवीन घोषित ग्राम 11 हैं, 215 ग्राम पंचायतें हैं, नगर पालिकाओं की संख्या 4 है। दो नगरपालिकाएं द्वितीय श्रेणी की (बारां, अंता) और दो चतुर्थ श्रेणी (छबड़ा, मांगरोल) की हैं। सात पंचायत समितियां व चार विधानसभा क्षेत्र हैं।[7]

जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर (2001–2011) 19.82 प्रतिशत रही है। कुल जनसंख्या 2011 के अनुसार 1223921 जिसमें पुरुष 635495 व स्त्रियां 588426 हैं। जिले का लिंगानुपात 926 है। जनसंख्या का घनत्व 175.04 प्रति वर्ग किमी. है। जिले की साक्षरता दर 67.38 है जिसमें पुरुष साक्षरता 81.23 व महिला साक्षरता 52. 48 प्रतिशत है।[8]

प्राकृतिक विभाजन (Natural Tropography) :– यह क्षेत्र मध्यप्रदेश के मालवा प्लेटों का पठारी भाग है। निम्न एवं उच्च भूमियों का मैदानी क्षेत्र है। सामान्यतया इसका ढलान उत्तर की ओर है जो कि नदियों के बहाव या नहरों की प्रणाली को उत्तर दिशा की ओर प्रेरित करता है। औसत उच्चावच के अलावा इसका अधिकांश भाग मैदानी है जो कि समुद्रतल से 250 मीटर है। मुकुन्दरा पहाड़ी क्षेत्र और पठारी भाग उत्तर पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की ओर स्थित है। इस क्षेत्र की समुद्रतल से ऊँचाई 492 मीटर है।[9]

पहाड़ियाँ :–

इस क्षेत्र की पहाड़ियाँ सामान्यतः विंध्य पर्वत श्रृंखला से सम्बन्धित हैं। पहाड़ी श्रृंखला की एक छोटी पंक्ति लघु वृत्ताकृति में मध्यप्रदेश से छीपाबड़ौद तहसील के निम्न मध्य भाग में प्रवेश करती है। ये बारां में दक्षिण की ओर तथा

इसके उत्तर–पूर्व कोण को झालावाड़ के पहाड़ी क्षेत्र से जोड़ते हुए दर्रा नाल की तरफ जाते हुए चम्बल तक जाती हैं। ये पहाड़ियाँ छबड़ा और अटरू क्षेत्र में होकर भी गुजरती है। टोडी रामपुरा व रामगढ़ (किशनगंज) गाँव में इस श्रृंखला की छोटी–छोटी पहाड़ियाँ देखी जा सकती हैं। रामगढ़ में इसकी ऊँचाई 463 मीटर है। शाहाबाद तहसील के मामोनी में इस प्रकार की पहाड़ी की ऊँचाई 546 मीटर है। यह जिले की सर्वाधिक ऊँची पहाड़ी चोटी है। शाहाबाद भू–भाग अरावली की पहाड़ियों से आच्छादित है।[10]

नदियां एवं जल स्त्रोत (River System & Water Resource) :– यह जिला चम्बल की सहायक नदियों से युक्त है जिसमें कालीसिंध, पार्वती, कुनु, परवन नदियाँ हैं। कालीसिंध चम्बल की सहायक नदी है जो परवन से जुड़ने पर उत्तर की ओर मांगरोल तहसील की सीमा बनाते हुए 40 किमी. दूर बहती है। राजगढ़ से ढीबरी होकर कोटा जिले के पीपल्दा में चम्बल में मिल जाती है। इसके प्रवाह क्षेत्र में पलायथा, नौनेरा, कोटड़ा, बड़ौद, पाटून्दा आते हैं। पार्वती चम्बल की सहायक नदी है जिसका उद्‌गम विंध्य की पहाड़ियों से होता है। यह बारां जिले में दक्षिण की ओर से कड़ैयाहाट गांव से प्रवेश करती है और मध्यप्रदेश की सीमा निर्माण करते हुए जिले के मध्य भागों से होकर गुजरती है।

'परवन' भी विंध्य पहाड़ियों से निकलती है। बारां जिले के हरनावदा शाहजी से राजस्थान में प्रवेश करती है और बारां जिले की अटरू तहसील के मध्य भागों से गुजरते हुए रामगढ़ के निकट कालीसिंध में मिलती है। 'कुनु' शाहाबाद तहसील में दक्षिण की ओर से मध्यप्रदेश से राजस्थान में आती है। लगभग 9 किमी. शाहाबाद तहसील में बहकर फिर से मध्यप्रदेश में प्रवेश करती है।

'अंधेरी' नदी छीपाबड़ौद तहसील में मध्यप्रदेश से प्रवेश करती है और अटरू से लगभग 6 किलोमीटर दूर पूर्व में पार्वती नदी से मिलती है।

'बाणगंगा' नदी बारां के दक्षिण में स्थित बामला से निकलती है और मिथोड के निकट पार्वती में मिल जाती है। अन्य छोटी नदियां है ल्हासी, सूकड़, घड़ावली, खण्डेला, केलवाड़ा, गारड़ी, बिलास, बरानी, कोरी, रेतली, कोल आदि।

तालाब (Tank) :– राज्य सिंचाई विभाग में इस जिले के 33 तालाब नामांकित है। जिनमें 33 लघु सिंचाई परियोजना संचालित की जा रही हैं।

भूजल स्त्रोत :–

राज्य के भूजल विभाग ने भूजलीय जाँचों में पाया कि बारां में भूजल के पर्याप्त भंडार हैं। सम्पूर्ण जिला श्वेत क्षेत्र (White Zone) के अन्तर्गत आता है। यहाँ पर पानी की कमी नहीं आ सकती। यहाँ धातु की सम्पूर्ण घुलनशीलता की दर एक लीटर में एक मिलीग्राम है जो इस बात का शुभ संकेत है कि यहां का भूजल पेय रूप में और सिंचाई दोनों ही कार्यों के लिये श्रेष्ठ है। शाहाबाद क्षेत्र में जल की प्रकृति कठोर है एवं कम मात्रा में उपलब्ध होने के कारण आवश्यकताओं हेतु भी कठिनता से प्राप्त होता है।

यहां मुख्य भूजलीय इकाईयों में गाद, चूना–पत्थर, बलुआ पत्थर, आग्नेय व बैसाल्ट चट्टाने पायी जाती हैं। भूमिगत जल सामान्यतः इन्हीं चट्टानों के मध्य एकत्र जल से निकलता है। इनमें से चूना पत्थर तो कुछ सीमित तल तक ही रहता है। प्रत्येक मानसून के दौरान जल की गहराई यहां दो मीटर तक आ जाती है। जबकि अन्ता व छीपाबड़ौद ब्लॉक में यह 27 मीटर तक रहती है। इनमें छबड़ा–छीपाबड़ौद में 65 मीटर तक गहराई रहती है जिनका जल बैलों द्वारा 35 मीटर प्रतिदिन से 85 मीटर प्रतिदिन तक खींचा जाता है। अब ट्यूबवैल लग जाने से 15 से 45 मीटर प्रति घंटा जल धारा प्राप्त हो जाती है।

भूगोल (Geography) :– बारां जिले का अधिकांश भाग आग्नेय व बलुआ चट्टान, चूना पत्थर की श्रेणियों से निर्मित है। इसका कारण विंध्य पहाड़ियों का होना है। दक्षिणी पठार का प्रतिनिधित्व भी यहां मुख्य बैसाल्टिक चट्टानों द्वारा देखा जाता है जो कि परत दर परत जिले के दक्षिण व पूर्व भागों में स्थित है जिसके कारण निम्न भू रचना परत दर परत इस क्षेत्र में पायी जाती है। विभिन्न परतों में बलुआ पत्थर की प्राप्ति यह बताती है कि समुद्रतल का उतार–चढ़ाव अपने नियमों को तोड़ते हुए पीछे हटता है। विंध्य पहाड़ी की सीमाओं में यह स्थिति पायी जाती है।

खनिज सम्पदा :– बारां जिले में सामान्य रूप से सीमित खनिज सम्पदा है। चूना पत्थर, सिलिका, लेटेराइट पत्थर, गोमेद/अकीक, बॉक्साइट आदि पाये जाते हैं।

धात्विक खनिज जिनमें बॉक्साइट शाहाबाद में पायी जाती है। इन्हीं के पास लेटेराइट की परतें भी पायी जाती हैं।

अधात्विक खनिजों में सिलिका, सेण्ड (बालू), काँच निर्माण वाली रेत छबड़ा व अटरू तहसीलों में पायी जाती है।

चूना पत्थर अटरू तहसील के 'खरखरा आसन' तथा परवन नदी के आसपास भी बहुतायत से प्राप्त होता है। जिसमें केल्सियम ऑक्साइड की पर्याप्त मात्रा है।

चुनाई का पत्थर बारां में बहुतायत रूप में मिलता है जो कि बलुआ पत्थर व चूना पत्थर से निम्न श्रेणी का माना जाता है और दक्षिण के पठार का प्रतिनिधित्व करता है।

स्लेट का पत्थर जिले की मांगरोल एवं शाहाबाद तहसीलों में प्राप्त होता है।

वन सम्पदा (Forets) :– वन सम्पदा के अन्तर्गत निम्न वन–समूह सम्मिलित हैं–

(1) कल्दी आग्नेय चट्टानों पर अवस्थित वन :– यहाँ अधिकांशतः धौंकड़ा, खैर, बेर, गुरजन, झिन्झा, तेंदू, ककोन, छोला, खिरनी आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। ये वृक्ष मुख्यतः छबड़ा, छीपाबड़ौद, शाहाबाद एवं व शेरगढ़ में पाये जाते हैं।

(2) सागवान के जंगल :– ये सीमित रूप में छबड़ा, नाहरगढ़ और किशनगंज क्षेत्रों में पार्वती नदी के किनारे के जंगलों में पाये जाते हैं।

चरागाह (Grass Land) :– जैविक तथ्यों के कारण घास के वन बहुत अधिक सीमा तक विस्तारित हैं, जहां वन विभाग का सामान्य संरक्षण है। यहां कुछ साधारण स्तर की वृक्ष–झाड़ियां भी मिलती हैं, जैसे– तेंदू, अचार आदि।

जलवायु (Climate) :– मानसून सत्र के अतिरिक्त जिले की जलवायु शुष्क है। वृहद् रूप से यहां की जलवायु को चार मौसम में बांटा गया है। मध्य नवम्बर से फरवरी तक सर्दी, फरवरी से मध्य जून तक गर्मी, मध्य जून से सितम्बर तक दक्षिण–पश्चिम मानसून का मौसम रहता है तथा अक्टूबर नवम्बर में मानसून रहता है।

वर्षा (Rainfall) :– जिले की औसत वर्षा 901.5 मिलीमीटर है। उत्तर पश्चिम से दक्षिण पश्चिम की ओर मानसून की अधिकता बढ़ती जाती है। लगभग 94 प्रतिशत वार्षिक वर्षा दक्षिण पश्चिम मानसून के दौरान प्राप्त की जाती है। साल दर साल वर्षा का अन्तर होता जा रहा है।

तापमान (Temperature) :– जनवरी यहां का शीतलतम महीना है। इस मासावधि में प्रतिदिन अधिकतम तापमान लगभग 25^0C एवं न्यूनतम तापमान लगभग 10^0C रहता है। पश्चिमी विक्षोभ जो कि उत्तरी भारत से गुजरता है तत् प्रभाव से कभी–कभी न्यूनतम तापमान 2^0C तक आ जाता है। मार्च माह में तापमान शीघ्रता से बढ़ता चला जाता है। मई माह यहां का उष्णतम महीना है जबकि अधिकतम तापमान 28^0C रहता है। दक्षिण–पश्चिम मानसून के कारण इस जिले में बरसात के पूर्व ही बूंदे गिरती हैं जिसे मानसून पूर्व की वर्षा कहा जाता है। स्थानीय भाषा में जिसे 'दोगड़ा/डूमड़ा' कहा जाता है।

आर्द्रता (Humidity) :– यहां की वायु सामान्यतः शुष्क रहती है। दक्षिण–पश्चिम मानसून के अतिरिक्त गर्मी के महीनों (मई–जून) में यहां की आर्द्रता दोपहर के समय 20 प्रतिशत से भी कम रह जाती है।

मेघ संघनन :– यहां का सर्द मौसम सामान्यतः साफ एवं चमकीला होता है। पश्चिमी विक्षोभ के समय अवश्य कुछ मेघाच्छादित रहते हैं। गर्मी एवं मानसून के बाद भी यहां बादल साफ रहते हैं और सूर्य चमकता रहता है। दक्षिण–पश्चिम के मानसून के समय यहां लगभग प्रतिदिन घने बादल छाये रहते हैं।

हवा (Wind) :– यहां पर सामान्यतः हल्की और मध्यम हवाएँ वर्षभर चलती रहती हैं। मानसून पूर्व अवश्य यह थोड़ी कठोर हो जाती हैं। यहां की स्थानीय भाषा में इसे 'आंधी–बखूल्यों' कहते हैं। सर्दी के समय भी हवाएं प्रातःकाल के समय हल्की ही रहती है, जबकि दोपहर के समय तेज हो जाती है। ये उत्तर–पूर्व से उत्तर पश्चिम की ओर बहती है। मई माह के आरंभ में गर्मी के समय हवाओं की दिशा उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पश्चिम की ओर रहती हैं। मुख्यतः इस जिले में हवाओं का रुख दक्षिण–पश्चिम या पश्चिम की ओर रहता है।

विशेष मौसम परिदृश्य :–

बंगाल की खाड़ी में मानसून सत्र के समय आया विक्षोभ भारत के मध्य भागों की ओर गति करता है। इसका रुख सामान्यतः पश्चिम की ओर एवं पश्चिमोत्तर की ओर होता है जो बारां जिले को भी वृहद् रूप में वर्षा और आंधीयुक्त तड़ित प्रदान करता है। धूलभरी आंधियां और बादल बिजलियां गर्मी के महीने में आम बात है। मानसूनी बरसात इस समय अक्सर बिजली और आंधी के साथ ही होती है।

सामुदायिक जीवन

तीर्थ स्थल :– हिन्दुओं में देवी–देवताओं के प्रति विशेष श्रद्धा एवं विश्वास देखा जाता है। ये लोग तीर्थस्थलों की यात्रा करते हैं और इसे अपने धार्मिक कर्त्तव्य एवं भक्ति के रूप में मानते हैं। दाह संस्कार के उपरांत शेष अस्थियों को तीर्थ के पवित्र जल में विसर्जन करना एक धार्मिक रिवाज है।

केलवाड़ा के निकट सीताबाड़ी सहरिया जनजाति के लिए कुम्भ माना जाता है। सीताबाड़ी में अनेक पवित्र जल के कुण्ड हैं, जिसमें अस्थियां विसर्जित की जाती है। यहां अनेक पूजा स्थल हैं जिसमें मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारा और चर्च मुख्य हैं। यहां लोक देवता तेजाजी और गोगाजी भी पूजे जाते हैं।[11]

मेले

मेले (Fair) :– शाहाबाद क्षेत्र के ग्रामीण लोगों का स्थानीय मेलों के प्रति विशेष आकर्षण है। क्षेत्र में वर्ष में कई जगह मेले लगते हैं इनमें से निम्न मेले मुख्य हैं–

(1) सीताबाड़ी मेला :– केलवाड़ा के निकट शाहाबाद तहसील में यह एक प्रमुख धार्मिक मेला है जो बैशाख सुदी पूर्णिमा से ज्येष्ठ बदी अमावस्या तक प्रतिवर्ष लगता है। पचास हजार से अधिक लोग जिनमें अधिकांशतः ग्रामीण जो कि पड़ौस के मध्यप्रदेश राज्य से भी आते हैं और यहां के पवित्र कुण्डों में डुबकी लगाते हैं। यहां लक्ष्मण, शिव और हनुमान की प्रतिमाएं हैं। जिनके समक्ष नकदी, अनाज, खीलबतासे बतासे और नारियल चढ़ाये जाते हैं। सहरिया जनजाति के लिए यह स्थान महाकुम्भ जैसा है।

(2) दशहरा मेला :– यह बारां जिले का प्रसिद्ध मेला है जिसमें लगभग 20 से 30 हजार लोग एकत्रित होते हैं। इसके अतिरिक्त मांगरोल तहसील के रायथल गांव एवं शाहाबाद तहसील के केलवाड़ा में भी दशहरा मेला आयोजित किया जाता है।

(3) डोल यात्रा (मेला) :– यह इस क्षेत्र का प्रसिद्ध मेला है। लगभग 50 हजार लोग इस मेले में भाग लेते हैं और राज्य के कई दुकानदार इसमें दुकान लगाने आते हैं। यह डोल मेला बारां में एक माह तक चलता है। जलझूनी एकादशी पर श्रीजी के मन्दिर से भव्य डोल शोभायात्रा निकलती है, जिसमें 50 से अधिक देवविमान तथा दर्जनभर अखड़ा दल एवं कीर्तन मण्डलियाँ सम्मिलित होते हैं। डोल ग्यारस को जलझूलनी एकादशी के नाम से भी जाना जाता है जो कि भाद्रपद की शुक्ल–एकादशी को पर्व रूप में मनायी जाती है। यह शोभायात्रा यहां के डोल तालाब पर देव आरती के साथ सम्पन्न होती है। देव विमान पुनः मंदिरों पर लौट आते हैं। मेला अवधि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। किसी समय यहाँ के अखाड़ा दलों की विशेष पहचान थी।[12] शाहाबाद क्षेत्र के लगभग सभी गाँवों में डोल यात्रा बड़ी धूमधाम के साथ निकाली जाती है।

(4) बालाजी मेला :– मांगरोल तहसील केमहू में यह धार्मिक मेला लगता है। यहां लगभग 5 हजार लोग एकत्रित होते हैं। शाहाबाद नगर में शियारी घाटी वाले बालाजी मंदिर में हनुमान जयंती के अवसर पर एक दिवसीय मेल आयोजित होता है।

(5) तेजाजी मेला :– लोक देवता तेजाजी के साहसिक कार्यों की स्मृति में इनका मेला आयोजित किया जाता है। ये भाद्रपद शुक्ला दशमी डोल ग्यारस से एक दिन पूर्व मनाया जाता है। बारां जिले का गजनपुरा गांव, छबड़ा तहसील का भूलोन गांव, फूलबड़ौदा (छीपाबड़ौद), भंवरगढ़, छीनोद (किशनगंज), अंता, माल बमोरी, मूण्डला, बोहत, रायथल, तिसाया और जलोदा तेजाजी (मांगरोल), कलोनी (शाहाबाद), सहराना (शाहाबाद) में भी इस अवसर पर मेला भरता है। सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति यहां ठीक हो जाते हैं, ऐसी मान्यता है।[13]

(6) नवरात्रि मेला :– नवरात्रि के अवसर पर 9 दिन तक इस मेले का आयोजन क्षेत्र के रामगढ़ माता मंदिर व नगरकोट माता मंदिर, शाहाबाद में किया जाता है। इस अवसर पर दूर–दूर से श्रद्धालु यहाँ आते हैं।

(7) उर्स (पीर) :– मांगरोल तहसील के बालाखेड़ा में उर्स लगता है। यहां जिले के 10 हजार से भी अधिक मुस्लिम समुदाय के लोग एकत्रित होते हैं और दरगाह पर अपने श्रद्धा सुमन और भेंट, चादर आदि चढ़ाते हैं।[14]

(8) क्रिसमस मेला :– अटरू से आठ किमी. दूर पिपलोद गांव में 25 दिसम्बर को (बड़ा दिन) ईसा मसीह के जन्मदिन के रूप में मनाया जाता है। इस मेले में ईसाइयों के साथ–साथ अन्य समुदायों के लोग भी भाग लेते हैं।[15]

(9) अन्य उत्सव :– उत्सव लोगों के धार्मिक जीवन का एक भाग है। श्रीराम की जन्म स्मृति में रामनवमी, भाई–बहिनों के प्रेम का प्रतीक रक्षाबंधन (राखी), दशहरा, होली, आखातीज, गणगौर, तीज आदि बड़े हर्षोल्लास से मनाये जाते हैं। 14 या 15 जनवरी को मकर संक्रांति त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन गरीबों, जरूरतमंदों व मंदिरों पर दान दिया जाता है।

अन्य धार्मिक उत्सवों में मुस्लिमों का शब–ए–बारात, रमजान, ईदुल फितर, ईदुल जुहा, जैन धर्मावलम्बियों के भाद्रपद माह से शुरू चातुर्मास एवं पर्युषण पर्व सम्मिलित हैं।

धार्मिक विश्वास, आचरण और प्रथाएँ

इस क्षेत्र में अधिकांश समुदाय हिन्दू धर्म से जुड़े हुए हैं। सभी देवी–देवताओं की और यहाँ तक कि लोक देवता भी श्रद्धा के पात्र हैं। हिन्दूओं में वैष्णव लोग राधा–कृष्ण और सीता–राम के भक्त हैं। यहाँ के लोगों में भगवान शिव के प्रति भी बड़ी श्रद्धा है। शिव–पार्वती के मंदिर शाहाबाद क्षेत्र के बड़े कस्बों और गांवों में देखे जा सकते हैं। देवी दुर्गा यहां शक्ति का प्रतीक मानी जाती है। यह देव सामान्यतः सभी लोगों में पूज्य है। गणेशजी और हनुमान जी भी इस क्षेत्र के लोकप्रिय देवता हैं। स्थान–स्थान पर इनके मंदिर स्थापित हैं। भैरूजी के थानक, मोती महाराज, शीतला माता, ठाकुर साहब के थानक यहां अधिकांश गांवों में मिलते हैं। भैरूजी को दुष्टों का रोधक, शीतला माता को चेचक की देवी, मोतीसर महाराज को मोतीझरा रोधी देव माना जाता है। इस क्षेत्र के अधिकांश समुदायों की अपनी–अपनी कुल देवी हैं, जिनकी पूजा नवरात्रि में दुर्गाष्टमी/ नवमी के दिन अथवा विवाह या पुत्र जन्म जैसे शुभ अवसरों पर की जाती है।

सर्पों के देवता तेजाजी, गोरक्षक गोगाजी आदि लोकदेव भी यहां व्यापक रूप से पूजे जाते हैं। जनजातियों विशेष रूप से सहरिया, सांसी, कंजर आदि में जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, प्रेत आदि में अटूट विश्वास है। इनके माध्यम से ये लोग अपनी बीमारियां दूर कर इच्छापूर्ति की इच्छा रखते हैं। बुरी हवाओं से प्रभावित अथवा साधारण बीमार व्यक्ति को यहां झाड़ा दिया जाता है। डोरा, गण्डा, ताबीज आदि भी इसके लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। यहां शगुन पर भी बड़ा विश्वास है। शुभ और महत्वपूर्ण कार्यों तथा यात्रा आरम्भ करने से पूर्व शगुन देखे जाते हैं।

रीति–रिवाज :– पुराने रीति–रिवाज ग्रामीण क्षेत्रों में यथावत् अनुष्ठान किये जाते हैं। जैसे विवाह के समय 'नोता' व्यवस्था का रिवाज है। इसमें विवाह या अन्य शुभ अवसर पर जाति पंचायत, रिश्तेदार और मित्रों को बुलाने के लिए घर का मुखिया पीले चावल लेकर जाता है परन्तु वर्तमान में लोग इनके स्थान पर निमंत्रण–पत्र छपवाने लगे हैं। निमंत्रित लोगों द्वारा वस्त्र आदि कुछ–न–कुछ भेंट देने का रिवाज है।

चिलम और हुक्का मित्रवत् व्यवहार, भाईचारे और मेहमान नवाजी का प्रतीक माना जाता है। घर के मुखिया का कहा, परिवार के कनिष्ठ सदस्यों द्वारा कानून की तरह माना जाता है। गृहस्वामी भी अपने कार्य व्यवहार में कनिष्ठ सदस्यों के प्रति निष्पक्ष रहने का प्रयास करता है। परिवार के रिश्ते सामान्यतः हार्दिक होते हैं। मामा–भांजा जब भी अपने ननिहाल में आते हैं तो उन्हें विशेष सम्मान व स्नेह देने की परम्परा है। यहां तक की गांव के लोग भी वही सम्मान देते हैं।

अन्य दूसरे विभिन्न संस्कार है। गर्भधान, नामकरण, कुआँ पूजन, उपनयन, विवाह, अंतिम संस्कार, श्राद्ध आदि लगभग सभी हिन्दूओं में, जनजातियों में भी यथावत है, हालांकि इनके प्रचलन में कुछ भिन्नताएं मिलती हैं।

अन्तर्जातीय सम्बन्ध :– शाहाबाद क्षेत्र में अन्तर्जातीय सम्बन्धों में यह देखा जाता है कि एक बड़ी संख्या में उच्च जाति के लोग व निम्नजातीय लोग परस्पर आश्रित हैं। आर्थिक व्यवस्था में आज भी विभिन्न जातियों की सेवाएं लेनी पड़ती हैं। परम्परागत जजमानी व्यवस्था बड़ी हार्दिक और क्रियाशील सम्बन्धों के रूप में विभिन्न जातियों

में पायी जाती थी, किन्तु द्रुत सामाजिक परिवर्तनों से इस व्यवस्था की पकड़ ढीली हो गई है।

आवास :– शाहाबाद क्षेत्र के आवासों में अधिकांशतः कच्चे और पक्के मकानों का अंतर है। धनी और निर्धन के अनुसार गृह निर्माण कला परम्परागत व आधुनिक रूपों में देखी जाती है।

जनजातीय आवासों में सांसी, कंजर, भील और सहरियाओं के अधिकांश घर लकड़ी के पत्तों और घास–फूस से बने होते हैं। यदि बांस मिल जाए तो यह दीवारों व छतों के साथ लगा दिये जातें हैं। दीवारों के साथ बांस की चटाई लगाई जाती है। सहरियाओं के आवास अन्य समुदाय की अपेक्षा भिन्न प्रकार के होते हैं जो कि गांव से दूर कांकड़ (जंगल) होते हैं।

इनका आवासीय निर्माण प्रारूप संकुचित एवं समूह प्रकार का होता है। इनकी झोंपड़ियों के समूह को सहराना कहा जाता है। सामुदायिक बैठकों और मेहमानों को ठहरने के लिए एक खुले प्रकार की बड़ी झोंपड़ी बनाते हैं, जिसे बंगला कहा जाता है। यह शब्द अंग्रेजी जैसा प्रतीत होता है। अब राजकीय सहयोग से पक्का बंगला भी बनाने लगे हैं। जिनमें आधुनिक सुविधाएं जैसे बिजली और दूरदर्शन (टी.वी) भी उपलब्ध है। प्रत्येक बंगले में एक या दो मेहमानों के लिए एक–एक चारपाई होती है। पुराने घरों में शौचालय नहीं थे और गांव या कस्बे के कांकड़ पर शौच जाते थे, हालांकि नई सहराना आवास में अब यह व्यवस्था की जाने लगी है।

शाहाबाद–एक नजर में –

सामान्य परिचय :– तहसील शाहाबाद जिला मुख्यालय से 85 कि.मी. की दूरी पर है। शाहाबाद तहसील की सीमाऐं उत्तर–पश्चिम में तहसील किशनगंज की दक्षिण सीमा से लगी हुई है, अन्य तीन तरफ से मध्यप्रदेश की सीमा है। तहसील भवन के चारों और पहाड़ है। यहां की भूमि पहाड़ी, कटीली, उबड़–खाबड़ है।[16]

भौगोलिक स्थिति :– 2900 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ यह इस क्षेत्र का पूर्वी भाग है। यह हाड़ौती के पठार का उच्चावृति क्षेत्र है जिसे "शाहाबाद उच्च क्षेत्र" कहा जाता है। यह औसतन समुद्रतल से 300 मीटर ऊँचा है किन्तु इसका पश्चिमी भाग

50 मीटर ही समुद्र तल से ऊंचा है। सर्वाधिक उच्च क्षेत्र कस्बाथाना के पास 456 मीटर है। इस क्षेत्र में एक विशिष्ट भू आकृति रामगढ़ ग्राम के पास घोड़े की नाल की आकृति की पर्वत श्रेणी है जो समतल क्षेत्र में एकाएक बनी हुई है।[17]

1.	कुल क्षेत्रफल	:–	146897 हैक्टेयर
2.	वन	:–	71497
3.	पहाड़ियाँ	:–	1077 हैक्टेयर
4.	ऊसर व अकृषि योग्य	:–	10378 हैक्टेयर
5.	चारागाह	:–	7107 हैक्टेयर
6.	सरकारी उपवन	:–	0 हैक्टेयर
7.	खातेदारी उपवन	:–	30 हैक्टेयर
8.	सरकारी पड़त	:–	7432 हैक्टेयर
9.	खातेदारी पड़त	:–	7112 हैक्टेयर
10.	सिंचित	:–	28732 हैक्टेयर
11.	असिंचित	:–	13562 हैक्टेयर
12.	कुल ग्रामों की संख्या	:–	236 आबाद – 179, गैर आबाद – 57
13.	कुल पटवार मण्डल	:–	33 कार्यरत पटवारी 13
14.	भू–अभिलेख निरीक्षक वृत्त	:–	4 कार्यरत भू–अ. निरी.–1
15.	पुलिस थाने	:–	3 (शाहाबाद, केलवाड़ा, कस्बाथाना)
16.	नगरपालिका	:–	0
17.	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	:–	4 (कस्बाथाना, शाहाबाद, समरानियां, केलवाड़ा)
18.	पशु चिकित्सालय	:–	2 (शाहाबाद, केलवाड़ा)
19.	सीनियर हायर सैकेण्डरी स्कूल	:–	4 (कस्बाथाना, शाहाबाद, समरानियां, केलवाड़ा)
20.	पंचायत समिति	:–	1 (शाहाबाद)
21.	कुल जनसंख्या 2011	:–	142315
22.	कुल पशुधन 2007	:–	89691
23.	सिंचाई साधन	:–	कुऐं, ट्यूबवेल, तालाब, नहर

24. कुऐं :– 2582

25. तालाब :– 13

26. सिंचाई परियोजना :– 5 (खटका प्रोजेक्ट, रातई परियोजना, रानीपुर, बगदा, सिरसीपुरा)[18]

कार्यालय चार्ज अधिकारी (तहसीलदार) सा.आ.जा. जनगणना 2011 शाहाबाद बारां (राज.) के अनुसार गैर आबाद ग्रामों की सूची निम्नवत है –

1. गैर आबाद ग्रामों की सूची[19] –

क्र. सं.	नाम पटवार मंडल	गैर आबाद ग्राम का नाम	क्र. सं.	नाम पटवार मंडल	गैर आबाद ग्राम का नाम
1.	जखौनी	अमरौला	30	राजपुर	नचनाखेड़ा
2.	सेमली फाटक	रानीपुरा	31	राजपुर	अहीर पहाड़ी
3.	समरानिया	कुण्डई	32	राजपुर	प्रोत पहाड़ी
4.	बाल्दा	हरला	33	बीची	बल्लमपुर
5.	बाल्दा	परला	34	मझोला	ऊंचापाथर
6.	बाल्दा	हंडियाई	35	मझोला	रेंवजा
7.	पीपलखेड़ी	पठा	36	मझोला	मलवाया
8.	ढिकवानी	रीठीपुरा	37	मझोला	हिण्डौला
9.	अजरोडा	नेनपुरा	38	कछियाथाना	पल्लाखेड़ी
10.	अजरोडा	जगदा	39	कस्बाथाना	माण्डो
11.	खटका	राताताल	40	बमनगवां	डाबर
12.	मुंडियर	पिण्डासल	41	बमनगवां	टैटाई
13.	भोयल	गत्ताखेडा	42	बमनगवां	खरका विजयपुर
14.	भोयल	हाड़ीखेड़ा	43	बमनगवां	विजयपुर
15.	बीलखेड़ा माल	सालौदा	44	मझारी	घरघुसा
16.	बीलखेड़ा माल	कंवरपुरा	45	मझारी	धुवां
17.	बीलखेड़ा डांग	हनोतिया	46	मझारी	बांसखेड़ी
18.	बीलखेड़ा डांग	नरोरा	47	शुभधरा	हनुमत खेड़ा

19.	बीलखेड़ा डांग	कुण्डा	48	रामपुर तलहटी	कोटड़ी
20.	सनवाडा	बजरखा	49	रामपुर तलहटी	कोटड़ा
21.	सनवाड़ा	चूरिया	50	रामपुर तलहटी	गुजर्रा
22.	देवरी	टांडा	51	रामपुर तलहटी	खरका श्यामशाही
23.	देवरी	केमा	52	रामपुर तलहटी	बनवारीपुरा
24.	देवरी	सिरसीपुरा	53	रामपुर तलहटी	तिगरी
25.	देवरी	पतारा	54	रामपुर तलहटी	कोटखांगा
26.	बैहटा	महु	55	सन्दोकड़ा	व्यासखेड़ी
27	बैहटा	धुरेरा	56	सन्दोकडा	पहाड़ी वीरान
28	बैहटा	निद्य	57	सन्दोकडा	बूढ़ी
29	शाहाबाद	किशनपुरा	58	सन्दोकड़ा	कनेरिया

प्राकृतिक सम्पदा :– धरातलीय संरचना की दृष्टि से प्रकृति ने शाहाबाद भू–क्षेत्र को जहां विकट परिस्थितियाँ प्रदान की हैं, वहीं प्रकृति की ओर से इस भू–क्षेत्र को विविध प्रकार की प्राकृतिक संपदाओं के भंडार उपलब्ध हुए हैं, जिनमें खनिज सम्पदा, वन सम्पदा, एवं पशु सम्पदा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(1) वन सम्पदा :– अधिकांशतः पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण शाहाबाद भू–क्षेत्र में प्राकृतिक जंगलों का बाहुल्य रहा है, और इसी कारण विविध प्रकार की साधारण एवं मूल्यवान लकड़ी उपलब्ध होती रही है। शाहाबाद क्षेत्र के जंगलों में सागवान, थोंकड़ा (कोयला बनता है), अचार, महुआ, तेंदू, बोर इत्यादि विविध जातियों के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। यही नहीं, पशुओं के लिए घास एवं कई प्रकार की जड़ी–बूटियाँ भी शाहाबाद के जंगलों में उपलब्ध है। इस सम्पूर्ण प्राकृतिक वन सम्पत्ति ने प्राचीनकाल से शाहाबाद क्षेत्र के निवासियों को कई प्रकार की सुविधा प्रदान की है। शाहाबाद क्षेत्र के आदिवासियों एवं जन जातियों की आजीविका का मुख्य माध्यम शाहाबाद की यह वन सम्पदा ही रही है। आदिवासियों द्वारा शहद, कत्था, सफेद मूसली, कोयला, बनाकर आदि विविध तरीकों से इन वनों द्वारा आजीविका का साधन बनाया जाता है।

(2) पशु सम्पदा – जंगलों के बाहुल्य के परिणाम स्वरूप शाहाबाद भू क्षेत्र में स्वाभाविक रूप से जंगली जानवरों का बाहुल्य रहा है। शाहाबाद के जंगलों में सिंह, नाहर, बघेरा, चीता, भेड़िया, जरख, बन बिलाव, लोमड़ी इत्यादि हिंसक पशु पहले अधिक संख्या में उपलब्ध थे। इसी प्रकार हरिण, चीतल इत्यादि जानवर भी काफी मात्रा में पाए जाते हैं। पशुओं के साथ ही विविध प्रकार के जंगली पक्षी यथा – गिद्द, चील, बाज, मोर, तोता, कोयल, कौआ, तीतर, बटेर, कबूतर, हरियल इत्यादि शाहाबाद भू क्षेत्र में बहुतायत में थे, किन्तु जनसंख्या की वृद्धि के कारण बस्तियों के प्रसार एवं आधुनिक युग की वैज्ञानिक प्रगति के साथ जंगलों के भारी मात्रा में कटाव एवं वैध–अवैध रूप में अधिक संख्या में शिकार की वजह से शाहाबाद भू क्षेत्र में वन्य प्राणियों की संख्या कम हो गई है।

भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव :–

शाहाबाद भू क्षेत्र की उपर्युक्त भौगोलिक परिस्थितियों एवं प्राकृतिक सम्पदा ने बहुत प्राचीन काल से मानव को यहाँ विचरण करने एवं इस भू–भाग को अपना स्थायी आश्रय स्थल बनाने की सुविधाएं प्रदान की। परिणाम स्वरूप प्रागैतिहासिक काल से ही इस भू क्षेत्र में मानव सभ्यता के विकास की गतिविधियां प्रारंभ हो गयी, जो बीच–बीच में आने वाली प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न होने वाले व्यवधान के बावजूद भूले बिसरे सभ्यता के सम्पर्क सूत्रों को पकड़ते हुए वर्तमान समय तक गतिशील है। वस्तुतः शाहाबाद भू–क्षेत्र की प्राकृतिक स्थितियों के साथ जूझकर मानव की जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं आत्मा की प्रज्ञा–प्रसूत भावना–परक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिए इस क्षेत्र में रहने, बसने वाले निवासियों ने अपनी विविध चेष्टाओं के परिणामस्वरूप मानव जीवन के विविध पक्षों से सम्बद्ध जिन व्यवहार–प्रतिमानों की प्रतिष्ठा की है, वे सभी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में इस प्रदेश की भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव से अनुप्राणित है। जहाँ एक ओर इस भू–क्षेत्र की प्राकृतिक परिस्थितियों ने मानव को सभ्यता के प्रारंभिक काल में अपनी बस्तियां बसाने के लिए आकर्षित किया है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति ने इस भू–क्षेत्र में बसने वाले लोगों के जीवन को कष्ट साध्य भी बनाया है।

शाहाबाद भू–क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों के इस क्षेत्र के निवासियों पर प्रभाव की उपयुक्त व्याख्या के सन्दर्भ में सार रूप में यह कहना उपयुक्त होगा

कि इस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों ने यहां कि निवासियों के जीवन पर विरोधाभासयुक्त प्रभाव डाला है। जिसके परिणामस्वरूप जीवन के कठिनतम व्यवहार प्रतिमानों–आत्मोत्सर्ग से लेकर जीवन के माधुर्य युक्त सौन्दर्यबोध को स्थापत्य स्मारकों, मूर्तियों, चित्रपलकी और विविध प्रकार के साहित्य में उतारे में शाहाबाद भू–क्षेत्र के निवासी सफल हुए हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजस्थान के हर क्षेत्र या अंचल का अपना गौरवशाली इतिहास और विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान है। प्रत्येक नाम के साथ प्राचीन सन्दर्भ और मान्यताएँ जुड़ी हैं जिन्हें सहज ही भुलाया नहीं जा सकता। राजनीतिक उथल–पुथल एवं परिवर्तन के बावजूद भी लोकमानस उन प्राचीन नामों के मोह को त्याग नहीं पाता क्योंकि उसमें उसे अपने विगत गौरव की अनुभूति होती है। प्राचीन नामों में उस क्षेत्र का अतीत बोलता है। वर्तमान में बनारस का नाम वाराणसी, मैसूर का कर्नाटक, मद्रास का चेन्नई, बम्बई का मुम्बई, पूना का पुणे आदि करने के मूल में ऐतिहासिक चेतना के इसी सम्मोहन की प्रेरणा है।[20]

यद्यपि आज शेखावाटी एवं मालवा जैसे शब्द अपना राजनैतिक अस्तित्व खो चुके हैं तथापि लोकमानस में अपने भावमय स्वरूप में वे आज भी जीवित हैं। कारण इन नामों के साथ जो शताब्दियों की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परायें जुड़ी हुई हैं वे इन्हें मरने नहीं देती। उनमें इतिहास का एक अजीब आकर्षण है, गौरव का अनूठा एहसास है जो इन नामों से संचित स्थानों या प्रदेशों का राजनैतिक अस्तित्व विलुप्त हो जाने के बावजूद भी इन्हें किसी न किसी रूप में बचाए रखना चाहता है।

राजस्थान शब्द में भी इसकी प्राचीन ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परम्पराओं की कुछ ऐसी ही गौरव गरिमा का भाव सुरक्षित है।[21]

शाहाबाद क्षेत्र राजस्थान के बारां जिले में स्थित है अतः बारां जिले का इतिहास शाहाबाद के इतिहास को समझने में सहायक होगा।

बाराँ हाड़ौती क्षेत्र के सबसे पिछड़े क्षेत्र के रूप में जाना जाने वाला जिला है। यह जिला एक जनजातीय जिला है। यहां पर वर्तमान समय में 'सहरिया' नामक आदिम जनजाति निवास करती है, जिसकी सर्वाधिक संख्या शाहाबाद व किशनगंज तहसील में है।[22] बारां जिला कोटा से अप्रैल 1991 में विलग हुआ। अतः बारां जिले का इतिहास कोटा से ही सम्बद्ध है। चम्बल नदी घाटी में उत्खनन के पुरापाषाणकालीन उपकरण मिले हैं। चम्बल नदी वैदिक साहित्य में 'चर्मण्वती' नाम से उल्लेखित है।[23]

मार्कण्डेय पुराण, वायु पुराण, कूर्मपुराण तथा महाभारत आदि में इसका उल्लेख मिलता है। एक 'चर्मण्वती' का उल्लेख पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में भी हुआ है, जिसकी पहचान वासुदेवशरण अग्रवाल ने चम्बल से की है। महाभारत **(Vii.67)** में 'चर्मण्वती' के विषय में उल्लेख है कि रंतिदुर्ग द्वारा किए गए एक यज्ञ में अनेक गायों का वध हुआ, जिससे इन गायों के चर्म से निकलते हुए रक्त ने नदी का रूप धारण कर लिया। चम्बल इस प्रदेश की एक सुविख्यात नदी है, जो कि महू (इन्दौर, म.प्र.) के प्रास जानापाव पहाड़ी से निकलती है।[24]

(A) प्राचीन इतिहास :– बारां जिले में 200 वर्ष ईसा पूर्व आहड सभ्यता के पुरास्थल रेलावन नामक स्थान से मिले हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यहां पर चित्रित घूंसर भांड काल से ही सभ्यता विकसित थी और इस सभ्यता का संबंध हड़प्पा सभ्यता से रहा होगा। कालान्तर में चौथी सदी में जब सिकन्दर ने यूनान से चलकर भारत पर आक्रमण किया जो भारत के आंटविक राज्य मालव से इनका युद्ध हुआ। भयंकर युद्ध के पश्चात् मालवों की पराजय हुई जिसके उपरान्त आंटविक मालवों ने स्थान छोड़कर पलायन किया और राजस्थान के दक्षिण पूर्व व मध्य प्रदेश पूर्वी हिस्से में बसकर मालवा राज्य स्थापित किया, जिसकी सीमाऐं बारां जिले को छूती थी। तत्कालीन समय में जब मामलवों ने अपने क्षेत्र का विस्तार किया होगा तो उस समय बारां, कोटा, झालावाड़ मालवा राज्य के अधीन आते थे।[25]

यूनानी विजेता अलेक्जेंडर (सिकंदर) के समय उससे कुछ जनजातीय गणराज्य लड़े। उनमें से मालोई या मालवा भी थे। यह प्रतीत होता है कि ये लोग इस क्षेत्र में आये जो कि बाद में बारां जिले के निवासियों के रूप में जाये गये। ये

लोग दक्षिण की ओर बढ़े और जयपुर संभाग के वागड़ अंचल को अधिकार में ले लिया। उनकी राजधानी 'नगर' या 'कारकोट नगर कोटा से उत्तर पश्चिम में 72 किमी. की दूरी पर थी। इससे पहले यह क्षेत्र उनियारा के निकट मालवा नगर के रूप में जाना जाता था। यहां मालव लोग 150 ईस्वी पू. में स्थापित हो चुके थे।[26]

238 ईस्वी का बड़वा यूप अभिलेख संकेत करता है कि मौखरी सेनापति बल मालवा गणराज्य की ओर कृत् युग सम्वत् चला रहा था। इलाहाबाद के समुद्रगुप्त के स्तम्भ लेख पर मौखरी गणराज्य जो कि कोटा क्षेत्र में था इसका गणराज्यों में नाम नहीं पाया गया। इससे अनुमान होता है कि 350 ईस्वी तक यह अपना महत्व खो चुका था। 'भीमचोरनी' (कोटा) क्षेत्र की खुदाई दर्शाती है कि मौखरी लोगों ने हूण सेना के विरूद्ध भी युद्ध लड़ा। हूणों के आक्रमण के उपरान्त मालवा का यशोधर्मन एक शक्तिशाली शासक के रूप में उभरा। उसके राजस्थानीय गवर्नर उभयदत्त ने इस क्षेत्र का विस्तार अरावली से लेकर नर्मदा नदी तक कर दिया। मंदसौर और माध्यमिका के अधूरे अभिलेख में संभवतः यशोधर्मन के शासनकाल की ओर संकेत किया गया है। 690 ईस्वी के झालरापाटन अभिलेख में मौर्य लोगों का भी नाम आया जिसमें इस परिवार के राजा दुर्गन्ना का नाम इस बात का संकेत करता है कि बाद में नागवंशियों ने मौर्य शासक की सत्ता स्वीकार कर ली थी।[27]

748 ईस्वी के चित्तौड़गढ़ पर शासन या अटरू तहसील के शेरगढ़ से प्राप्त अभिलेख में संकेत है कि 791 ईस्वी में सामन्त देवदत्त यहां का शासक था जिसने यहां बौद्ध मंदिर और मठ का निर्माण किया जो प्रतिहार शासकों का सामन्त प्रमुख था, जो वत्सराज नागभट्ट के अधीन थे। बिन्दुनाग, सर्वनाग, पद्मनाग इनके उत्तराधिकारी थे। मोर्यों के बाद धार के परमार राजाओं ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। जो कि शेरगढ़ के लक्ष्मीनारायण मंदिर के अभिलेख से संकेत है। इन शासकों वाग्पतिदेव, उदयदेव और नरवर्मन परमार का क्षेत्र बूंदी क्षेत्र तक मिला हुआ था। परमारों की शासन पर पकड़ ढीली होने पर भील और मीणा शासकों ने बूंदी और कोटा क्षेत्र जिसमें वर्तमान बारां क्षेत्र भी शामिल था, पर अधिकार कर लिया।[28]

धर्म :–

(i) बौद्धधर्म :– 790 ईस्वी में इस जिले में बौद्ध मंदिर और एक मठ शेरगढ़ जिसका प्राचीन नाम कोषवर्धन था, में स्थित है। देवदत्त ने इन दोनों को निर्मित कराया था। वह स्वयं भी बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था। जिले से लगे हुए कई स्थानों पर गुफाओं ने बौद्ध चित्रांकन इसका प्रमाण है। झालावाड़ तो इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है।[29]

(ii) जैनधर्म :– कोषवर्धन या शेरगढ़ 10वीं शताब्दी में चमका था।[30] ये एक राजपूत सरदार द्वारा स्थापित हुआ। 1105 ईस्वी का अभिलेख कहता है कि एक नये चैत्य में श्री नेमीनाथ तीर्थंकर की स्मृति में विशाल और सुंदर समारोह आयोजित किया गया था। इस समय जैन संत वीरसेन का काल चल रहा था। 1134 ईस्वी में देवपाल ने रत्नत्रय शांतिनाथ, कुंथनाथ, आरनाथ की पत्थर की मूतियाँ निर्मित कराई और उनको श्रृंगारित कराया और कोषवर्धन शहर (शेरगढ़) तत्कालीन राजधानी में उनकी प्रतिष्ठा का समारोह आयोजित किया।

9वीं या 10वीं शताब्दी में तत्कालीन श्रीनगर और वर्तमान रामगढ़ जिला बारां में जैन मत अपनी चमक पर था। रामगढ़ से पाँच किलोमीटर दूर जैन देवताओं से सम्बन्धित मूर्तियां 12वीं व 13वीं शताब्दी के अभिलेखों के साथ प्राप्त होती है जो जैन मत के महत्व को महिमामंडित करती है। बारां जिले के पास ही जैन मत की गद्दी भी थी और यहाँ स्थित भग्न जैन मंदिर यहां जैन मत होने की बात कहता है। यह शरणागतों और विद्वान लोगों के लिए शरणस्थली था। इसके समीपवर्ती जैन स्थान मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा भूमिसात् कर दिये गये। वर्तमान में अटरू कस्बे में 12वीं शताब्दी ईस्वी के श्री पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी के दो मंदिर अस्तित्व में है।[31]

(iii) वैष्णव एवं शैव मत :– शेरगढ़, रामगढ़, कृष्ण विलास और अटरू प्राचीनकाल से ही वैष्णव और शैव धर्मों के केन्द्र थे। शेरगढ़ का सोमनाथ मंदिर 10वीं और 11वीं शताब्दी में शैवमत का प्रधान केन्द्र था। परमार शासक उदयदित्य मालवराज ने यहां दर्शन किये और ग्राम दान किये ताकि समय–समय पर मंदिर के पूजा, भोग और निर्माण के लिए धन मिलता रहे। व्यापारियों की सहकारी संस्था द्वारा भी तथा व्यक्तिगत रूप से भी लोगों द्वारा इस मंदिर को यथासमय दान मिलते रहते थे।

हालांकि ये मंदिर लम्बे समय तक अस्तित्व में नहीं रहा परन्तु सोमनाथ शिवलिंग शायद लक्ष्मीनारायण मंदिर में स्थानान्तरित कर दिया गया क्योंकि यहां उन्हें अब भी सोमनाथ ही कहा जाता है।

रामगढ़ का भण्डदेवरा मंदिर बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध हो चुका था। यह ताराकृति से निर्मित है और इसका शिखर द्रविड़ शैली का है। मंदिर पर की हुई नक्काशी अपनी अति उच्च स्तरीय गुणवत्ता के साथ मूर्तिकला से युक्त होकर स्थाई आधारभूत आनंद का केन्द्र बन सकी है। यह मन्दिर प्रौढ़ हिन्दू कला का सुन्दर उदाहरण है। शिखरबन्ध मन्दिरों में यह उत्तम कोटि का मंदिर है। इसके शिखर, मण्डप, तोरण, स्तम्भ सब उत्तम कला के द्योतक हैं।[32] मण्डप के स्तम्भों पर अनेक प्रकार के अश्लील चित्र बने हुए हैं, जो ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी की कला तथा संस्कृति की विशेषता को दर्शाते हैं।[33]

शेरगढ़ में भी शैव मत की गहरी पकड़ थी। गड़गच का शिव मंदिर बड़ा सागर बुद्ध सागर के तट पर निर्मित है। सम्भवतः 10वीं सदी का है। यह शैव मत का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान था। इसके निर्माण का श्रेय राजा भेंसाशाह को दिया जाता है, जिसे कृष्ण विलास नामक स्थान में भी और अधिक मंदिर बना चुकने का श्रेय दिया जाता है। गड़गच के मंदिर की समाधि बिना चूना जोड़ के बनी हुई है। प्रस्तर खण्ड और चौकोरखण्ड साथ ही बड़े–बड़े स्तंभ, मेहराबें और कंगूरों से युक्त है। जो कि आपस में एक–दूसरे से बिना चूने या सीमेन्ट से संयुक्त है।

कोटा के अजायबघर में अनेक विष्णु मूर्तियां है जो अपनी विभिन्न मुद्राओं में है। इनमें आठवीं शताब्दी के शेषशायी विष्णु, चतुर्भुज विष्णु, नरवराह विष्णु, नवीं सदी अटरू से प्राप्त शिलालेख, किशनगंज तहसील के कृष्णविलास से मिली शूकर वराह मूर्ति, कन्यादह नामक स्थान से नवीं शताब्दी में निर्मित थी। ह्यग्रीव अवतार विष्णु नवीं शताब्दी में निर्मित एवं अटरू से प्राप्त वृषभान और शेरमुख तथा नारी चतुर्भुज मूर्तियां नवीं शताब्दी में निर्मित कृष्णविलास (विलासगढ़) नामक स्थान से प्राप्त हुई हैं।[34] उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ अतीत की व्यतीत उत्तम मूर्ति सौन्दर्य की प्रतीक है और तत्कालीन समृद्ध सांस्कृतिक युग की दूत हैं।

(B) मध्यकालीन इतिहास :–

राजपूतों ने मध्यकाल में मीणा राज्य क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया था। लगभग 1143 ईस्वी के बाद मीणाओं ने अपने गृह क्षेत्र छोड़ना शुरू किया और इनमें से बड़ी संख्या में मीणा लोग मालवा क्षेत्र के सुदूर क्षेत्रों की और बढ़े। कछवाह राजाओं ने इन्हें उत्तर की ओर खदेड़ा। चौहान अपने पैतृक स्थानों में, भील दक्षिणी क्षेत्रों में, खींची वंश के लोग पूर्व में अवस्थित थे।

13वीं शताब्दी में रावदेव/देवीसिंह नामक एक हाड़ा चौहान ने इन्हें अपने क्षेत्र में जोड़ लिया राव लक्ष्मण जो कि शाकम्भरी के वाक्पतिराज के पुत्रों में से एक था का उत्तराधिकारी था। कर्नल टॉड ने हाड़ा शब्द की उत्पत्ति के विषय में वर्णन करते हुए उक्त बात कही है। संभवतः हाड़ा शब्द प्रसिद्ध वीर अस्तिपाल से निकला हो। अस्तिपाल का पुत्र बाघ या बंगदेव और उसका पोता देव/ देवीसिंह था जिसके बारे में ऊपर कहा गया है। जिसने बूंदी को छल से 1241 ईस्वीं में हथिया लिया। दो वर्ष बाद उसने संन्यास ले लिया और अपना उत्तराधिकारी ज्यैष्ठ पुत्र समरसिंह को घोषित किया जिसने अपने राज्य को चम्बल के दक्षिण तक (बारां की ओर) फैलाया।[35]

समरसिंह और भीलों में संघर्ष होता रहता था। कोट्या भील जो कोटा राज्य का संस्थापक था, का दमन समरसिंह द्वारा किया गया। इसके पुत्र जैतसिंह ने स्वयं को नया शासक घोषित किया और भीलों की बस्तियों को बड़ी संख्या में उजाड़ दिया। कोट्या भील को भी अपने जाल में फंसा कर युद्ध के दौरान मार दिया। 1264 ईस्वी में अकेलगढ़ तत्पश्चात् कोटा पर अधिकार कर लिया। बाद में कोटा, बुंदी के राजकुमार के अधीन हो गया। समरसिंह अपने पैतृक स्थान 'बमावदा' की रक्षा करते हुए मारा गया। रणथम्भौर के राजा हम्मीर ने 13वीं सदी के अंत तक कोटा को अपने अधीन कर लिया। समरसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र नपूजी, हमीर सिंह, बाड़सिंह और दूसरे उत्तराधिकारी हुए।

समरसिंह के दूसरे पुत्र जैतसिंह ने कोटा पर राज्य जारी रखा। उसके पुत्र सुर्जन और पौत्र धीरदेह थे। गुजरात का सुल्तान और मालवा के शासक ने इस

हाड़ौती क्षेत्र को आक्रांत किया। 16वीं शती में कोटा–बूंदी मालवा के शासकों के हाथों से निकल गया।

सुरजन हाड़ा (1533–85 ईस्वी) जो कि मेवाड़ की सेवा में था, और 12 गांव की जागीर मिली हुई थी। इसने पठानों से कोटा को फिर छीन लिया तथा अपनी सत्ता का विस्तार बुन्दी और उसके आस–पास के क्षेत्रों तक कर दिया। मेवाड़ के शासक ने उसे रणथम्भौर का किलेदार नियुक्त किया जिसे 1569 ईस्वी में बादशाह अकबर को समर्पित करना पड़ा। सुरजनसिंह को मनसबदारी प्रदान कर दी गई।

गोंडवाना विजय के उपरांत अकबर ने सुरजन हाड़ा को बीनारस और चुनार का हाकिम नियुक्त किया। बूंदी और बीनारस के निकट का विशाल क्षेत्र उसको समर्पित कर दिया। 1585 ईस्वी में बीनारस में उसकी मृत्यु हो गई। रणथम्भौर की सरकार अजमेर सूबे के अधीन थी, जिसने कोटा और बूंदी क्षेत्रों को पूर्वमत मिला दिया जिसे 'नगर' नाम से जाना गया। राव सुरजन के पुत्र भोज ने पिता की मृत्युपरान्त प्राप्त कोटा का विस्तार बूंदी तक कर कोटा को अपने द्वितीय पुत्र हृदयनारायण को सौंप दिया। उसके पुत्र रावरतन ने 1607 ईस्वी में कोटा उत्तराधिकार में प्राप्त किया।[36]

1624 ईस्वीं में राजकुमार खुर्रम (शाहजहां) के विद्रोह के समय राव रतन और हृदयनारायण शाही सेनाओं के हरावल में थे विजय के उपलक्ष्य में जहांगीर ने कोटा पर रावरतन को सत्तासीन कर दिया। जिसका उत्तराधिकारी माधोसिंह बना। विजय में सहयोग के बदले महावतखान और बुंदी के रावरतन को गवर्नर बना दिया। टॉड के अनुसार कोटा राज्य इस समय असीम उन्नति पर था। इसकी सीमाएं गागरोन और घाटोली तक थी। इसके बाद पूर्व में खींची थे और इस तरह कोटा की बूंदी राजाओं के प्रति अधीनता समाप्त हो गई।

मुगल मनसबदार के रूप में खंजन लोधी और बाद में जुझार सिंह बुंदेला 1635 ईस्वी में शाही सेनाओं का साथ दिया। कंधार, बल्क एवं बदख्शा के अभियान में भी तीन महीने के लिए इसकी सेवाएं सराहनीय रही और बल्ख किला मुगलों के अधीन हो गया। तत्पश्चात् इसने अपनी राज्य की सीमाओं का और अधिक विस्तार

किया। माधोसिंह के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र मुकंदसिंह तत्पश्चात् जगतसिंह अन्ततः किशोरसिंह, माधोसिंह का सबसे छोटा पुत्र शाही सेनाओं के साथ रहा।

अधिकांश समय दक्षिण भारत में इसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को शाही सेना में सहयोग करने को कहा किंतु माता के प्रभाव से उसने अपने पिता की बात नहीं मानी। दण्डस्वरूप उसे राज्याधिकार से पृथक् करके वर्तमान बारां जिले की अंता की बड़ी जागीर प्रदान की। किशोरसिंह ने अपने द्वितीय पुत्र रामसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। जिसने उसका शाही सेनाओं की दक्षिण विजय में सहयोग किया। बाद में बिशनसिंह ने कोटा पर अधिकार कर लिया। मुगल राजाओं ने रामसिंह को कोटा का उत्तराधिकारी माना और बिशनसिंह को बाहर जाने को कहा। आवन के निकट युद्ध में बिशनसिंह पराजित हो गया। इसके साथ ही राज्य रामसिंह के हाथ में आ गया।

दिल्ली के सम्राटों के कमजोर उत्तराधिकारियों के कारण उत्त भारत में पिण्डारी और मराठा लोग अधिक शक्तिशाली बन चुके थे एवं चौथ वसूली करने लगे थे। दो प्रतिद्वन्द्वी मराठा शक्तियां सिंधिया और होल्कर ने कोटा के 'कारवेरी' नामक स्थान पर युद्ध किया जिसमें सिंधिया विजयी रहे और इस प्रकार उत्तरी भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में उभरे। जालिमसिंह ने आमिर खान पिण्डारी को शेरगढ़ में शरण देकर अपना पक्ष मजबूत कर लिया। उसने मराठाओं के उपरोक्त विवाद में भी हिस्सा नहीं लिया और न ही उनके विरूद्ध सेना भेजी बल्कि उन्हें जागीर और वार्षिक रूप से कई लाख रुपये कर प्रदान करने का वादा करके प्रसन्न कर लिया।

1804 ईस्वी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्नल मानसून को होल्कर के विरूद्ध भेजा गया। पलायथा (अंता) के प्रमुख अमरसिंह के सहयोग से सेनाओं का नेतृत्व किया किन्तु होल्कर के समक्ष न ठहर सका, केप्टन लुकेन मारा गया। होल्कर ने जालिमसिंह को कर्नल मानसून को सहायता देने के दण्डस्वरूप कोटा पर घेरा डाल दिया। जालिमसिंह ने होल्कर को तीन लाख रुपये वार्षिक कर देने का वादा किया और एक संधि भी की।[37] जालिमसिंह एक कूटनीतिज्ञ था उसने बूंदी के राज्य में अप्रत्यक्ष रूप से आंतरिक प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप जारी रखा। जैसे कि इसने उदयपुर महाराजा को अग्रिम ऋण दिया और इसके बदले में कई परगनों की सुरक्षा

करने का वादा किया। हालांकि जालिमसिंह के नियुक्त अधिकारी ही वहां का प्रशासन कर रहे थे।

(C) आधुनिक काल :– जालिमसिंह ने कोटा राज्य में कई पिंडारी परिवारों को शरण दी। इस तरह पिंडारियों से उनके सम्बन्ध बन गये थे परन्तु जब ब्रिटिश सरकार ने 1817 ईस्वी में पिंडारियों के दमन के लिए जालिमसिंह से सहायता मांगी तो ये तुरन्त तैयार हो गया। इस संदर्भ में एचिसन का कथन है कि कोटा सबसे पहला राजपूत राज्य था जिसने पिंडरियों के विरूद्ध अंग्रेज सरकार को सहायता दी। इसके बदले ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने 1818 ईस्वी में कोटा को अपनी सुरक्षा देने का वादा किया और एक संधि की गई। संधि के नवे अनुच्छेद में ब्रिटिश आपत्ति के समय भी जालिमसिंह की सैन्य सहायता अनिवार्य कर दी।[38]

मार्च 1870 में एक पूरक अनुच्छेद जोड़ा गया जिसमें कम्पनी गवर्नर जनरल ने महाराज उम्मेदसिंह को यह अनुमति दी कि वे राज्य का उत्तराधिकारी किशोरसिंह और उसका उत्तराधिकार उसके वंश क्रम द्वारा चलता रहेगा। इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य का प्रशासन राजराणा जालिमसिंह के अधिकार में था और उनके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र माधोसिंह और उनके उत्तराधिकारी क्रमशः राज्य करते रहे। शाहाबाद पर 25000/– रूपये का अर्थदण्ड जो कि जालिमसिंह के अधीन राज्य था, 1819 में अर्थदण्ड समाप्त कर दिया गया। मेवाड़ के साथ पूर्ण ऋण के सम्बन्ध में जो सुरक्षा के लिए चार परगने लिये गये थे डग, पचपहाड़, अहोर और गंगरार होल्कर द्वारा जीते हुए कोटा को सौंप दिये। महाराव उम्मेदसिंह की 1819 ईस्वी में मृत्यु के पश्चात् किशोरसिंह गद्दी पर बैठे। उन्होंने पूरक अनुच्छेद में महाराव उम्मेदसिंह को दिये जाने वाले अज्ञात वार्षिक कर की बात याद दिलाई पर उनके नकारे जाने पर उन्होंने सैन्य दबाव का प्रयास किया परन्तु अंग्रेजो द्वारा उसे नजरबंद कर लिया गया। एक रात किशोरसिंह बचकर बूंदी पहुँचे और बूंदी के शासक से अनुरोध किया कि वे जालिमसिंह को बेदखल के लिए सैन्य सहायता प्रदान करें। बूंदी की सहायता से किशोरसिंह ने कोटा पर आक्रमण किया और मांगरोल तक पहुँच गए। जालिमसिंह ईस्ट इण्डिया कम्पनी की दो सैन्य टुकड़ियों के सहयोग से किशोर सिंह को हराने में सफल रहे जो नाथद्वारा तक पहुंच गए जहां वह नौ माह तक रहा।

यह महाराणा के राज्य में घुसपैठ थी। ब्रिटिश पॉलिटिकल एजेन्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी और महाराव किशोरसिंह के मध्य एक संधि हुई जिसमें कोटा राज्य को अपनी पुरानी स्थिति और वार्षिक भत्ता 164877 रूपये स्वीकार कर लिया और उन्होंने प्रशासन के सभी मामलों में सर्वोच्चता स्वीकार कर ली जो पूरक अनुच्छेद में पूर्व में भी सम्मिलित था। जालिमसिंह की 1824 ईस्वी में मृत्यु एवं 1828 ईस्वी में महाराव किशोरसिंह की मृत्यु होने पर उनका भतीजा रामसिंह उत्तराधिकारी बना। इस समय वर्तमान झालावाड़ में तथाकथित राजकुमारों ने मदनसिंह को उत्तराधिकारी बनाने की चेष्टा की।

फलस्वरूप जालिमसिंह के उत्तराधिकारियों ने झालावाड़ नामक राज्य कोटा के कुछ क्षेत्रों को अलग करके बनाया। इसे मान्यता के लिए कम्पनी सरकार और कोटा के महाराव रामसिंह के बीच अप्रैल 1838 में संधि हुई जिसमें कोटा के 17 परगने मिलाकर झालावाड़ राज्य के निर्माण की बात कही गई थी। जिसमें वर्तमान बारां जिले के छीपाबड़ौद, फूल बड़ौदा, शैरगढ़ के परवन/ नेवज के पूर्वी तट के क्षेत्र व सहरिया बाहुल्य क्षेत्र शाहाबाद शामिल था।[39]

बारां और 1857 का समर :– विप्लव

ईस्वी 1857 में भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया। यह क्रान्ति अंग्रेजी शासन के विरूद्ध कुछ देशी राजा–रानी, बादशाह–बेगम और सैनिकों ने की थी जो अंग्रेजी शासन से तंग आ गये थे। वस्तुतः अंग्रेजों के भारत में आने से पहले यही राजा–रानी, बादशाह–बेगम और सैनिक, जन सामान्य पर अत्याचार करते थे किन्तु जब अंग्रेजों ने अपना शासन जमाना आरम्भ किया तो उन्होंने इन्हीं राजा–रानी, बादशाह–बेगम, सैनिक तथा पिण्डारियों को अपना निशाना बनाया।

अतः 1857 में जब पुराने सत्ताधारी उत्तेजित हुए तो जन सामान्य ने उसमें कोई रुचि नहीं दिखाई, दूसरी तरफ जो बड़े राजा थे उन्हें भी अंग्रेजों से कोई शिकायत नहीं थी क्योंकि अंग्रेजों के आने से पहले वे मुगल बादशाह और मुगल बादशाह के कमजोर पड़ जाने पर मराठों को कर देते आये थे। मराठों ने देशी रजवाड़ों विशेषकर राजपूताने के रजवाड़ों पर बहुत अत्याचार किये थे और चौथ वसूली के लिये उनकी नाक में दम कर रखा था। अंग्रेजों ने पिण्डारियों, भीलों तथा

सिन्धी सैनिकों का दमन करके चारों ओर अमन शांति कायम की थी। अतः बड़े राजा भी अंग्रेजों के पक्ष में थे यही कारण था कि यह क्रान्ति छोटे ठिकानेदारों ने की और बड़े राजाओं ने उसे दबा दिया। इस पूरी क्रान्ति में जन सामान्य का थोड़ा बहुत झुकाव था तो वह था झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई और तात्या टोपे से, बड़े बादशाह और बेगमों में केवल मुगलों का अन्तिम पेन्शनर बादशाह बहादुर शाह द्वितीय था जो उस समय तक बूढ़ा, जर्जर और पूरी तरह अशक्त हो चुका था और 'बहादुरशाह जफर' के नाम से गजलें लिखा करता था।[40]

उसका शासन केवल लाल किले में चलता था। ग्वालियर में अंग्रेजों के हाथों परास्त होकर तात्या टोपे राजस्थान की तरफ मुड़ा। उसके आने से राजस्थान का जनसामान्य इस क्रान्ति के प्रति लगाव अनुभव करने लगा। तात्या को आशा थी कि जयपुर, बूंदी और कोटा से उसे सहायता मिलेगी किन्तु वहां से सहायता नहीं मिलने पर तात्या लालसोट की तरफ बढ़ा किन्तु टोंक नवाब ने उसकी सहायता नहीं की। टोंक की सेना ने तात्या का समर्थन किया किन्तु उसे उदयपुर व सलुम्बर की तरफ भागना पड़ा। राजस्थान से निराश होकर उसने महाराष्ट्र की ओर जाने का मानस बनाया किन्तु वर्षा ऋतु के कारण वह चम्बल को पार नहीं कर सका तब वह कोटा बूंदी की तरफ गया वहां से भागकर झालावाड़ आया। झालावाड़ नरेश पृथ्वीसिंह ने तात्या की कोई सहायता नहीं की। इस पर तात्या ने झालावाड़ पर अधिकार कर लिया। झालावाड़ की जनता ने सेना व तात्या का स्वागत किया और उसकी भरसक सहायता की।[41]

राबर्ट हैमिल्टन, माइकल तथा होम्स आदि अंग्रेंजी अफसर अपनी सेना लेकर तात्या का पीछा कर रहे थे। देशी राजाओं की सेनायें भी तात्या के पीछे लगी हुई थी। 15 सितम्बर 1857 को उसने राजस्थान छोड़ दिया किन्तु शीघ्र ही उसे पुनः राजस्थान में घुसना पड़ा। स्थान–स्थान पर वह अंग्रेजी सेना से लड़ता रहा और अन्त में नाहरगढ़ के पास नरवर के जंगलों से वहां के जागीरदार ने धोखे से पकड़कर अंग्रेजों के हवाले कर दिया और 1859 में उसे फांसी दे दी गई। तात्या के पतन के साथ राजस्थान में 1857 की क्रान्ति समाप्त हो गई।

1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई युद्ध करते हुए अपने दत्तक पुत्र को अपनी पीठ पर बांधे ग्वालियर, गुना, बीना, झालावाड़ होते हुए बारां के निकट कालीसिंध नदी के तट तक आ पहुंची और राजस्थान में स्वतन्त्रता की चिंगारी सुलगा दी। राजस्थान की रियासतों से मदद की उम्मीद न पाकर वो वापस लौट गयी जहां ग्वालियर में युद्ध करते हुए शहीद हो गई।[42]

कोटा की सैन्य टुकड़ियां बारां जिले के शेरगढ़ में नियुक्त थी। उन्होंने भी इस समय क्रान्ति में सहयोग किया और अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल बजा दिया। असहाय महाराव ने कहा कि मुझसे जबरदस्ती बर्टन के मारे जाने के दस्तावेज पर हस्ताक्षर कराये गए। करौली राज्य के सैन्य दल के सही समय पर सहायता करने से महाराव दुखान्तिका से उबर गए। मेजर जनरल एच.जी. राबर्ट्स नसीराबाद से पचपन सौ सैनिकों के दल के साथ आया और चम्बल के बाईं तट पर पड़ाव डाला और कोटा गढ़ को जीत लिया। बड़े स्तर पर लूट–पाट और हत्याएँ हुई। कानून और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ तभी स्थापित हो पायी जब महाराव को प्रशासन सौंप दिया। बर्टन की हत्या के अभियोग में महाराव का सहयोग पर जांच बिठाई गई जिसमें उसे उपेक्षा का दोषी पाया गया। दण्डस्वरूप महाराव के सम्मान में चार तोपों की सलामी कम कर दी गई। देवली के निकट जयदयाल और मेहराब खां तथा उनके सहयोगियों को कोर्ट ने सजा सुना दी और कोटा में अस्थाई रूप से देवली का अंग्रेजी सैन्य दल बढ़ा दिया गया। अब कोटा की राज्य अर्थव्यवस्था असंतोषजनक हो गई थी।

सत्ताईस लाख रुपये कम्पनी का कर्ज बकाया था। ऐसी स्थिति में 1863 में महाराव रामसिंह (द्वितीय) मृत्यु को प्राप्त हुए। उनकी पत्नी को अंग्रेजों द्वारा सती होने से रोक दिया गया। तत्पश्चात् उनका पुत्र शत्रुशाल सिंह उर्फ भीमसिंह कोटा का नया शासक बना। 1857 में कम की गई तोपों की सलामी फिर से सत्रह कर दी गयी। एक संधि पर 1869 में हस्ताक्षर हुए जिसमें आपसी अपराधियों को सौंपने की बात थी। 1874 में कोटा राज्य की वास्तविक शक्ति, अंग्रेज एजेन्ट जिसे राजपूताना का गवर्नर जनरल कहा गया, में निहित कर दी गई तथा महाराव को राज्य के किसी

भी कार्य में हस्तक्षेप के लिए मना कर दिया गया। उन्हें अपने रख–रखाव हेतु उचित भत्ता दे दिया गया।[43]

तत्कालीन बारां में 1881 में अफीम केन्द्र बनाया गया। यहां से दो प्रकार से अफीम भेजी जाती थी एक तो चीनी बाजार में और दूसरे गेदों की शक्ल में बॉम्बे को भेजी जाती थी। वहां से बीकानेर, जैसलमेर, राज्यों को बट्टी (केक) के रूप में भेजा जाता था। कोटा और बारां इनके मुख्य व्यापारिक केन्द्र थे। मुख्य व्यापारिक जातियां महाजन और बोहरा थीं।

1888 में शत्रुशालसिंह (भीमसिंह) की मृत्यु के पश्चात् उनके दत्तक पुत्र उम्मेद सिंह (द्वितीय) जो कि कोटा के महाराजा छगनसिंह का द्वितीय पुत्र था, राजा बना। जिसे अपनी सम्पूर्ण राजस्व शक्तियां 1896 ईस्वी में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान की गई। इस समय की प्रमुख घटना 17 में से 15 परगने जो 1838 में झालावाड़ को सौंप दिये थे, वापस कोटा को दे दिये गए और इनका देय कर पचास हजार रुपये बढ़ाया गया। महाराव का शासन लगभग आधी शताब्दी तक 1940 ईस्वी तक चला। इस काल में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई जिनमें प्रमुख है गुना से बारां ब्रॉडगेज लाइन का बनना। बाद में इसे बॉम्बे की नागदा मथुरा लाईन से जोड़ दिया गया। तत्पश्चात् बड़ोदरा व मध्य रेल्वे से जोड़ दिया गया। 1901 में महाराव ने डाक सेवा की स्वीकृति प्रदान की और इस समय स्थानीय मुद्रा के स्थान पर जार्ज पंचम की रजत मुद्राएं शुरू हुई।[44]

लॉर्ड इरविन के समय 1929 ईस्वी में कोटा राज्य में क्रान्तिकारी गतिविधियों की हलचल ने कोटा के दूसरे स्थानों को भी समाहित कर लिया। बमूलिया, खेड़ली, सांगोद, आमली के जागीरदार महाराव के निकट सम्बन्धी थे।

वर्तमान बारां जिले के कोयला के जागीरदार कनीराम जो राव माधोसिंह के चतुर्थ पुत्र थे। इनके राज्य में कोयला के अतिरिक्त नौ ग्राम थे। 2101/– रु. वार्षिक कर के रूप में अंग्रेजों को दिया करते थे।[45]

1940 ईस्वी में महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद उनका पुत्र भीमसिंह (द्वितीय) कोटा का महाराव हुआ। इनके शासन काल में कोटा राज्य प्रजामण्डल ने अपना पांचवाँ वार्षिक सत्र आयोजित किया जिसमें राजस्व एवं आर्थिक तथा

राजनैतिक विषय के कई सुधारों के दृढ़ संकल्प प्रस्तुत किए गए। 1941 में इसका सम्मेलन बारां जिले के मांगरोल में आयोजित हुआ जिसमें कई स्थानीय सुधारों की मांग ब्रिटिश सरकार से की गई। महाराव भीमसिंह (द्वितीय) के शासन काल में भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई तेज हुई। हाड़ौती प्रजा मण्डल, कोटा राज्य प्रजा मण्डल तथा कांग्रेस के नेतृत्व में कोटा राज्य में स्वतंत्रता की चिंगारी प्रज्ज्वलित हुई।[46]

1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त नौ राज्य कोटा, बूंदी, बांसवाड़ा, दुर्गापुरा, झालावाड़, किशनगढ़, प्रतापगढ, शाहपुरा, टोंक, कुशलगढ़ व लावा के ठिकानों को मिलाकर पूर्व राजस्थान का निर्माण हुआ। कोटा इसकी राजधानी रही। महाराव को कोटा का राजप्रमुख बनाया गया। जब उदयपुर इस संघ से जुड़ा तो उदयपुर इसकी राजधानी बनी। जवाहरलाल नेहरू ने इसका उद्घाटन किया। उदयपुर महाराणा को राजप्रमुख, कोटा के महाराव को उप राजप्रमुख बनाया गया। तत्पश्चात् इस संघ को वृहद् राजस्थान में मिला दिया गया। बाद में वर्तमान राजस्थान संघ बना। कोटा महाराव इसके उप राजप्रमुख यथावत् रहे।[47]

राजस्थान निर्माण के पूर्व वर्तमान बारां जिले की छबड़ा तहसील टोंक राज्य का परगना थी। तब यह मालवा राज्य का भाग थी। यहां दो सुदृढ़ किले छबड़ा शहर का किला व गुगोर का किला खींची ठाकुरों द्वारा बनवाये गए। मराठा विद्रोहियों में फूट डालने` लिए मालवा के राजा बलवंतसिंह के शासन काल में यह परगना हॉल्कर को दिया गया। बाद में इसे सिंधिया ने बदल लिया और छजौन के बदले 1816 में राव जसवंत हॉल्कर ने इसे आमिर खां पिण्डारी को दे दिया। इसका क्षेत्रफल 316 वर्गमील था। जब 1817 में टोंक राज्य बना तो इसके छः परगने थे निम्बाहेड़ा, टोंक, अलीगढ़, पिड़ावा, सिरोंज और छबड़ा। ये सभी राजपुताना और मध्यप्रदेश के लम्बे भाग में फैले हुए थे। पिड़ावा, सिरोंज और छबड़ा को बाद में मालवा के पॉलिटिकल एजेन्ट के संरक्षण में भोपाल व ग्वालियर का यहां मुख्य आधिपत्य (रेजीडेन्सी) था। राजस्थान निर्माण के पश्चात् टोंक जिले का पुनर्निर्माण होकर छबड़ा और सिरोंज परगना जो पूर्व में टोंक राज्य में था, छबड़ा कोटा जिले को जबकि निम्बाहेड़ा चित्तौड़गढ़ जिले को और पिड़ावा झालावाड़ जिले को दे दिए गए। सिरोंज और लटेरी मध्यप्रदेश को प्रदान कर दिया गया।[48]

1949 में कोटा जिला निम्नलिखित चार उपखण्डों और उन्नीस तहसीलों में विभाजित था–

1. कोटा – लाडपुरा, बड़ौद, कनवास, दीगोद, इटावा, सांगोद और चेचट
2. बारां – बारां, अंता, मांगरोल
3. अटरू – अटरू, किशनगज, शाहाबाद, छबड़ा
4. सिरोंज – सिरोंज व लटेरी

हालांकि तुरन्त बाद छबड़ा को अटरू के स्थान पर उपखण्ड बनाया गया और चेचट उपखण्ड अलग से बनाया गया। आजादी के बाद संयुक्त राजस्थान का गठन होने पर बारां को कोटा जिले का अंग बना दिया गया था। बारां तियालीस साल से अधिक समय तक कोटा जिले का तहसील एवं उपखण्ड मुख्यालय बना रहा। राजस्थान सरकार द्वारा मार्च 91 में घोषित किए गए तीन नए जिलों में बारां को पृथक् से 10 अप्रेल, 1991 को जिला इकाई का दर्जा दिया गया।[49]

बारां जिला बनने से पहले शाहाबाद कोटा जिले में और उससे पहले कोटा राज्य में था। कोटा राज्य में आने से पूर्व यह एक स्वतंत्र राज्य था तथा शाहाबाद इस राज्य की राजधानी था। वर्तमान में शाहाबाद कस्बा राजस्थान के बारां जिले में सब डिवीजन मुख्यालय है।[50]

शाहबाद का इतिहास :–

शाहाबाद नगर का पूर्व महत्व इसी से आंका जा सकता है जब जनश्रुति में यह कहा जाता है कि जिस समय कोटा में साठ घर भी नहीं थे तब शाहाबाद में साठ हजार की बस्ती थी। इसका प्रमाण आज भी शाहाबाद क्षेत्र में दूर–दूर तक फैले खण्डहरों एवं पुरानी हवेली, महलों, गढ़ और शहर पनाह से मिल जाता है।[51]

शाहाबाद में अनेक स्थानों पर प्राप्त पुरावशेषों के आधार पर यह बस्ती 9वीं–10वीं शती में निर्मित प्रतीत होती है। इसके क्रमिक इतिहास का ज्ञान तो सोलहवीं शती के प्रारम्भ से ही मिलता है। कोटा राज्य के पुराने इतिहास लेखक मुंशी मूलचंद के अनुसार इस भूभाग पर पहले 8वीं शती से धनेड़िया नामक राजपूतों का अधिकार था। उनके अनुसार रणथम्भौर के प्रतापी शासक हमीर के पुत्र जसराज के वंशज सारंगदेव ने सावरगढ़ से आकर 1408 ईस्वी में धनेड़िया राजपूतों से इस

भूभाग को छीन कर अपना राज्य स्थापित किया तथा कूनू नदी के किनारे पर सहजनपुर को अपनी राजधानी बनाया। आगे चलकर जसराज के वंशज मुकुटमणिदेव ने सहजनपुर के स्थान पर शाहाबाद को अपनी राजधानी बनाया।[52]

कोटा के पुराने इतिहास ''तारीख–ए–राजगान'' के अनुसार कालिंजर अभियान के दौरान शेरशाह सूरी शाहाबाद के पास से ही गुजरा था तथा कस्बाथाना के पास शाहाबाद के शासक मुकुटमणि से शेरशाह सूरी का युद्ध हुआ। इस युद्ध के उपरान्त दोनों में संधि हो गई। संधि के दौरान शाहाबाद का नाम शेरशाह के पुत्र सलीम शाह के नाम पर इसका नाम सलीमाबाद रखा गया। कालान्तर में जब इस दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया तो इसका नाम शाहाबाद रखा गया। शाहाबाद के शासक मुगल मनसबदार हो गये।[53]

इन्द्रमन शाहाबाद का अन्तिम प्रतापी शासक था। उसने शाहाबाद में अनेक निर्माण करवाये, इनमें से सावन भादो महल तथा इन्द्रपोल प्रमुख थे। इन्द्रमन शाहजहां और औरंगजेब के शासनकाल में मनसबदार था। मुगल दरबार में इन्द्रमन का महत्त्व इस बात से आंका जा सकता है कि जब उसके समकालीन कोटा के राजा जगतसिंह का मनसब 2000 जात, 1500 सवार का था तब इन्द्रमन का मनसब 4000 जात, 3000 सवार का था। मुगलकाल में हुये उत्तराधिकार के युद्ध (सामूगढ़) के युद्ध में इन्द्रमन औरंगजेब के साथ था। वह औरंगजेब की दाहिनी सेना में चम्पत राय बुन्देला तथा भगवन सिह हाड़ा के साथ युद्ध भूमि में था।[54]

मुगलों की सत्ता जैसे ही हिन्दुस्तान से अपनी चमक खोने लगी, वैसे ही मराठों ने हिन्दुस्तान पर अपनी महत्वाकांक्षी नजर डाली मराठे दक्षिण से चलकर उत्तर की तरफ साम्राज्य विस्तार करने लगे। मराठा सरदार खाण्डेराव ने मुगल मनसबदार कोटा राज्य से जीत कर शाहाबाद में मराठा पताका फहरा दिया। यह क्षेत्र कभी मराठों के पास तो कभी कोटा राज्य के पास आता जाता रहा किन्तु अन्तिम रूप से शाहाबाद को सन् 1779 में कोटा के फौजदार जालिमसिंह ने इसे जीत कर मराठा सरदार सिंधिया को इसका हर्जाना देकर हमेशा के लिए कोटा राज्य का हिस्सा बना लिया।[55]

टीका दौर (1780) :–

अपनी शक्ति को अधिक प्रबल और सुदृढ़ करने के लिये जालिम सिंह ने यह एक युक्ति सोची। भारतवर्ष में प्राचीन प्रथा थी कि राज्याभिषेक के बाद नवाभिषिक्त राजा दिग्विजय के लिये प्रयाण करे क्योंकि पार्श्ववर्ती राजाओं को अपने अधीन करना पराक्रमी राजा का धर्म समझा जाता था। इस परम्परागत राजनीति का आश्रय लेकर जालिमसिंह उम्मेदसिंह को भी एक प्रकार से दिग्विजय के लिये तैयार किया। जालिमसिंह समझता था कि कोटा नरेश के लिये दिग्विजय शब्द का प्रयोग करना एक प्रकार का उपहास होगा। इसलिये उसने इस विजय प्रयाण का नाम 'टीका दौर' रखा।[56]

यह वास्तव में जालिम सिंह की बड़ी चाल थी। कोटा राज्य के निकटवर्ती छोट–छोटे राज्य और ठिकानों को अधिकृत करके वह अपने आपको बड़ा विजेता घोषित करना चाहता था और साथ ही राज्य का विस्तार करके कोटा नरेश के धन्यवाद का पात्र बनना चाहता था। राज्य के असन्तुष्ट भाइयों का मुँह बन्द करने के लिये भी यह अच्छा साधन था।[57]

शाहाबाद विजय :–

'टीका दौर' में जालिमसिंह का मुख्य कार्य शाहाबाद की विजय है। उस समय शाहाबाद मेघसिंह के अधिकार में था। यह मेघराज खाँडेराव का पुत्र था। शाहाबाद को खाँडेराव से ही महाराव भीमसिंहजी ने छीन लिया था, परन्तु दुर्गमता के कारण यह इलाका अर्जुनसिंह जी के शासन काल में फिर उसने अधिकृत कर लिया था। अब मेघसिंह का राज्य भँवरगढ़ तक फैला हुआ था। उसके राज्य में अधिकांश जंगली इलाका था और राज्य की आमदनी भी थोड़ी थी। इसीलिये किले में केवल 300 आदमी रहते थे। जालिमसिंह ने अपनी कूटनीति के द्वारा इनमें से लगभग 200 सिपाहियों को अपनी ओर मिला लिया और मौका देखकर किले पर आक्रमण कर दिया।

कोटा की सेना का नायक बडोरा का जमादार अनवरखाँ था। किले पर बड़ी लड़ाई हुई, परन्तु मेघसिंह कोटे की सेना से क्या लड़ सकता था? बड़ी वीरता और साहस के साथ लड़ता हुआ वह मारा गया। इसी समय जालिमसिंह वहाँ पहुँच गया और चैत्र सुदी 9 सम्वत् 1836 को किले में महाराव उम्मेदसिंहजी की दुहाई फेर दी। किले पर अधिकार स्थापित कर लेने के बाद जालिमसिंह ने जमादार अनवरखाँ

को केलवाड़ा जागीर में दिया और हुक्म दिया कि वह वहीं रहकर शाहाबाद की भी निगरानी करता रहे।[58]

झाला जालिम सिंह ने मराठा सरदार खाण्डेराव के पुत्र मेघसिंह से यह युद्ध छलपूर्वक जीता था। इसके सम्बन्ध में एक किवदंती प्रचलित है कि कोटा वालों ने मेघसिंह और उसके सामन्तों को कुण्डाखोह नामक स्थान पर गोठ (चूरमा बाटी) के भोजन के रूप में आमन्त्रित किया। भोजन के उपरान्त जब मराठे सैनिक आराम में व्यस्त थे तब झाला जालिम सिंह के सेनापति बडोदा के जागीरदार अनवरखां ने शाहाबाद पर आक्रमण कर दिया और शाहाबाद पर अपना अधिकार कर लिया। कोटा में यह कहावत प्रचलित हो गई कि ब्राह्मणों ने लड्डूओं के लालच में शाहाबाद का दुर्ग खो दिया।[59]

शाहाबाद की मामलत निश्चित हुई :– शाहाबाद का किला जालिमसिंह ने सेंधिया की अनुमति लिये बिना ही फतेह कर लिया था। शायद मेघसिंह सेंधिया को मामलत देता था। अतः विजय के बाद ही सेंधिया ने ऐतराज उठाया कि उसकी आज्ञा के बिना किला क्यों फतह कर लिया गया? उसको सन्तुष्ट करने के लिये पण्डित लालाजी बल्लाल और जोशी देवकरण को ग्वालियर भेजा गया। दोनों के द्वारा निश्चित हुआ कि शाहाबाद की मामलत के प्रति वर्ष 30000 रुपये दिये जावें।[60]

शाहाबाद झाला जालिम सिंह ने जीता था। अतः 1837 ई. में उसके पोते मदनसिंह के समय में पृथक झालावाड़ राज्य का निर्माण होने से शाहाबाद झालावाड़ राज्य में चला गया।[61] तब से 1899 ई. तक शाहाबाद झालावाड़ राज्य में रहा।[62] 1899 में जब झालावाड़ से कुछ परगने वापस कोटा में आये तब शाहाबाद पुनः कोटा राज्य में चला गया और तब से 1949 तक कोटा राज्य में रहा। फिर 1991 में कोटा से पृथक होकर ये बारां जिला बनने पर बारां जिले का उपखण्ड मुख्यालय बन गया।[63]

नाहरगढ़ 1712 में नाहर सिंह राठौड़ द्वारा बसाया गया। नाहरगढ़ बारां जिले के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। नाहरसिंह अपने साम्राज्य को कोटा से पृथक कर स्वतन्त्र रूप से शासन चलाने लगा, तथा स्वयं को कोटा महाराव के नियन्त्रण से मुक्त समझता था और अपने को मुगल बादशाह का सुबेदार मानता था। नाहरसिंह अपना धर्म परिवर्तित कर मुसलमान हो गया था तथा अपना नाम नाहरखां रख लिया

परिणाम स्वरूप कोटा महाराव दुर्जनशाल नाहरखां को दबाने में असफल हो रहा था जिसके परिणामस्वरूप उसने कूटनीति के तहत मराठों के माध्यम से नाहरखां को कुचलने की नीति अपनाई। कोटा महाराव दुर्जनशाल ने मराठा सरदार पीलाजी जाधव से यह निश्चित किया कि नाहरगढ़ का किला उन्हें दिलाया जाये। इसके बदले में मराठों को 150000 रुपये देंगे तथा रसद सामग्री व अन्य सैन्य व्यवस्था भी उपलब्ध करवायेंगे। पीलाजी जाधव ने मराठा फौज के साथ आक्रमण किया जिसमें नाहर खां परास्त हुआ और नाहरगढ़ कोटा में शामिल हो गया। बारां जिला बनने के उपरान्त यह बारां जिले में शामिल हो गया।[64]

पाद टिप्पणी

1. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-1.
2. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, अप्रैल, 2010, पृ. 1
3. मोहनलाल गुप्ता – कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, 2009, पृ. 81
4. मोहनलाल गुप्ता – कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 81
5. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-1.
6. वही, पृ. 1
7. पत्रिका ईयर बुक, (2012) राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 776
8. वही, पृ. 776
9. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-29
10. मोहनलाल गुप्ता – कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 81
11. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-81
12. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, अप्रैल, 2010, पृ. 203
13. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-82
14. वही, पृ. 82
15. वही, पृ. 83
16. स्त्रोत – तहसीलदार, तहसील कार्यालय शाहाबाद।
17. अनिल कुमार तिवाड़ी – राजस्थान का प्रादेशिक भूगोल, पृ. 182 एवं हरिमोहन सक्सेना

18. स्त्रोत – तहसीलदार, तहसील कार्यालय शाहाबाद।
19. वही
20. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 6
21. वही, पृ. 6
22. मोहनलाल गुप्ता – कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 81
23. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-29
24. वासुदेवशरण अग्रवाल : पाणिनिकालीन भारतवर्ष (द्वितीय सं.), वाराणसी, पृ. 52
25. मोहनलाल गुप्ता – कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 71
26. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-29
27. वही, पृ. 32
28. वही, पृ. 32
29. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 129
30. वही, पृ. 129
31. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-32
32. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 19
33. वही, पृ. 19
34. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-33
35. वही, पृ. 33
36. वही, पृ. 34
37 जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 49
38. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-40
39. वही, पृ. 40

40. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, 2009, पृ. 110

41. वही, पृ. 110

42. वही, पृ. 111

43. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-43

44. वही, पृ. 43

45. वही. पृ. 43

46. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 57

47. Rajasthan District Gazetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur Page-44

48. वही, पृ. 44

49. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 201

50. वही, पृ. 195

51. वही, पृ. 195

52. वही, पृ. 196

53. वही, , पृ. 196

54. वही, पृ. 196

55. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, 2009, पृ. 89

56. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, 2008, पृ. 67

57. वही, पृ. 67

58. वही, पृ. 67

59. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, 2009, मनोहर राघवेन्द्र सिंह, राज. के प्रा.न. कस्बे, पृ. 196

60. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, पृ. 71

61. सी.यू. एचीसन – द रिलेटिंग टू इण्डिया एण्ड नेवरिंग कन्ट्रीज, भाग–3, पृ. 334, बेनी गुप्ता – राजस्थान का इतिहास, 2004, पृ. 125

62. खान एस.आर. – झालावाड़ का इतिहास, पृ. 1–2

63. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, 2009, पृ. 8

64. वही, पृ. 9

अध्याय–2

पुरातन धार्मिक स्थल

सामान्य परिचय :– मानव जीवन की ऐहिक या भौतिक एवं पारलौकिक उन्नति अथवा मोक्ष का एकमात्र साधन धर्म ही है।[1] भारतीय जन–जीवन सदा ही धर्मप्राण रहा है इसलिए धार्मिक स्मारक मंदिर, चैत्य और देवी–देवताओं की मूर्तियों के रूप में स्थापत्य कला की समय–समय पर अभिव्यक्ति हुई। मंदिर स्थापत्य ब्राह्मण धर्म का प्रमुख तत्व है जो कि चतुर्थ शताब्दी ई. से आज तक निरन्तर भारत की स्थापत्य कला का प्रमुख विषय बना हुआ है और जिसने भारतीय स्थापत्य कला के विकास, परिष्कार तथा मूल्यांकन को अवसर प्रदान किया है।

भारतीय वास्तुकला के विकास का सम्बन्ध लौकिक व धार्मिक रहा है इनमें से धार्मिक वास्तु कला का संबंध स्तूप, चैत्य, संघाराम, उपाश्रम, विहार और मठ–मंदिर आदि से है।[2]

धार्मिक वास्तु के अन्तर्गत मंदिर–निर्माण कला का एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन भारतीय साहित्य में मंदिर निर्माण संबंधी विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। मंदिर वास्तु के संदर्भ में 'अपराजितापृच्छा' में कहा गया है कि 'नगर की शोभा और विभूति के लिए, जन–जन को निरन्तर सत्य और मुक्ति की प्रेरणा के लिए, लोकधर्म के प्रतीक स्वरूप, कीर्ति, आयु और यश की वृद्धि के लिए और जनपद के कल्याण के लिए मंदिर का निर्माण किया जाता है।'[3]

भारत वर्ष में एक धार्मिक संस्थान तथा पूजा स्थल के रूप में मंदिरों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। एक ढांचे के रूप में जिसमें कोई देवता प्रतिष्ठित अथवा कोई अन्य पूज्य वस्तु स्थापित हो जिसमें प्रदक्षिणा पथ सेवा भक्ति तथा पूजा स्थान हो।

भारतीय प्रायद्वीप के विभिन्न भागों में मंदिरों ने अपनी एक विविध प्रकार की यात्रा तय की है। यह सब स्थानीय आवश्यकताओं आस्था तथा विषय विशेष के अनुसार हुआ है। निश्चय ही इनमें विचार विनिमय तथा पारस्परिक विचारों के

आदान–प्रदान का काफी योगदान रहा। यद्यपि मंदिरों के मूल तत्व तथा उनकी पूजा विधि वेद तथा पुराण स्त्रोतों से निसृत हुई किन्तु सहस्त्राब्दियों के काल प्रवाह में उन्होंने अपने एक विशेष ढंग तथा शैली को अपनाया। यह इसलिए हुआ कि यह परंपरा मूल रूप में उत्तर भारत से प्रारम्भ हुई और पूरे देश में फैली।[4]

ईसा पूर्व युग में जब जैन और बौद्ध धर्म सगुण भक्ति स्वरों के साथ उभर कर सामने आए तो उन्होंने अपनी गाथाऐं, आस्थाएं, देवताओं के आकार–प्रकार पूजा संबंधी क्रियाकलाप आदि सभी बातें मंदिरों की पूजा विधि से ही ली। किन्तु किंचित प्रचकारांतर (प्राचीन काल) से वे ही अपनाई जो कि उनकी अपनी पूजा विधि अपने देवता की महिमा के अनुरूप थी। मंदिर मूलतया अपने आकार–प्रकार तथा बनावट के लिए इस बात पर निर्भर रहे कि उनमें कौन से देवता की स्थापना है, उसकी पूजा विधि किस प्रकार की है।

उपर्युक्त तीनों धर्म मूलतया भारतीय होने के कारण उनके मंदिरों के आकार–प्रकार में उन पर कोई बाहरी प्रभाव नहीं है। यही कारण है कि तीनों प्रकार के मंदिरों की बनावट और उनका स्थापत्य शुद्ध देशीय सिद्धान्तों और स्थापत्य की परम्परागत शैली के अनुसार ही है। अपनी विभिन्न आस्था और विश्वासों के अनुसार पहचान की दृष्टि से उनमें अपने मतों के लिए विशिष्ट महत्व रखने वाले कुछ परिवर्तन अवश्य किए गये हैं।[5] मन्दिरों के निर्माता या कारीगर, स्थपति (सूत्रधार) तथा शिल्पी एक ही श्रेणी के लोग थे। जिनके निर्माण के ढंग तथा बनावट एवं स्थापत्य के सिद्धान्त समान थे। वे पुरोहितों के साथ मिलकर काम करते थे जिन्हें कर्मकाण्ड आराध्य के वैशिष्ट्य तथा उसकी पूजा विधि का ज्ञान था। ये लोग ही मिलकर मंदिर का प्रारूप तैयार करते थे और उनमें उन नई बातों का समावेश भी करते थे जो स्थिति विशेष में आवश्यक होती थी। मूर्तियों तथा स्थापत्य का अलंकरण भी इसी तालमेल से होता था।[6] फलस्वरूप वास्तु शिल्प तथा आगम शास्त्रों तथा सिद्धान्तों का विकास हुआ। मंदिर की रचना निर्माण तथा विग्रह पूजा के लिए जो भी ज्ञात था अथवा आवश्यक था वह सब विधि विधान में आया। इस प्रकार भारतीय मनीषा प्रणीत भारतीय स्थापत्य के मूल आधार शुद्ध भारतीय हैं उन्हें हिन्दू, जैन अथवा बौद्ध स्थापत्य कहकर विभाजित नहीं किया जा सकता।[7]

हिन्दू मंदिर एक प्रतीक है अथवा यो कहें कि अनेक प्रतीकों का समन्वय है। मनुष्य सबसे विकसित प्राणी है और मंदिर उसी का प्रतिरूप है। इसीलिए मंदिर को पुरूप कहा जाता है। मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंगों के नाम पाद से लेकर शिखा तक के अनुरूप ही मंदिर के अंगों का नामकरण किया जाता है। चरण, पाद, जंघा, ग्रीवा और मस्तक इत्यादि शब्द जो कि मानव शरीर के अंग हैं एवं जैविक कार्य करते हैं, मंदिर के स्थापत्य के विभिन्न अंगों को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।[8]

स्पष्ट है कि सुन्दर से सुन्दर शरीर भी आत्मा के बिना निर्जीव है। हिन्दुओं के लिए मंदिर उस देवता का स्थान है जो विश्व की अंतरात्मा है। इसलिए मंदिर को देवालय व देवायतन जैसे शब्दों से जाना जाता है। मंदिर में पूजा (अर्चना) का प्रारंभ तभी से किया जाता है जबकि गर्भगृह में देव प्रतिमा को प्राण प्रतिष्ठा करके स्थापित कर दिया जाए।

मंदिर में प्रतिस्थापित देव प्रतिमा राजाधिराज का प्रतीक है। जिसमें अखिल विश्व के प्रभु की अवधारणा निहित है जिसका आदर किया जाता है। प्रासाद शब्द से महल व मंदिर दोनों का तात्पर्य है। देव प्रतिमा का नृपतुल्य सिंहासन छत्र एवं चंवर से सम्मान किया जाता है व प्रतिमा की आराधना करते हुए वाद्य, दीपक व नृत्य का प्रदर्शन होता है। जिस प्रकार एक राज महल में दरबार कक्ष, दीवान–ए–आम व दीवान–ए–खास होता है, उसी प्रकार मंदिर में एक गर्भगृह एक मंत्रणा कक्ष व कभी–कभी एक सभा मण्डप होता है।[9] समयानुसार विभिन्न उत्सवों व क्रियाकलापों के लिए मंदिर में परिवर्धन होता गया। उड़ीसा में मण्डप के सम्मुख नर मंदिर और भोग मंडप जोड़ दिये गये, जबकि दक्षिण भारत में हजारों स्तम्भों के मंडप कल्याण मंडप व उत्सव मंडल आदि जोड़ दिये गये इस प्रकार मंदिर किलाबंद राजमहल का प्रतिरूप सा बन गया।

जबकि नृत्य, गायन व उत्सव निर्धारित मंडपों में होता है प्रत्येक बारी–बारी से गर्भगृह में स्थित देवमूर्ति की पूजा अर्चना करता है। हिन्दू देवस्थान प्राथमिक रूप से उपासना का स्थान है। गर्भगृह ठोस दीवारों से घिरा एक अंधेरा कक्ष होता है। इसका आंतरिक भाग एक मंद रोशनी वाले दीपक से प्रकाशित होता

है। सम्पूर्ण वातावरण बाह्य संसार रूपी गाथा तथा इस माया के आवरण के पीछे देवभावना की रहस्यात्मक अनुभूति जो कि ब्रह्माण्ड पर व्याप्त है और उसे प्रकाशित करती रहती है के विचार का द्योतक ही नहीं अपितु इसका अनुभव भी कराता है।

गर्भगृह सूक्ष्म जगत की भांति है। इसलिए संपूर्ण देव मंदिर अर्ध–देव, मानव व पशु द्वारा कार्यरत ब्रह्मांड का प्रतीक रूप है। इस प्रकार के समान अंकन मंदिर की दीवारों के चार दिशाओं और चार कोणों के आठ दिक्पालों पर अंकित पाये जाते हैं। मंदिर के चारों ओर की परिक्रमा प्रतीकार्थ में स्वयं ब्रह्मांड में विचरण के समान हैं।[10]

पुरातत्त्वीय अवशेषों से मंदिरों के प्रारम्भिक स्वरूप, शैली और विकास के क्रम का ज्ञान होता है। आरंभिक देवालय कुछ ऊँचे स्थान पर स्थापित किये जाते थे, प्रतिमा के चारों ओर वेदिका या बाड़े का निर्माण किया जाता था तथा वेदिका को ऊपर से आच्छादित कर दिया जाता था।[11]

कालान्तर में कला के प्रति रुचि अथवा रुझान ने मंदिर वास्तु के स्वरूप को संवर्द्धित एवं विकसित किया। गर्भगृह, प्रदक्षिणा पथ, गर्भगृह का प्रवेश द्वार अथवा मुखमण्डप का निर्माण हुआ। यह मंदिर स्थापत्य के विकास का आरंभिक चरण माना जा सकता है, किंतु मंदिर वास्तु के शास्त्र का निर्माण और इसके आधार पर मंदिरों के विभिन्न अंग–उपांग निर्धारित हुए।[12]

गुप्तकाल में गर्भगृह के ऊपर शिखर तथा सामने मण्डप, अर्द्धमण्डप, महामण्डप आदि का विधान हुआ। गुप्तकाल में मंदिर वास्तु के शास्त्र का निर्माण हुआ। चूंकि गुप्त युग से पूर्व विविध धार्मिक सम्प्रदायों, देवी–देवताओं, प्रतिमा पूजा आदि दिशा में प्रगति हो चुकी थी, अतः गुप्त युग में देवताओं के मानव रूप की अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप मूर्तियों का निर्माण और देवालयों का निर्माण भी आवश्यक रूप से हुआ।[13] हिन्दुओं के वैष्णव व शैव मंदिर का विकास इसी काल में हुआ।[14] गुप्तकाल से लेकर मुगलकाल तक भारत के विविध क्षेत्रों में अलग–अलग सम्प्रदायों से संबंधित मंदिरों का निर्माण हुआ। काल तथा स्थान के आधार पर इन मंदिरों की शैलियों में भेद–प्रभेद होने स्वभाविक थे।[15] वस्तुतः 12वीं सदी के उत्तरार्द्ध के ग्रन्थ ''अपराजितापृच्छा'' से प्रसादोत्पत्ति की चौदह जाति का पता चलता है।[16]

किंतु 'प्रासाद मंडन' से इनमें से आठ जाति के प्रासादों को ही उत्तम शैली में रखा गया है।[17] और इनमें से भी प्रथम तीन प्रासाद जातियों नागर, द्रविड़ व बेसर अथवा भूमिज शैलियों का प्रचलन एवं विकास कालांतर में प्रमुखता से होने लगा। उत्तर में नागर शैली का प्रचलन हुआ और दक्षिण में द्राविड़ शैली का, जबकि इन दोनों के मध्य का क्षेत्र बेसर शैली का क्षेत्र कहलाया।

वस्तुतः मंदिर निर्माण कार्य में कला एवं विज्ञान दोनों के काम करने वाले को सूत्रधार अथवा स्थपति कहा जाता है।[18] एक मंदिर अथवा देवालय के विविध भाग होते हैं। सर्वप्रथम मंदिर का तल अथवा जगति अथवा पीठ होता है जिस पर सम्पूर्ण मंदिर का भार टिका होता है, जिसके बिना मंदिर की कल्पना संभव नहीं है।[19] मर्यादित भूमि को जगती कहते हैं जो कि समचोरस, लबचोरस, अष्टकोनी, गोल, लंब गोल पांच आकार की होती है।[20]

चतुरस्त्रायताष्टास्त्रा वृत्तायता तथा।
जगती पच्चधा प्रोक्ता प्रासादस्यानुरूपतः।।

जगती के ऊपर खरशिला मोटी एवं विस्तृत, ईंट–चूना पानी से मजबूत बनाई जाती है।[21]

अतिस्थूला सुविस्तीर्णा प्रासादधारिणी शिला,
अतीवसुदृढ़ा कार्या इण्टिका चूर्णवारिभिः।।

तत्पश्चात् प्रासाद का उदयमान अथवा मंडोवर। कई बार यह मंडोवर 'छज्जे' के रूप में बाहर की ओर निकला रहता है जिसे 'मेरुमंडोवर' कहते हैं।[22] इनके अतिरिक्त गर्भगृह चार कोने वाला समचोरस अन्तराल मंडप, प्रदक्षिणा पथ, देहरी, अथवा उदुम्बर, प्रवेशद्वार, द्वार शाखाएं, शिखर आदि एक देवालय के विविध भाग हैं जिनके द्वारा एक मंदिर पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। मंदिर का मुख्य भाग गर्भगृह होता है, मंदिर के ऊपर शिखर, मंदिर के सामने प्रवेश द्वार से सटा हुआ एक परिस्तंभित (खुला या ढका हुआ) कक्ष होता है। इसमें उपासक व भक्त अर्चना करते हैं यही वास्तु–रचना 'मण्डप' होती है।[23] मण्डप को प्रासाद से मिलाने वाला एक छोटा कक्ष होता है, जिसे अन्तराल कहते हैं जो कि मुखमण्डप बनाता है। प्रदक्षिणा पथ व

मण्डप के बरामदों को अर्द्धमण्डप कहते हैं। प्रदक्षिणा पथ के आधार पर सान्धार व निरंधार प्रासाद दो प्रकार के प्रासाद हो सकते हैं।

मंदिर के विभिन्न अंगों का स्थापत्यिक उद्‌भव भी काफी अभिप्रायपूर्ण होता है।

ठोस दीवाल व अंकदर का गहन अंधकार गर्भगृह को गुफा रूप में प्रदर्शित करते हैं, जबकि उसके ऊपर की सरंचना चोटी से आवर्त होती है जिसे शिखर भी कहा जाता है और जो एक पहाड़ का रूप धारण करती है जिसे पौराणिक मेरु मंदिर या कैलाश कहा गया है।[24]

नाप व माप के अनुपात में ताल पर आधारित संरचना ही मंदिर है। यह मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा संरचित ठोस आकार एक तीर्थ (मुक्ति मार्ग) के समान है। एक हिंदू मंदिर के निर्माण की तुलना यज्ञ की क्रिया से की जा सकती है। यह निर्माणकर्ता का एक पवित्र कार्य अथवा अर्पण है तो उस (निर्माणकर्ता) व उसके परिवार अथवा दर्शनार्थ भक्तों व इतर लोगों के लिए है। आराधक केवल प्रेक्षक ही नहीं है, वह पूजा तथा अर्चना हेतु मंदिर में आकर दो उद्देश्यों की पूर्ति करता है। दीवारों के अलंकरण, आकृतिकरण व मंदिर का सम्पूर्ण आकार मानो इन सभी उद्देश्यों के पूरक हैं।

तलविन्यास एवं ऊर्ध्वविन्यास इत्यादि का प्रकाशन ही मंदिर को संपूर्ण स्मारक का स्वरूप देता है। गर्भगृह में सम्मुखी का द्वार होता है एवं अन्य दिखावटी द्वार आले के रूप में शेष तीनों दीवारों पर होते हैं। यद्यपि ये ठोस और केवल दिखावे के लिए ही है फिर भी इनमें देवमूर्ति की असीम व सर्वोच्च शक्ति का प्रतीकात्मक रूप बाहर झलकता रहता है और मुख्य देवमूर्ति से सम्बन्धित अन्य मूर्तियों में जो कि आलों के अन्दर अंकित होती है, प्रतिबिंबित होता रहता है। प्रमुख देवमूर्ति से क्रमशः कम महत्व की देवमूर्तियां छोटे आलों, मंडप व दीवार की पट्‌टिकाओं पर अंकित रहती हैं। दीवारों के आलों में अंकित अन्य देवमूर्तियों के चारों ओर घूमकर प्रदक्षिणा इसलिए की जाती है कि आराध्य देव में मन विलीन किया जा सके।

आंतरिक कक्ष की दीवाल, स्तम्भ, स्थापत्यिक खण्ड व छत पर पवित्र नक्कासी कार्य भी आराधक के मस्तिष्क को प्रभावित करता है और इस भक्ति भावना

से रत होकर आराधक मंदिर के दरवाजे तक पहुँच कर रुक जाता है जो कि अंतिम अलंकृत स्थान होता है।[25]

अभिप्राय यह है कि गर्भगृह गर्भस्थान या गर्भ के भ्रूण के समान है। यहां से आराधक का पुनः जन्म स्वयं के अनुभव द्वारा होता है। ऊपर की संरचना से एक और कार्य की सिद्धि होती है जिसका उद्देश्य है चौड़े आधार से एक ऐसे स्थान की ओर ध्यान बढ़ाना जहां सभी पंक्तियां एक बिंदु पर केन्द्रित हो जाती हैं। सबसे ऊँचा स्थान गर्भगृह के मध्य शिखर पर समाप्त होता है जो गर्भगृह में स्थित मुख्य देवमूर्ति का अंतिम प्रतीक होता है।[26]

मन्दिर निर्माण की शैलियाँ

(अ) नागर शैली :–

इसका प्रचलन मुख्य रूप से उत्तरी भारत में था। इसकी विशेषता यह थी कि गर्भगृह पर ऊँचे शिखर हुआ करते थे जिनका घेरा ऊपर पहुँचने पर क्रमशः कम होता जाता था। शिखर पर 'आमलक' नामक एक बड़ा चक्र होता था और उस पर कलश होता था जिसका सबसे ऊपरी भाग नुकीला होता था।[27]

नागर शैली को आर्य शैली भी कहते हैं। 'नागर' शब्द नगर से बना है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में नगर–निर्माण में मंदिरों का विशिष्ट स्थान था और किस देव–मंदिर की नगर के किस भाग अथवा दिशा में स्थापना की जाए, इसका भी विवरण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि नगर में ही सर्वप्रथम बनने के कारण अथवा वहाँ पर मंदिरों की संख्या अधिक होने से इसका नामकरण 'नागर शैली' हो गया था।[28]

नागर शैली के मंदिर :–

● हिमालय से विन्ध्यप्रदेश (उत्तरीभारत) ● यह प्रायः चतुष्कोणीय मन्दिर होते हैं। ● इनके शिखरों में खड़ी रेखा की प्रधानता होने के कारण इसे 'रेखीये शिखर' भी कहते हैं। वर्गाकार तथा ऊपर की ओर वक्र होते हुए शिखर इन मन्दिरों की विशेषताएं है। Exa. लिंगराज मंदिर, पुरी का जगन्नाथ मंदिर (अनंतवर्मा चोल गंग), कोणार्क का सूर्य मन्दिर (नरसिंह देव, गंगवंश), खजुराहो के मंदिर (चन्देल

शासक), कंदरिया महादेव मन्दिर (धंगदेव, चन्देल), मोढ़ेरा का सूर्यमंदिर, गुजरात, दिलवाड़ा के जैन मंदिर (राष्ट्रकूट वंश)।[29]

(ब) द्रविड़ शैली :–

द्रविड़ शैली का प्रचलन दक्षिणापथ और सुदूर दक्षिण में था। इसकी मुख्य विशेषता यह थी की विशाल मंदिरों के ऊपर रथ और विमान बने होते थे। इसमें वर्गाकार गर्भगृह होता था जिसके चारों तरफ प्रदक्षिणा के लिए एक बड़ा वर्गाकार घेरा होता था। इसका विस्तार–क्षेत्र नासिक के निकट अगस्त्य और तुंगभद्रा से लेकर कुमारी अन्तरीप तक था।[30]

द्रविड़ शैली के मंदिर नागर शैली से भिन्न प्रकार के होते थे। इनके गर्भगृह के ऊपर का भाग सीधा पिरामिडनुमा होता था। उसमें कई मंजिलें होती थीं और मस्तक गुम्बदाकार, छः पहला या अष्ठ पहला होता था। मंदिर ऊँचे तथा चौड़े प्रांगण से घिरा होता था जिसमें अनेक छोटे–बड़े मंदिर, कमरे, प्रांगण, तालाब आदि होते थे। आंगन का मुख्य द्वार बहुत ऊँचा होता था। द्रविड़ शैली के मंदिरों का निर्माण चोलों, पांड्यों, पल्लवों और विजय नगर साम्राज्य के राजाओं के शासनकाल में हुआ था। इस शैली के मंदिर अधिकांशतः तंजौर, मदुरा, कांची, हम्पी, विजयनगर आदि स्थानों पर है।[31]

द्रविड़ शैली के मन्दिर :–

● कृष्णा तथा कुमारी अंतरीप के बीच अर्थात् आधुनिक तमिलनाडु। ● इनके आधार से लेकर सिरे तक मंदिर का आकार अष्टभुजा युक्त होता है। ● यह आयताकार मंदिर होते हैं तथा इनके शिखर पिरामिड के आकार के होते हैं। ● इनके गर्भगृह के चारों ओर वर्गाकार छत से ढका हुआ बाड़ा होता है जिसे प्रदक्षिणा–पथ कहते हैं। ● बाद में इन मंदिरों के साथ अनेक स्तम्भ युक्त मंडप, गलियारे तथा विशाल गोपुरम भी जोड़ दिये गये। Exa. : ● मामल्लपुरम के मन्दिर (पल्लव वंश), ● कैलाश मंदिर, कांची (पल्लव वंश) ● वैकुण्ठ पेरूमल मंदिर ● वृहदेश्वर मंदिर, तंजौर (राजराज चोल) ● गंगैकोण्ड चोलपुरम मंदिर (राजेन्द्र चोल) ● तिरूमलाई मंदिर (पाण्ड्यवंशी)।[32]

(स) बेसर शैली :–

इसका प्रचलन भी दक्षिण भारत में था। इसे चालुल्य शैली के नाम से भी जाना जाता है। यह शैली द्रविड़ और नागर शैलियों का सम्मिश्रण थी। इसमें विमान और मण्डप द्रविड़ शैली के थे, किन्तु अलंकरण आदि नागर शैली से लिए गए थे। इस शैली का प्रसार–क्षेत्र विन्ध्याचल और कृष्णा के बीच रहा है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि बेसर शैली के मंदिर मात्र इसी सीमा रेखा में ही केन्द्रित थे। जिस प्रकार नागर शैली के कुछ मंदिर दक्षिण में मिले हैं, उसी प्रकार वृन्दावन में बनाया गया वैष्णव मंदिर द्रविड शैली का है। स्पष्ट है कि बेसर शैली भी दक्षिण उत्तर की ओर चली गई है।[33]

बेसर शैली के मंदिरों का निर्माण परवर्ती चालुक्य नरेशों ने कन्नड़ जिलों में तथा होयसल राजाओं ने मैसूर में करवाया था।

उल्लेखनीय है कि जब चालुक्य और होयसल वंशों के शासकों का अभ्युदय हुआ, उस समय तक द्रविड़ शैली और नागर शैली पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी थी, परिणामस्वरूप बेसर शैली के रूप में उपर्युक्त दोनों शैलियों का मिश्रण संभव हो सका। इन शैलियों की एक मुख्य विशेषता यह है कि इनके स्थापत्य में ब्राह्मण, बौद्ध अथवा जैन मत का भेद नहीं मिलता है और उनका विधान भी साम्प्रदायिक अथवा धर्ममूलक नहीं है अपितु सम्पूर्ण स्थापत्य भारतीय ही है।[34]

बेसर शैली के मन्दिर :–

● विन्ध्य और कृष्णा के बीच (दक्षिणावर्त) ● इनका आकार अर्द्धगोलाकार होता है। ● उन मन्दिरों में देवकुल गर्भगृह और जगमोहन (सभामण्डप) होता है। Exa. : ● कैलाश मंदिर, ऐलोरा (राष्ट्रकूट), ● दशावतार मंदिर, झांसी (राष्ट्रकूट),● ऐलिफेण्टा गुहा मंदिर (राष्ट्रकूट)।[35]

नागर मंदिरों के अंग :–

नागर मन्दिरों के आठ प्रमुख अंग हैं–

1. **मूल या आधार :–** जिस पर संपूर्ण भवन खड़ा किया जाता है।
2. **मसूरक :–** नींव और दीवारों के बीच का भाग।
3. **जंघा :–** दीवारें (विशेष रूप से गर्भगृह आदि की दीवारें)।

4. **कपोत :–** कार्निस।

5. **शिखर :–** मन्दिर का शीर्ष भाग अथवा गर्भगृह का ऊपरी भाग।

6. **ग्रीव :–** शिखर का ऊपरी भाग।

7. **वर्तुलाकार आमलक :–** शिखर के शीर्ष पर कलश के नीचे का भाग।

8. **कलश :–** शिखर का शीर्ष भाग।

नागर मन्दिर वर्गाकार होते हैं। उड़ीसा में नागर मन्दिरों को कालिंग, गुजरात में नागर मन्दिरों को लाट एवं हिमालय क्षेत्र में नागर मन्दिरों को पर्वतीय मन्दिर कहा जाता है।[36]

मन्दिर आरेख (प्रारूप)

(अ) ऊर्ध्वछंद योजना[37] :–

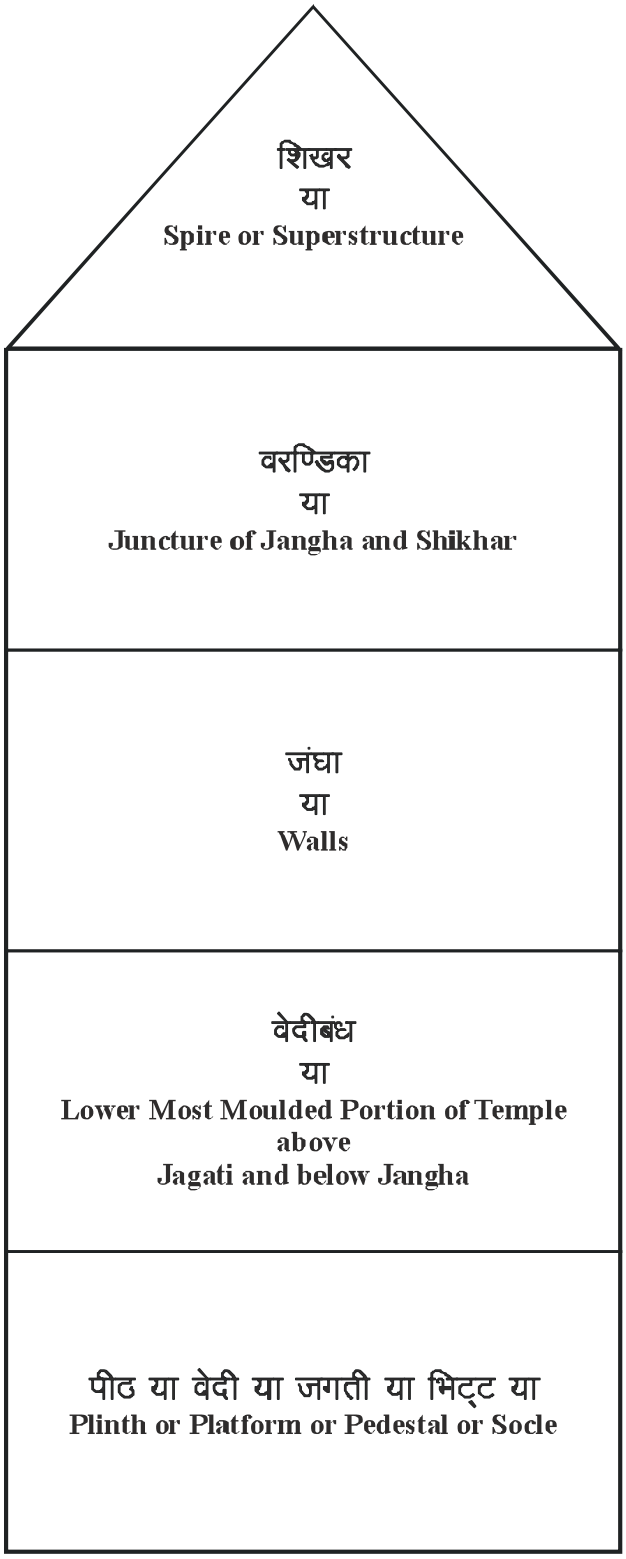

(ब) तलछन्द योजना[38] :–

गर्भगृह या मण्डपिका या प्रासादकमल	अन्तराल या कपिली	मण्डप	महामण्डप या रंगमण्डल या सभामण्डप	मुखमण्डप

मध्यकालीन मन्दिर तलछन्द योजना :–

गर्भगृह	अन्तराल	रंगमण्डप या सभामण्डप	मुखमण्डप (Front Hall) मुखचतुष्की

वास्तुशास्त्र के अनुसार तलछन्द योजना :–

गर्भगृह या प्रासादकमल	गूढ़ मण्डप	छः चौकी	रंगमण्डप	मुखमण्डप या तोरण युक्त बलाणक (Front Hall)

प्रासादमण्डन के अनुसार तलछन्द योजना :–

प्रासाद	गूढ़ मण्डप	त्रिक नौ चौकी	नृत्य मण्डप या रंगमण्डप	मुखमण्डप या बलाणक

छठी शताब्दी ईसा पूर्व से जब सनातन धर्म में बाह्य आडम्बर एवं कट्टरता आने लगी तब प्रथम बार धार्मिक क्रान्ति हुई जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध व जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। लेकिन समय के साथ–साथ वे दोनों ही धर्म भारतीयता में रम गये। भारत एक धर्म प्रधान देश है अस्तु एक विलक्षण बात यह है कि सैन्धवकाल से भी धार्मिक स्थिति विद्यमान थी। उनके पश्चात् आर्य ने वैदिक परम्परा

का निर्वाह किया। किन्तु पूजा स्थल न के बराबर ही मिले। उन्हें देवस्थान की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

भारत में देव स्थान मंदिरों का निर्माण कार्य गुप्त साम्राज्य के साथ प्रारंभ होता है। तब से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न शैलियों के मंदिर बनाये जाने लगे। मंदिर बनाने की कला सम्पूर्ण भारत में एक समान न थी। दक्षिण भारतीय परम्परा के बने मंदिर द्रविड़ शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं। हाड़ौती क्षेत्र के मंदिर दोनों ही शैलियों के मिश्रण का परिणाम हैं यहाँ के मंदिरों में द्रविड़ शैली व नागर शैली दोनों का ही प्रयोग हुआ जिसे बेसर शैली का नाम दिया जाता है। बेसर शैली के मंदिर मध्य भारत में बहुतायत से मिलते हैं। बेसर शैली के मंदिर मालवा क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं।[39]

मंदिर के निर्माण के पीछे उद्देश्य मानव की धार्मिक आवश्यकता को पूरा करना था। धर्म और उपासना के केन्द्र के रूप में इन देव स्थानों का अपना अलग–अलग एवं विशेष महत्व है। देव स्थान प्राचीन समय में वार्तालाप संचार के साधन भी होते हैं।

प्राचीन भारत में मंदिरों की स्थापना का कार्य गुप्त काल से प्रारम्भ होकर मध्यकाल में अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा। भक्तिकाल में सम्मुख भक्ति मार्गी शाखा ने ईश्वर के रूप में बांधकर मूर्तिपूजा की लोकप्रियता को और बढ़ावा दिया जिसके कारण देवालयों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। भक्तिकाल में शैव व वैष्णव दोनों के ही मंदिर बने साथ ही साथ जैन और बौद्ध के उपासनागृह बनते गये। राजस्थान राज्य के हाड़ौती अंचल में बने मंदिर मुख्यतः राजपूत हाड़ा शासकों की देन है। जिन्होंने मंदिरों का निर्माण करवाया तथा मंदिरों की देखरेख के लिए पुरोहित और राजगुरुओं की नियुक्ति की।[40]

8वीं सदी ईस्वी के बाद से मंदिरों को भूमि अनुदान देने की प्रथा खूब चल पड़ी और प्रायः भूमिदान दीवारों पर अभिलिखित कर दिये जाते थे। अभिलेखों से जानकारी मिलती है कि ब्राह्मणों को मंदिरों और भूमिदान दिये जाने की प्रथा बूंदी मंदिरों में दान के रूप में भूमि तथा सुवर्ण के रूप में सम्पत्ति जमा होती थी। मंदिरों में देवदासियों का भी एक वर्ग था। जिसका मंदिर के साथ संबंध था। जो सुन्दरियां

मंदिर में आराध्यदेव के सम्मुख नृत्य और गान करती थी उन्हें देवदासियां कहा जाता था। ये मंदिर में ही रहती थीं। राजा तथा राज्य के उच्च अधिकारियों द्वारा मंदिर को दान से जो आय होती उसका मंदिर के आन्तरिक संगठन पर प्रभाव पड़ता था। मंदिर के विभिन्न कार्यों के निर्देशन एवम् परीक्षण के लिए एक समिति होती थी। इसके अतिरिक्त मंदिर के कर्मचारियों और देवदासियों को भूमि वेतन के रूप में दी जाती थी। मंदिर की व्यवस्था करने वाली समिति के सदस्य ब्राह्मण ही होते थे।[41]

मंदिर के पास सुवर्ण अथवा मुद्रा के रूप में जो सम्पत्ति होती थी उसे या तो ब्याज पर दिया जाता था या उससे मकान भूमि इत्यादि स्थायी सम्पत्ति खरीदी जाती थी। जिससे मंदिर को किराया अथवा खेती की उपज के रूप में नियमित आय प्राप्त होती रहती थी। इस प्रकार मंदिरों के आर्थिक साधनों में वृद्धि हुई। यह धन राशि धीरे–धीरे संग्रह होकर अतुल धन राशि बन जाती जो मुस्लिम आक्रमणकारियों की धन लिप्सा को उकसाने का कार्य करती। परिणामस्वरूप मंदिर आक्रमणकारियों के केन्द्र बन गये और मंदिरों में जमा अकूत धन लूट कर ले गये।[42]

ऐसा भी माना जाता है कि विशाल मंदिरों का अस्तित्व सामन्ती वातावरण के अनुकूल था क्योंकि मठाधीशों और पुरोहितों से राजाओं को प्रजा पर शासन करने में सहायता मिलती थी। सम्भवतः यही कारण था कि मंदिर प्रमुख नगरों व्यापार केन्द्रों व राज्यों की राजधानियों में मिलते हैं। कालान्तर में मंदिर राजनीतिक शक्ति के केन्द्र बन गए। समय–समय पर मंदिर के आय–व्यय के हिसाब किताब की जांच राज्य के कर्मचारियों द्वारा की जाती थी। मंदिरों का सांस्कृतिक जीवन में अपना विशिष्ट स्थान था। विद्यार्थियों के निवास भोजन एवं शिक्षा की व्यवस्था का भार अनेक मंदिरों ने अपने ऊपर ले रखा था। लगभग सभी मंदिर नृत्य संगीत एवं नाट्यकला को संरक्षण एवं प्रोत्साहन देते थे। यह कलाऐं उपासना पद्धति का अंग बन गई थी। मंदिर निर्माण शैली और मूर्तियों की स्थापत्य कला अपने आप में बेजोड़ शिल्प शैली का उदाहरण देते हैं।

शाहाबाद क्षेत्र के प्रमुख मंदिर :–

सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति तथा यहां के निवासियों की ईश्वर में आस्था जग प्रसिद्ध है। अपने देवताओं, तीर्थंकरों, पैगम्बरों आदि को अपना आराध्य

मानकर पूजते रहे हैं। यहाँ के प्रबुद्ध नागरिकों व शासकों ने समय–समय पर अपने धर्म के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने हेतु ऊँची पहाड़ों, झीलों के किनारों, नदियों तथा सागरों की लहरों को छूते हुए अनेक सुन्दर मंदिरों एवं इबादतगाहों का निर्माण किया जो आज भी कला के श्रेष्ठ नमूने बनकर भारत का गौरव पूरे विश्व में बढ़ा रहे हैं।

1. सीताबाड़ी के मंदिर :–

(अ) सीताबाड़ी का परिचय :– राजस्थान के दक्षिण पूर्वी सीमावर्ती जिला बारां में राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 27 कोटा शिवपुरी मार्ग पर बारां मुख्यालय से लगभग 46 कि. मी. की दूरी पर यह पौराणिक एवं धार्मिक मान्यताओं वाला स्थान स्थित है। राजस्थान की आदिम जनजाति सहरिया का निवास स्थान इसी जिले में 90 प्रतिशत से अधिक है। सहरिया जनजाति मूलतः जंगलों में निवास करने वाली जाति है। सहरिया शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के 'सहर' शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ जंगल होता है अर्थात् जंगल में निवास करने वाली जनजाति। सीताबाड़ी इसी सहरिया जाति का प्रमुख धार्मिक स्थल है।

पौराणिक एवं धार्मिक स्थल सीताबाड़ी के संदर्भ में एक प्राचीन किवदंती यह थी कि जब मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम ने लंका पर रावण को मार कर विजय प्राप्त की उसी समय माता सीता की अग्नि परीक्षा लेकर वापस अयोध्या आये नगरवासियों ने राम लक्ष्मण व माता सीता का धूमधाम से स्वागत किया। कुछ समय उपरान्त अयोध्या में एक धोबी अपनी पत्नी को प्रातःकाल मार रहा था और कह रहा था कि मैं कोई राम नहीं की दूसरे के यहां रहने के बाद भी तुझे अपने यहां रखूं। यह बात नगर में घूम रहे गुप्तचर ने सुनी और आकर भगवान राम को बताई। भगवान राम ने सीता जी को वनवास देने का निर्णय किया। उस समय माता सीता गर्भवती थी। भगवान राम के आदेश की पालना हेतु लक्ष्मण माता सीता को वन प्रदेश में लाने हेतु रथ में बिठाकर अयोध्या की सीमा से दूर एकान्त वनों में छोड़कर चले गये। यह वन क्षेत्र सीताबाड़ी था। सीता जी का स्वागत यहां के वनवासी सहरियाओं ने किया। जंगल में महर्षि वाल्मिकी जी का आश्रम था। सीता जी महर्षि वाल्मिकी जी के आश्रम में रहने लगी।[43]

भारतीय साहित्यिक परम्परा में महर्षि वाल्मीकि का स्थान उच्च कोटि का है तथा उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने 'रामायण' नामक महाकाव्य की रचना की थी। रामायण हिन्दुओं का सबसे प्राचीन महाकाव्य है।[44]

ऐसी मान्यता है कि करुणा की भावना से प्रभावित होकर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी। कहा जाता है कि एक शिकारी ने काम मोहित क्रौंच पक्षियों की जोड़ी में से एक को अपने बाण का निशाना बनाकर मार दिया तो वाल्मीकि का हृदय द्रवीभूत हो गया। उस समय उन्होंने कहा ''हे निषाद्! तुमने काम से मोहित इस क्रौंच पक्षी को मारा है, इसलिए तुम अनन्त काल तक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकोगे।''महर्षि वाल्मीकि के इन शब्दों को सुनकर स्वय ब्रह्मा वहां उपस्थित हुए और उन्होंने वाल्मीकि को रामायण की रचना करने का आदेश दिया। ब्रह्मा की प्रेरणा पाकर वाल्मीकि ने रामायण लिखी। इसी ग्रन्थ के कारण वे भारतीय साहित्यिक जगत में सुविख्यात है।[45]

जनश्रुति के आधार पर सीताबाड़ी में सीताजी के दो पुत्र लव और कुश का जन्म हुआ।[46] महर्षि वाल्मीकि ने दोनों बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा तथा अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा दी। मान्यता है कि सीता माता के यहां पर रहने के कारण ही इस स्थान का नाम 'सीताबाड़ी' पड़ा। उस समय यहाँ पर आम के वृक्षों से परिपूर्ण घना जंगल था।

सीताबाड़ी में प्रति वर्ष ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी से प्रारम्भ होकर ज्येष्ठ शुक्ल छठ तक धार्मिक एवं पशु मेला लगता है। ज्येष्ठ माह की भीषण गर्मी में भी यहां आने वाले श्रद्धालुओं की संख्या हजारों में होती है। मेले का आयोजन यहां की स्थानीय समिति द्वारा किया जाता है। सहरियां जनजाति का यह धार्मिक पर्व है इस पर्व पर प्रत्येक सहरिया पहुंचकर कुण्डों में स्नान करता है। इसलिये इसको 'सहरिया जनजाति का कुम्भ' भी कहा जाता है।

सीताबाड़ी हाड़ोती अंचल का प्रसिद्ध लोक तीर्थ एवं प्राकृतिक दृष्टि से रमणीक स्थान है। यहां आम के विशाल वृक्ष तथा दर्जनों की संख्या में पवित्र जलकुण्ड तथा मंदिरों की श्रृखंला दर्शनीय है। यहां के मंदिरों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जलकुण्ड मंदिर परिसर के अन्दर ही विद्यमान है। जल कुण्डों के

सामने मंदिर प्रांगण में भगवान की मूर्ति स्थापित है। श्रद्धालु वर्षभर यहां आकर इन कुण्डों में स्नान करते हैं। वट सावित्री अमावस्या पर यहां के कुण्डों में स्नान करने को विशाल जन समूह उमड़ पड़ता है। मुख्यतया सूर्य कुण्ड, लक्ष्मण कुण्ड और सीता कुण्ड में स्नान करने की धार्मिक परम्परा रही है। यहां पर आधा दर्जन के करीब नव निर्मित कुण्ड बने हैं, जिनमें लव–कुश कुण्ड प्रमुख हैं। इन कुण्डों में स्वच्छ जल प्रवाहित होता रहता है यहां पर भरत कुण्ड व वाल्मिकी मंदिर भी है। भरत कुण्ड में लोग स्नान नहीं करते।

सीताबाड़ी के पवित्र जल कुण्डों में स्नान के साथ–साथ श्रद्धालुओं द्वारा मान मनौतियों के पूरी होने पर दान पुण्य किया जाता है। यहां पर कथा वाचन, मुण्डन संस्कार, यज्ञोपवित संस्कार, श्राद्ध तर्पण आदि संस्कार भी सम्पन्न होते हैं। वर्तमान में यहां कई धर्मशालाएं भी बन गई हैं, जिनका उपयोग विवाह समारोह व धार्मिक क्रियाओं हेतु किया जाता है।

(ब) सीताबाड़ी के प्रमुख मन्दिर

(i) लक्ष्मण मन्दिर :–

केलवाड़ा कस्बे से सीताबाड़ी की ओर आते हैं, तो सर्वप्रथम यही मंदिर आता है। लक्ष्मण मन्दिर सीताबाड़ी का सबसे बड़ा मन्दिर है। मुख्य द्वार से मन्दिर में प्रवेश करते ही तीनों ओर बरामदे निर्मित है जिनमें साधारण स्तम्भ बने हुए हैं, ये स्तम्भ मेहराबों से अलंकृत है। मुखमण्डप का फर्श काले सफेद पत्थरों से निर्मित है जिनमें चाँदी के प्राचीन सिक्के जिन्हें पंचम जाज कहा जाता है, लगे हुए हैं। गर्भगृह के बाहर वेदिका निर्मित है जिसमें पुजारी के अतिरिक्त प्रवेश वर्जित है। गर्भगृह में संगमरमर की मंदिरनुमा आकृति में स्थानक मुद्रा में लक्ष्मण जी की सफेद पत्थर से निर्मित मूर्ति स्थापित है जिसे एक हाथ में धनुष लिए हुए दिखा गया है। दूसरा हाथ वरद मुद्रा में दिखाया गया है। अलंकरण स्वरूप चाँदी का मुकुट धारण किए हुए है तथा गले में चाँदी के कंठहार अलंकृत हैं।

गर्भगृह के अन्दर मुख्यद्वार के अतिरिक्त तीनों ओर काँच से आकर्षक अलंकरण किया गया है। गर्भगृह में नीचे फर्श पर चाँदी के सिक्के लगे हुए हैं। मंदिर

के ठीक मध्य में एक विशाल आयताकार जल–कुण्ड निर्मित है जिसे लक्ष्मणकुण्ड कहा जाता है। इस कुण्ड के चारों ओर सोपान निर्मित हैं।

कुण्ड के मध्य में एक छोटी आकृति की छतरी निर्मित है, जिसमें शिवपरिवार की छोटी–छोटी सफेद पत्थर से निर्मित मूर्तियाँ स्थित हैं। गर्भगृह के ठीक सामने की ओर एक चबूतरे पर एक छतरी निर्मित है जो आकार में छोटी है किंतु इसके मेहराब आकर्षक बने हुए हैं। इस छतरी में हनुमान जी की स्थानक मुद्रा में मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिसके एक हाथ में गदा लिए हुए तथा दूसरे हाथ में द्रोणागिरी पर्वत उठाए हुए है।

हनुमान जी की छतरी के निकट एक अन्य छोटी आकृति की छतरी निर्मित है जिसमें गणेश जी की पाषाण प्रतिमा स्थित है, इस छतरी के चारों ओर लोहे की जालीदार–चाहरदीवारी निर्मित है। यहीं एक ओर चबूतरे पर एक बड़ा सा आम्र वृक्ष लगा हुआ है उसके नीचे भी कुछ पाषाण प्रतिमाएँ जीर्णावस्था में स्थित है।

मंदिर के पिछले भाग में भी दो आयताकार जल कुण्ड निर्मित है। इन जल–कुण्डों पर सोपान निर्मित हैं तथा साथ ही स्नान करने हेतु घाट बने हुए हैं।

(ii) सूर्यनारायण मंदिर :–

लक्ष्मण मन्दिर से कुछ दूरी पर प्राचीन सूर्यनारायण मंदिर स्थित है। सूर्य मंदिर के मुख्य द्वार के ऊपर दो छोटी आकृति की छतरियाँ निर्मित हैं। यही प्रवेश द्वार के दोनों ओर पृथक–पृथक दो लेख खुदे हुए हैं, जो हिन्दी भाषा में तथा इस प्रकार हैं– ''वि. सं. 1974 (20 मई 1917) में जीर्णोद्धार हेतु बहादुर ने 25 रूपये खर्च किए।'' यह आजाद राज्य, कोटा राजपूताना के समय का शिलालेख है। सूर्यकुण्ड का जीर्णोद्धार 5 मार्च 1975 को हुआ।

मुख्यद्वार से अन्दर प्रवेश करने पर दायी ओर प्राचीन काले पत्थर से निर्मित एक शिवलिंग है, जिसकी जलधारी शिला पर ही उत्कीर्ण है। शिवलिंग पर ही सर्प की आकृति उत्कीर्ण है। इसके निकट ही क्रमशः तीन मूर्तियाँ स्थित हैं। प्रथम काली शिला पर उत्कीर्ण यक्ष समान मूर्ति स्थित है, द्वितीय विष्णु मूर्ति स्थानक मुद्रा में है जिसके ऊपरी दाहिने हाथ में पद्म, निचले दाहिने हाथ में शंख लिए है तथा ऊपरी बायें हाथ में गदा, तथा निचले बायें हाथ में चक्र लिए दिखाया गया है, साथ में लक्ष्मी

स्वरूप देवी की मूर्ति स्थित है। ये मूर्ति सफेद पत्थर से निर्मित है, तृतीय मूर्ति कार्तिकेय की है, जिसे पक्षी आकृति पर सम्भवतः मयूराकृति पर आरूढ़ दिखाया गया है। हाथ अंजलि मुद्रा में हैं। मस्तक पर अलंकरण स्वरूप मुकुट धारण किए हुए हैं। यहीं एक शिलापट्ट पर दो प्रतिमाएं क्रमशः हनुमान तथा गणेश जी की स्थित है।

मुख्य द्वार के ठीक सामने मुखमण्डप स्थित है तथा दो ओर बरामदे निर्मित हैं, जिसमें चौकोर आकृति के स्तम्भ बने हुए हैं, जिनमें से एक स्तम्भ पर विभिन्न देवी–देवताओं की आकृति उत्कीर्ण हैं जो लगभग अस्पष्ट है। जनश्रुति है कि इस मंदिर में 56 करोड़ देवी–देवताओं का निवास है। मुखमण्डप में तोरण निर्मित है जिसके बीच में होकर गर्भगृह में प्रवेश किया जाता है। गर्भगृह में धातु से निर्मित सूर्य देव की मूर्ति स्थापित है। गर्भ गृह के द्वार के एक ओर राम, लक्ष्मण, सीता तथा हनुमान का चित्र बना है तथा दूसरी ओर राधा कृष्ण का चित्र बना है। ये चित्र नवीन प्रतीत होते हैं।

मंदिर के मध्य में सोपान रूप में पाँच फुट लम्बा व पाँच फुट चौड़ा जल कुण्ड स्थित है जिस पर काले व सफेद पत्थरों से अलंकरण स्वरूप सोपान निर्मित है।

(iii) लवकुश मंदिर :–

लवकुश मंदिर सूर्यनारायण मंदिर के साथ ही निर्मित है। इस मंदिर के प्रवेशद्वार के ऊपर भी दो छतरियाँ निर्मित हैं। मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही आँगन के मध्य में एक जल–कुण्ड निर्मित है जो लगभग 7 फुट लम्बा व 7 फुट चौड़ा है। मुखमण्डप के दोनों ओर क्रमशः दो छतरियाँ बनी हैं जिनमें प्रथम छतरी में शिवपरिवार की मूर्तियाँ स्थित है, जिनमें शिवजी की पंचमुखी मूर्ति जिसके मस्तक पर अलंकरण स्वरूप गंगा का मुख उत्कीर्ण है जिसकी जलधारी भी उसी सफेद पत्थर से निर्मित दिखाई गयी है, शिवलिंग के एक ओर गणेश मूर्ति, तथा दूसरी ओर पार्वती मूर्ति तथा सामने शिवलिंग की ओर मुख करके नन्दी की मूर्ति स्थित है। शिवलिंग के ऊपर पीतल से निर्मित सर्प स्थित है तथा पास में त्रिशुल है जिस पर डमरू भी लगा है। द्वितीय छतरी में गणेश जी की चतुर्भुजी मूर्ति स्थित है।

गर्भगृह के अन्दर सीता जी की लव–कुश के साथ चित्रित प्रतिमा स्थित है, जिसमें सीता जी के एक ओर कुश को धनुष की प्रत्यन्चा खींचते हुए दिखाया गया है तथा निकट ही लव को ललितासन मुद्रा में बैठे दिखाया गया है।

मंदिर के बाहर एक चबूतरे पर शिवलिंग व नन्दी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। निर्माण शैली की दृष्टि से मूर्तियाँ प्राचीन प्रतीत होती हैं, परन्तु इनको रंगीन चित्रित करने से इनके काल–क्रम का पता लगा पाना सम्भव नहीं है।

(iv) वाल्मिकी आश्रम :–

लवकुश मंदिर से कुछ दूरी पर वाल्मिकी आश्रम निर्मित है। आश्रम के भीतरी प्रांगण में बगीचा है जिसमें विशाल आम्र वृक्षों के अतिरिक्त फूलों के पौधे लगे हुए हैं। यहाँ क्रमशः दो जल–कुण्ड निर्मित हैं, जिसमें प्रथम जल–कुण्ड आयताकार आकृति में निर्मित है। इस जल–कुण्ड में सोपान निर्मित है, यह निर्माण शैली की दृष्टि से नवीन प्रतीत होता है। द्वितीय जल–कुण्ड आकार में छोटा है, यह निर्माण शैली से प्राचीन प्रतीत होता है। समय–समय पर यहाँ जीर्णोद्धार होते रहते हैं, सम्भवतया प्रथम जल–कुण्ड का निर्माण बाद में किया गया होगा।

जल–कुण्ड के सामने की ओर वाल्मिकी मन्दिर निर्मित है। बनावट शैली के आधार पर यह मन्दिर भी नवीन प्रतीत होता है, परन्तु मन्दिर के गर्भगृह में महर्षि वाल्मिकी की पाषाण प्रतिमा ललितासन मुद्रा में स्थित है। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार यह प्राचीन प्रतिमा है। गर्भगृह के बाहर एक चबूतरे पर एक हवन कुण्ड निर्मित है। पूर्व में आश्रम के प्रांगण में अन्य मंदिर भी थे परन्तु अब अस्तित्व में नहीं है। वृक्षों के नीचे इन मंदिरों की खण्डित मूर्तियाँ बिखरी हुई हैं। जो पूरी तरह से जीर्ण स्थिति में है।

वाल्मिकी आश्रम की प्राचीनता का आँकलन आश्रम के बाहर एक वट वृक्ष के नीचे खुले स्थान पर स्थित प्राचीन मूर्तियों से लगाया जा सकता है। इन मूर्तियों में गणेश जी की एकाश्म (मोनोलिथिक) पाषाण मूर्ति स्थित है जिसमें गणेश जी की चतुर्भुज मूर्ति ललितासन मुद्रा में दर्शायी गयी गयी है।

इसके निकट ही एक पैनल पर क्रमशः तीन मूर्तियाँ स्तम्भों की आकृति के बीच में उत्कीर्ण हैं, जो अत्यन्त खण्डित अवस्था में स्थित हैं। इसी प्रकार के एक

अन्य पेनल पर भी क्रमशः तीन मूर्तियाँ यहाँ स्थित हैं। इन दोनों पेनल के मध्य एक मूर्ति स्थित है जो गणेश मूर्ति है यह भी पूरी तरह से खण्डित स्थिति में है।

प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार पूर्व में ये मूर्तियाँ मंदिर के अन्दर स्थापित थीं, परन्तु खण्डित अवस्था में होने के कारण मन्दिर में नवीन मूर्तियों की स्थापना कर इन्हें यहाँ बाहर रखवा दिया गया। जो कि अभी पुरातत्व विभाग की अनदेखी का शिकार हो रही हैं। इन मूर्तियों के उचित संरक्षण की आवश्यकता है।

वाल्मिकी आश्रम के ठीक सामने की ओर सीता माता का मन्दिर निर्मित है। यह मन्दिर पूर्णतया नवीन है इसकी स्थापना कुछ वर्षों पूर्व ही की गई है। मंदिर के गर्भगृह में सीताजी की सफेद पत्थर से निर्मित आकर्षक मूर्ति स्थित है।

यहाँ से 1–2 कि.मी. दूर जंगल में सीता जी की कुटिया निर्मित है, इसे सीता कुटि कहा जाता है। किवदंती है कि लव–कुश के जन्म के समय सीता जी यहीं इसी कुटिया में रही थीं। यहाँ सीता माता के पाषाण 'पद–चिन्ह' स्थित हैं, यह देखने में अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होते हैं। यहाँ से सीता जी की एक प्राचीन मूर्ति ज्ञात हुई है, जो अंजलि मुद्रा में पद्मासन लगाए स्थित है। यह मूर्ति तपस्यारत है, इसका मुख खण्डित अवस्था में है तथा शरीराकृति स्पष्टतया दृष्टव्य होती है। इस प्रकार की अन्य अनेकानेक मूर्तियाँ खण्डित अवस्था में सीताबाड़ी में यत्र तत्र बिखरी दिखाई देती हैं।

यहाँ प्रस्तुत मन्दिरों के अतिरिक्त अन्य कई नवीन मन्दिर स्थित है जिनमें राम मन्दिर एवं राधा–कृष्ण मंदिर प्रमुख हैं।

2. रामगढ़ का भण्डदेवरा शिवालय :–

रामगढ़ हाड़ौती के बारां जिले के अन्तर्गत आता है। यह बारां जिले के किशनगंज तहसील के रामगढ़ में स्थित है। यह बारां मुख्यालय से लगभग 45 किलोमीटर दूर कोटा शिवपुरी रोड पर स्थित किशनगंज तहसील के अन्तर्गत आता है। रामगढ़ एक प्राचीन पुरातात्विक स्थल है। भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार आज से लगभग लाखों वर्ष पूर्व आकाशीय उल्कापिंड इस जगह पर गिरा था।[47] उल्कापिंड के गिरने से यहां पर एक झील बन गई तथा झील के आस पास ऊपर उठी वृत्ताकार भूमि ने पर्वतों का आकार लिया वह बड़ा ही सुन्दर लगता है। पर्वतों से घिरा

वृत्ताकार पथ के मध्य हजारों एकड़ भूमि है जिसमें झील तथा मैदान है। झील के अतिरिक्त यहां मैदानी भाग में घना जंगल है। इसी जंगल के मध्य एक प्राचीन शिवालय स्थित है। रामगढ़ कस्बे से जब हम अन्दर झील की ओर जाते हैं तो उल्का खण्ड से बनी पहाड़ी पर बारीक कलात्मक लक्षण के माध्यम से पत्थरों पर चित्र उकेरे गए हैं। झील के पूर्वी तट पर ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी में राजा मलय वर्मा ने एक विशाल शिवालय का निर्माण करवाया। इस शिवालय को आज भण्डदेवरा के नाम से जाना जाता है। भण्डदेवरा के पास एक ग्यारहवीं शताब्दी का शिलालेख मिला है जो संस्कृत भाषा में लिखा है जिसके आधार पर यह ज्ञात होता है कि राजा मलयवर्मा ने किसी शत्रु पर विजय प्राप्ति के उपलक्ष में अपने इष्टदेव भगवान शिव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के उद्देश्य से इसका निर्माण करवाया था।[48]

भण्डदेवरा के मन्दिर की तुलना नागर शैली के उत्कृष्टतम मन्दिरों से की जा सकती है। इसकी स्थापत्यगत योजना, शिल्प शास्त्र तथा वैभव समकालीन स्मारकों में अद्वितीय है। मध्यकालीन अन्य केन्द्रों की ही भाँति भण्डदेवरा में भी मूतियाँ मन्दिर के विभिन्न भागों पर यथा बाह्य एवं भीतरी दीवारें, गर्भगृह, शिखर, जगती, प्रदक्षिणापथ आदि पर उत्कीर्ण की गई है। यहाँ स्थित मूर्तियों को चारों ओर से कोरकर बनाया गया है। इन मूर्तियों को परम्परागत शास्त्रीय नियमों के अनुसार बनाया गया है, जिनमें झलकता परम शान्ति एवं आनन्द का भाव विशेष दर्शनीय है।

भण्डदेवरा मन्दिर का तोरणद्वार अत्यन्त कलात्मक रूप से उत्कीर्ण किया गया है, जिसकी सुन्दरता देखते ही बनती है। इस मन्दिर की विशाल कुर्सी के तले भारी चबूतरा बनाया गया है जो इसकी भव्यता को और भी निखारता है। मुखमण्डप में पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ निर्मित है जो लगभग खण्डित अवस्था है, किन्तु इन की गई कलात्मक नक्कासी अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाए है। इन पर विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ उकेरी गई हैं।

मुखमण्डल में सुदृढ़ व आकर्षक स्तम्भ लगे हुए हैं। इन स्तम्भों की पीठिका (Base) या आधार पर लताओं व पुष्पों के समान आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं जिनमें स्त्री–पुरुष, गन्धर्व, देव–कन्याएँ, विभिन्न क्रियाकलापों में व्यस्त हैं। इन स्तम्भों के शीर्ष भाग (Capital) पर चारों ओर अत्यन्त बलिष्ठ आकृति में यक्ष समान मूर्तियाँ

उत्कीर्ण की हुई है। मुखमण्डप के ये स्तम्भ छत को ऊपर उठाए हुए हैं जो लगभग भग्न अवस्था में हैं।

मुखमण्डप के मध्य में गर्भगृह का मुख्य द्वार है। गर्भगृह के द्वार पर गुप्तकालीन मन्दिरों के समान गंगा यमुना की मूर्तियाँ व अनेक अन्य अलंकरण उत्कीर्ण है। गर्भगृह के द्वार शाखाओं के दोनों ओर अलंकृत अर्धस्तम्भों पर शिवगणों तथा द्वारपालों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यहाँ किया गया अलंकरण अपने आप में अद्वितीय प्रतीत होता है।

मन्दिर के गर्भगृह में भगवान शिव जी की अत्यन्त प्राचीन शिवलिंग स्थित है। शिवलिंग की जलधारी लिंग (प्रतीक) के साथ ही एकाश्म है। शिवलिंग के समीप ही शिवजी के वाहन नन्दी की मूर्ति स्थित है। गर्भगृह में एक ओर कार्तिकेय को अपने वाहन मुर्गा पर आरूढ़ दिखाया गया है जिसके एक हाथ में अलंकरण स्वरूप पताका स्पष्ट प्रतीत होता है। वृहत्संहिता में स्कन्द अथवा कार्तिकेय के प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षणों का वर्णन इस प्रकार है– कार्तिकेय का वाहन मुर्गा है। वह शक्ति धारण करते हैं। उनके मुख से सुकुमारता झलमती है। विष्णुधर्मोत्तमर में उन्हें षट्मुखी देव कहा गया है जो शिखण्डक से सुसज्जित है। वह लाल रंग का वस्त्र धारण किये रहते हैं और मुर्गे पर सवार है। उनके दो हाथों में कुक्कुट और घंटा होना चाहिए और बायें हाथों में वैजयन्ती पताका और शक्ति होनी चाहिए।[49] गर्भगृह में कार्तिकेय की प्रतिमा के निकट ही भित्ति पर एक अन्य प्राचीन गणेश प्रतिमा स्थित है।

मन्दिर के शिखर समूह नीचे से ऊपर क्रमशः बड़े से छोटे–छोटे जाते हैं जो अत्यन्त कलात्मक व सुन्दर दिखाई देते हैं। यद्यपि शिखर का लगभग आधा भाग गिर गया है, परन्तु अवशिष्ट भाग विलीन सुन्दरता, शैली और आकृति के वैभव का सकरूण स्मरण दिलाता है। यह मंदिर कोणार्क और खजुराहों की कलात्मक श्रृखंला की तरह का ही एक मंदिर है। इसी कारण इसे राजस्थान का 'मिनी खजुराहो' कहा जाता है। मंदिर में स्थापित नटराज महादेव का लिंग एवं अन्य देव प्रतिमाओं के साथ यक्ष, किन्नर–देवी–देवता, गन्धर्व एवं अप्सराओं के मासल एवं देह सौन्दर्य का बड़े ही कलात्मक तरीके से अंकन किया गया है। उनके सुचिल्कन कपोल बलयाकार केश गुच्छ, अलसाई आंखें, उन्नत चिबुक, दीर्घग्रीवा, उन्नत एवं वलयाकार उराजे क्षीण

कटि मांसल जंघाये तथा उनके शरीर पर धारण गहनों (अलंकार) का श्रेष्ठ अंकन किया गया है। मंदिर की बाहरी दीवारों पर अनेक गन्धर्व किन्नर एवं देव युगल अपनी प्रेमिकाओं के साथ मिथुनरत हैं।

इस शिवालय के ऊपरी भाग पर 84 शिखर बने हुए हैं जो 84000 योनियों की जन्म जन्मान्तर दर्शन का प्रतीक हैं। मंदिर के प्रत्येक पाषाण स्तम्भ पर सुन्दर कलात्मक नक्कासी के मध्य से यक्ष–यक्षणियों, देव किन्नर का अंकन किया गया है।

विक्रम की 13वीं शताब्दी के आरम्भ में एक मेद वंशीय क्षत्रिय राजा ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था।[50] 14वीं सदी तक भण्डदेवरा में उत्तरी भारत का सबसे बड़ा महाशिवरात्रि मेला लगता था।[51] इस अवसर पर यहां एक विशाल एवं भव्य नृत्य समारोह आयोजित होता था। किन्तु 14वीं सदी में ही इस पहाड़ी पर प्राकृतिक आपदा के रूप में वज्रपात हुआ, जिसके परिणामस्वरूप मंदिर का ऊपरी भाग तथा आस पास के स्थलों को भारी क्षति हुई।[52] आसपास के कुछ मंदिर तो हमेशा के लिए नष्ट हो गए और कुछ ने अपना अस्तित्व बचाये रखा। भण्डदेवरा शिवालय के कलात्मक शिखर में दरार आ गई। आज से 600 वर्ष पूर्व प्राकृतिक आपदा के बाद आज तक मंदिर की दरार को पाटा नहीं गया है।[53] जीर्णोद्वार के अभाव में भण्डदेवरा मंदिर अपने वास्तविक रूप को खोता जा रहा है। घना जंगल होने के कारण इस नीरव एकान्त दुर्गममय वन एवं सुरक्षित क्षेत्र जानकर पहले तो डाकुओं ने इसे अपना आश्रय स्थल बनाया फिर धीरे–धीरे मूर्ति तस्करों ने पुरा सम्पदा को पैसे कमाने का साधन बनाया। इन मूर्ति चोरों ने पूरे देश के कलात्मक देव विग्रह, पाषाण खण्डों और मूर्तियों को चुराकर विदेशों में भेजने का धन्धा प्रारंभ किया।

पुरातत्व की दृष्टि से अपनी एक विशेष पहचान रखने वाला भण्डदेवरा शिवालय मूर्ति चोरों की सूची में सबसे ऊपर था। मूर्ति चोर इस मंदिर से कई मूर्तियाँ चुराकर ले गये। इस मंदिर में लगी मूर्तियाँ उल्का खण्ड में ही उत्कीर्ण की गयी थी। इस कारण मूर्ति चोरों को चट्टान काट कर मूर्तियाँ खोदनी पड़ती थी, इससे अन्य दूसरी मूर्तियों को भी भारी क्षति पहुंची। मूर्ति तस्करों द्वारा जितनी मूर्तियाँ यहाँ से खोदी गयीं उससे कहीं अधिक खण्डित कर दी गयीं हैं।

मंदिर परिसर में कई मूर्तियाँ सिर विहीन धड़ व धड़ विहीन सिर बिखरे पड़े हैं, जो आज भी अपने कलात्मक सौन्दर्य की कहानी स्वयं कहते हैं। मूर्तियों को चोरों से बचाने के लिये तत्कालीन बारां जिला कलेक्टर नवीन जैन के प्रयासों से इस पुरा सम्पदा एवं उत्कृष्ट मूर्तियों को वहां से निकाल कर बारां जिला मुख्यालय में स्थापित कराया गया है।

इस मंदिर के पीछे की ओर इसी नमूने का एक छोटा सा मन्दिर और है। जो लगभग जीर्णावस्था में है। इस मन्दिर की निर्माण शैली भण्डदेवरा शिवालय के गर्भगृह के समान ही प्रतीत होती है। इस मन्दिर की द्वार शाखाओं पर भी अलंकृत अर्धस्तम्भ स्थित है, तथा बाहरी भित्तियों पर विभिन्न प्रकार की अलंकृत आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।

3. कपिल धारा :–

यह बारां से लगभग 49 किलोमीटर दूर जैदपुर नामक गांव से पश्चिम दिशा में स्थित है। कपिल धारा पहुँचने के लिए जैदपुर से 1 किलोमीटर दूर जंगल की ओर जाना पड़ता है। यह अति प्राचीन लगभग 400 वर्ष पुराना स्थान है। लोकमान्यता है कि कपिल मुनि का यहां आश्रम व तपस्या स्थल था। यह स्थान आदिवासी सहरिया जाति व धाकड़ जाति का प्रमुख धार्मिक स्थल है। ये कपिल मुनि (वैदिक ऋषि जो भारतीय सांख्य दर्शन के प्रवर्तक थे) के उपासक हैं। चारों ओर घने जंगल फैले हुए हैं तथा यह चट्टानी क्षेत्र है जिसमें परतदार चट्टानें पायी जाती हैं। यहां विलास नदी बहती है। प्राकृतिक झरने इस स्थान को बहुत ही खूबसूरत बना देते हैं।

यहाँ चट्टानों पर प्राचीन समय के शैलचित्र स्थित हैं। पूर्व में यहां चट्टानों के बीच में से टूटे फूटे मार्ग से उतरना पड़ता था, परन्तु अब यहाँ नीचे जाने के लिए सीढ़ियां लगा दी गई हैं। यहाँ भगवान कपिल मुनि ने तपोबल से गंगा की धारा उत्पन्न की थी इसलिये यह 'कपिल धारा' कहलाती है।[54] इस तीर्थ पर कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर मेला लगता है।

विलास नदी के किनारे सोपान रूप में प्राकृतिक चट्टानों पर पुरातात्विक स्थल निर्मित हैं। जिनमें दो कुण्ड हैं। जिसमें प्रथम कुण्ड में प्राचीन गोमुख आकृति

से जल निष्कासित होता है। इस कुण्ड में चारों ओर सोपान बने हुए हैं। कुण्ड चतुष्कोणीय हैं, जो चूना मिट्टी से निर्मित हैं, कुण्ड का फर्श भी चूना मिट्टी से बना हुआ है। कुण्ड में तले की ओर नालियां बनी हुई हैं।

द्वितीय कुण्ड प्रथम कुण्ड के समानान्तर बना हुआ है। यह भी प्रथम कुण्ड की भांति चूना मिट्टी से बना हुआ है, जिसके चारों ओर सोपान हैं, इसमें भी तले की ओर नालियाँ बनी हुई हैं। प्रथम कुण्ड व द्वितीय कुण्ड एक दूसरे से एक नाली द्वारा जुड़े हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप चट्टानों का जल प्रथम कुण्ड एवं द्वितीय कुण्ड को साथ–साथ भरता है।

सोपान की दीवारों पर अलंकरणों का उत्कीर्णन प्रदर्शित होता है, जो जल धारा के बहाव से वर्तमान में लुप्तप्राय हो रहा है। अतः कला कृतियों एवं अलंकरणों की स्पष्ट जानकारी नहीं होती है।

द्वितीय कुण्ड के मध्य में सतह पर लगभग तीन फीट ऊँचा स्थूल (Rough) स्तम्भ निर्मित है, जो शीर्ष पर अष्टकोणीय किंतु खण्डित है। स्तम्भ ऊपर समतल है जो मंच सदृश्य है जिस पर कपिल मुनि की शांत मुद्रा में चूने मिट्टी की बनी प्रतिमा है। ग्रीवा में अलंकरण स्वरूप सर्प लिपटा हुआ है। मूर्ति की आकृति कमर से ऊपर की है, केवल भुजाओं का प्रदर्शन है, हाथ नहीं है। शरीर नग्न है, नेत्र एवं नासिका अत्यन्त सुघड एवं कटीली है। मुस्कुराती हुई मुखमुद्रा है। नेत्र नीचे की ओर निहार रहे हैं, माथा ऊँचा है एवं सिर पर प्रतीक स्वरूप बालों का अंकन है। कर्ण भी स्पष्ट प्रदर्शित होते हैं।

कुण्ड के किनारे ऊपर की ओर एक नवीन चबूतरा बना हुआ है जिस पर कुछ पाषाण प्रतिमाएं रखी हुई हैं। इनमें एक प्रतिमा हनुमान जी की खड़ी मुद्रा में है, जिसे भक्तगणों ने सिंदूर से पोत रखा है। इसके अतिरिक्त नजदीक ही चट्टानों के मध्य क्रमशः तीन गुहाएं स्थित हैं, जिनका द्वार छोटा है, जिसमें झुककर अन्दर जाना पड़ता है। मध्य गुहा के कक्ष में प्रधान रूप से गणेश प्रतिमा स्थानक मुद्रा में स्थित है, यह मूर्ति चतुर्भुजी है जिसे भक्तगणों द्वारा सिंदूर से ढक दिया गया है, वर्तमान में भी यह पूजा स्थल है।

गणेश प्रतिमा के दायीं ओर क्रमशः चार प्राचीन मूर्तियाँ हैं। प्रथम मूर्ति आसन मुद्रा में है, हाथ अंजलि मुद्रा में है। द्वितीय मूर्ति में स्थानक मुद्रा में दो स्त्रियों की मूर्ति है जिनके हाथ अंजलि मुद्रा में है तीसरी मूर्ति भी लगभग दूसरी जैसी ही है किंतु आकार में कुछ छोटी है। चतुर्थ मूर्ति अश्वरोही की है सम्भवतया हाथ में गदा है।

द्वितीय गुहा के कक्ष में शिवलिंग जलहरि सहित है, समीप ही नन्दी की आकृति है। नन्दी का मुख शिवलिंग की ओर न होकर द्वार की ओर है।

तृतीय गुहा रिक्त है जो साधु या पुजारी के रहने का स्थल प्रतीत होती है।

विवेच्य विवरण में सापेक्ष तिथि विधि के आधार पर कहा जा सकता है कि गणेश जी की गुहा वाली मूर्तियां प्राचीन हैं, जबकि शिवलिंग एवं कपिल मुनि की मूर्ति उत्तरकालीन हैं। प्राचीन मूर्तियों की तिथि सम्भवतः 8 वीं 9 वीं शताब्दी की प्रतीत होती हैं।

4. तपस्वी जी की बगीची :–

संत महात्माओं की तपस्या स्थली होने के कारण इस स्थान का नाम तपस्वी जी की बगीची रख दिया गया। वर्तमान में यह स्थान तपसी जी की बगीची के नाम से प्रसिद्ध है, अतः तपसी शब्द तपस्वी का अपभ्रंश है। यहाँ प्राचीन शिव मंदिर स्थित है। मंदिर के गर्भगृह में काले पत्थर से निर्मित विशाल शिवलिंग स्थित है। शिवलिंग की जलधारी बड़े आकार की व काले पत्थर से बनी हुई है, तथा शिवलिंग अलग पत्थर से निर्मित तथा बाद में इस पर रखा गया हो ऐसा प्रतीत होता है। यह शिवलिंग लगभग दो फीट ऊँचे गोलाकार स्तम्भ पर रखी हुई है। गर्भगृह में द्वार के सामने की ओर आले में एक श्वेत वर्ण देवी की मूर्ति लगी हुई है। मुखमण्डप में पूर्व में एक बड़ी सी काले पत्थर से निर्मित नंदी की मूर्ति लगी थी, जो यहाँ से चोरी चली गयी, बाद में इसके मिल जाने पर प्रशासन द्वारा सुरक्षा की दृष्टि से शाहाबाद पुलिस स्टेशन में एक चबूतरे का निर्माण कर उस पर स्थापित कर दिया गया । और यहाँ एक नवीन पाषाण की नंदी मूर्ति रख दी गयी है।

शिवलिंग के विषय में मान्यता है कि इसे मंदिर निर्माण के समय पहले गर्भगृह में स्थापित किया गया बाद में द्वार का निर्माण किया गया। इस कारण शिवलिंग द्वार से बड़ी है। किवदंती है कि शिवलिंग को भी चोरों द्वारा उखाड़कर ले जाने का प्रयास किया गया था, किंतु द्वार से बड़ी होने के कारण इसे बाहर नहीं निकाल पाए। मंदिर की छत पर चारों दिशाओं पर क्रमशः चार छतरियाँ बनी हुई हैं । गर्भगृह की छत पर वर्गाकार आकृति का विमान निर्मित है। मुखमण्डप में चारों ओर स्तम्भ बने हुए हैं।

तपस्वी जी की बगीची घने जंगलों से घिरा एक प्राकृतिक रमणीक स्थल है। इसके पीछे की ओर शाहाबाद दुर्ग की प्राचीर व महलों का कुछ हिस्सा दिखाई पड़ता है। इसके एक ओर ऊँची पहाड़ियाँ हैं व दूसरी ओर कुण्डा खो से बहती हुई सिरसा नदी इसके पास से गुजरती है। वर्तमान में इसके ऊपर एनीकट का निर्माण करवाया गया है।

मान्यता है कि यहाँ तांबे से बने फव्वारे लगे हुए थे जिनमें पानी किले की बावडी से आता था। मंदिर के निकट ही एक बावडी व पानी के टांके बने हुए हैं। मंदिर के बाहर पत्थर पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार इसका जीर्णोद्वार झाला जालिम सिंह द्वारा ज्येष्ट संवत् 1865 में करवाया गया।[55]

5. सहस्त्रेश्वर महादेव :–

हाडौती में भगवान शिव की पूजा की प्राचीन परम्परा रही है। साथ ही साथ प्रायः बड़े शिव मन्दिर आबादी से दूर बनाये गये।[56] इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए शाहाबाद में भी शैव मन्दिरों का निर्माण किया गया। इनमें प्रधान मंदिर सहस्त्रेश्वर महादेव का है।

शैवधर्म से सम्बन्धित स्पष्ट प्रमाण हडप्पा सभ्यता से प्राप्त हुए हैं। ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी शैव धर्म के प्रमाण हैं। ब्राह्मण धर्म ग्रन्थ जैसे शतपथ ब्राह्मण कौषितकी, ब्राह्मण आदि उपनिषद जैसे श्वेताश्वतर उपनिषद महाकाव्य जैसे रामायण, महाभारत, शिवपुराण, लिंगपुराण, स्कन्धपुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण आदि में शैवधर्म के विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।[57]

उत्तरी मध्यप्रदेश के मन्दिरों एवं राजस्थान के गुर्जर प्रतिहार कला के मंदिरों में पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है जिसका प्रभाव हाड़ौती क्षेत्र के मंदिरों पर भी पड़ा है। यही कारण है कि अशोक नगर क्षेत्र (म.प्र.) से प्राप्त सहस्त्रमुख शिवलिंग में एवं शाहाबाद से प्राप्त सहस्त्रमुख शिवलिंग में पर्याप्त समानता है। अशोक नगर के तूमेन के सहस्त्रमुख शिवलिंग की भांति शाहाबाद के सहस्त्रमुख शिवलिंग में भी जलधारी नहीं है।

शाहाबाद का यह सहस्त्रेश्वर महादेव का मन्दिर मुख्य बस्ती से बाहर उत्तर दिशा की ओर शमशान घाट के नजदीक स्थित है। निर्माण के विषय में जानकारी का अभाव है। मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार साधारण बनावट का है जो पश्चिमाभिमुख है। प्रवेशद्वार के पश्चात् मुखमण्डप (Front Hall) है, इसके दायीं ओर गर्भगृह का प्रवेश द्वार है जो प्रायः बन्द रहता है। गर्भगृह में जाने के लिए मुखमण्डप से ही पूर्व की ओर होकर एक चौकोर आंगन में होते हुए गर्भगृह के दूसरे पूर्वी द्वार पर पहुँचते हैं। गर्भगृह चतुष्कोणीय है। इस सहस्त्रमुखी शिवलिंग में जलधारी नहीं है। समीप एक सादा अपेक्षाकृत बहुत छोटा शिवलिंग वर्गाकार जलधारी में स्थापित है। दूसरी ओर गणेश की एक प्रतिमा एक आले में रखी हुई है। शिवलिंग पर चारों ओर अनगिनत छोटे–छोटे शिवलिंग उत्कीर्ण हैं। यह शिवलिंग ऊपर चिकना व उत्तल है। यह शिवलिंग आकार में लगभग दो फीट ऊँचा है। गर्भगृह में शिवलिंग के समीप जल संकलन एवं निकास हेतु एक छोटा सा कुंड है। वहीं समीप ही शिवजी के वाहन नंदी की मूर्ति स्थापित है।

गर्भगृह के बाहर मुखमण्डप में तीन आलों में क्रमशः शीतला माता, नृसिंह व गणेश जी की मूर्ति रखी हुई है, मुखमण्डप के बीच में हवन कुण्ड निर्मित है। यहाँ दो कक्ष व दो बरामदों का निर्माण किया गया है, बीच में लम्बा चौड़ा खुला मैदान है जिसमें एक कुआँ बना हुआ है। आँगन में ही बीलपत्री व फूलों के पौधे लगे हुए हैं। गर्भगृह के सामने की ओर एक चबूतरे पर हनुमान जी मूर्ति प्रतिष्ठित है।

मंदिर परिसर के बाहर एक विशाल पीपल का वृक्ष है इसके नीचे भी एक शिवलिंग जलधारी सहित स्थापित है। मंदिर में पूजा के उपरान्त इस पीपल के वृक्ष की पूजा की परम्परा है।

महाशिवरात्रि पर मन्दिर को विशेष रूप से सजाया जाता है। एक दिन पूर्व पूरी रात यहाँ भजन कीर्तन का आयोजन किया जाता है। जिन लोगों में शैवधर्म के प्रति विशेष आस्था है वे अपने बच्चों का मुंडन संस्कार भी इसी सहस्त्रेश्वर महादेव के मंदिर में कराते हैं।

6. पिंडासिल :–

शाहाबाद नगर से 3–4 किमी. दूर जंगल में पिंडासिल नामक स्थान हैं। यहाँ खुले स्थान पर एक विशाल गोलाकार जलधारी पर शिवलिंग स्थापित है। भारतीय धर्म ग्रन्थों के अनुसार यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मूल रूप में केवल अण्डाकार ज्योर्तिपुंज के रूप में था। वर्तमान विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है। इसी ज्योर्तिपुंज को आदिशक्ति (शिव) भी कहा गया है।[58] शिवपुराण में उल्लेख है कि शिवलिंग स्वरूप ज्योर्तिमय स्तम्भ की ऊँचाई और गहराई की थाह लेने की श्री ब्रह्मा और विष्णु ने चेष्टा की किन्तु असफल रहे।[59] इस प्रकार लिंग साक्षात् ब्रह्म का प्रतीक है।[60]

स्कंदपुराण में कहा गया है कि लयनाल्लिंगमुच्यते अर्थात् जिससे लय और प्रलय होता है, उसे ही लिंग कहते हैं।[61] शिवलिंग में तीनों प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त महादेव पार्वती का भी निवास माना गया है। नीचे की वेदी महादेवी का प्रतीक है, शिवलिंग के नीचे के भाग में ब्रह्मा निवास करते हैं, मध्य में विष्णु और सबसे ऊपर स्वयं शिव का निवास माना गया है।[62]

यह शिवलिंग पर्वतीय खोह के भीतर बिल्कुल एकान्त और निर्जन स्थान पर स्थित है। यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न है। काले पत्थर से निर्मित यह विशाल शिवलिंग एक खुले स्थान पर पेड़ के नीचे प्रतिष्ठित है। इसके पीछे की ओर पहाड़ों से होते हुए नदी बहती है। वर्षाकाल में पहाड़ी झरने इसके समीप गिरते हैं। जिससे यहाँ का वातावरण और अधिक सौन्दर्यमय हो जाता है।

जनश्रुति है कि शासकों द्वारा एकान्त में शांति से देव आराधना हेतु इस स्थान पर जाने की परम्परा रही थी। अन्यथा इतने वीरान और घने जंगल में इतनी विशाल प्राचीन शिवलिंग कहाँ से आई। श्रावण के महीने में लोग यहाँ शिवपूजा हेतु जाते हैं। ज्यादा वर्षा होते ही यहाँ पहुँचना असंभव सा हो जाता है। इसके समीप

पहाड़ों से होते हुए पानी के झरनों में पानी की आवक बढ़ जाती है, जिससे यहां शिवलिंग के चारों ओर पानी ही पानी हो जाता है।

यह शिवलिंग शाहाबाद क्षेत्र की सबसे विशाल व प्राचीन शिवलिंग है। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार पूर्व में यहाँ और भी मूर्तियों के भग्नावशेष पड़े थे जो या तो स्थानीय निवासियों द्वारा उठा लिए गए अथवा जलधारा के साथ नदी में बह गए।

7. नगरकोट माता मन्दिर :–

शाहाबाद बस स्टेण्ड से लगभग 2 किलोमीटर दूर पहाड़ी पर स्थित नगरकोट माता का मन्दिर क्षेत्रवासियों की आस्था का प्रमुख केन्द्र है। शाहाबाद नगर की स्थापना के साथ ही चौहान शासन मुकुटमणि देव के द्वारा नगर की सुरक्षा के लिए शाहाबाद के चारों ओर एक शहरपनाह (परकोटे) का निर्माण कराया गया, जो नगरकोट कहलाया।

इसी नगरकोट के अन्तिम छोर पर संवत् 1521 में एक माता मन्दिर की स्थापना राजा मुकुटमणि देव द्वारा की गई जो नगरकोट माता मन्दिर के नाम से जाना गया। मन्दिर में चार सीढ़ियाँ चढ़कर मुखमण्डप में पहुँचा जाता है। मुखमण्डप के ठीक मध्य में गर्भगृह स्थित है। गर्भगृह में दुर्गा माता की शेर पर सवार अष्टभुजी पाषाण मूर्ति शेर पर आरूढ़ स्थानक मुद्रा में प्रतिष्ठित है। दुर्गा शक्ति एवं शौर्य की प्रतीक है। वह दुष्टों का संहार कर अपने भक्तों की रक्षा करती है। शुभभेदागम में दुर्गा की उत्पत्ति आदिशक्ति से बताई गई है। ग्रन्थों के अनुसार, दुर्गा की चार या आठ भुजाएँ होनी चाहिए। आठ भुजाओं वाली प्रतिमा के हाथों में शंख, चक्र, शूल, धनुष, बाण, खड्ग, खेटक और पाश होता है।[63]

भारत के विभिन्न दुर्गा मन्दिरों में देवी को सिंहारूढ़ दिखाया गया है। वह प्रायः लाल रंग की साड़ी तथा विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित होती है। उनके सिर पर मुकुट तथा आठ हाथों में से सात में खड्ग, त्रिशुल, चक्र, कमल, धनुष, गदा और शंख होते हैं तथा आठवां आथ वरद मुद्रा (मूर्ति का दाईना हाथ कुछ आगे रहता है, हथेली खुली रहती है तथा अंगुलियाँ सटी हुई नीचे की ओर आधी मुड़ी हुई होती हैं। इसके माध्यम से वरदान देने की क्रिया दर्शायी जाती है) में होता है। आगम हमें दुर्गा के नौ रूपों से परिचित कराते हैं, यह नौ रूप हैं– नीलकंठी दुर्गा, क्षेमण्डकरि

दुर्गा, हरसिद्धि दुर्गा, रूद्रांश दुर्गा, वन दुर्गा, अग्नि दुर्गा, जय दुर्गा, विन्ध्यवासिनी दुर्गा, व रिपुमारि दुर्गा।[64]

इस तरह की मूर्ति बहुत कम मिलती है, ज्यादातर अष्ट भूजी मूर्ति में शेर का मुख दायीं ओर होता है, लेकिन इस मूर्ति के शेर का मुख बायीं ओर है, यह यहां की एक खास बात है। गर्भगृह के बाहर ही प्रदक्षिणा पथ निर्मित है। मुखमण्डप से बाहर निकलकर मन्दिर की दायीं ओर छोटा–सा मन्दिर भैरव नाथ का बना हुआ है। इसी के साथ हवन पूजन हेतु एक हवनकक्ष माता के मुख मन्दिर के पास में ही स्थित है, जिसमें एक विशाल हवन कुण्ड निर्मित है, प्रार्थना या पाठ हेतु एक प्रार्थना भवन अलग से बना हुआ है।

चारों ओर से पहाड़ियों के बीच होने के साथ ही साथ दुर्लभ वनों की हरियाली में मन्दिर के आस–पास का सौंदर्य अतिरमणीय है। यहाँ एक सुंदर बगीचा निर्मित है, जिसमें शिव–परिवार की मूर्ति एक चबूतरे पर प्रतिष्ठित है। बच्चों के खेलने हेतु झूले व फिसलपट्टी लगी हुई है। बरसात के दिनों में यहां का प्राकृतिक वातावरण बहुत ही मनमोहक होता है।

मन्दिर की चमत्कारिक शक्ति के विषय में एक ऐतिहासिक कथा इससे जुड़ी हुई है, किवदंती है कि रियासत काल में डाकू अमरतलाल द्वारा कई बार डकैती डालने की कोशिश की गई, परन्तु वह इसमें सफल नहीं हो पाया। कहते हैं कि जब वह अच्छी मंशा से आता था, तब वह पूरा गाँव घूम जाता था और दिन में पूरी जानकारी कर जाता था, परन्तु वह रात्रि में डकैती की योजना से आता था तो माता उसे अन्धा कर देती थी। उसने माता को प्रसन्न करने की कोशिश की, और बोरियाँ भरकर नारियल चढ़ा दिए तथा बलि देकर भी माता को प्रसन्न करने की कोशिश की, परन्तु वह फिर भी अपने इरादों में सफल नहीं हो सका और माता उससे प्रसन्न नहीं हुई।

अंत में उस डाकू ने हार मानकर माताजी की प्रतिमा के तीन टुकड़े कर दिए कहा जाता है कि माता ने कहा कि तू तो एक दिन मना कर (प्रसन्न कर) चला जाएगा, लेकिन गाँव वाले तो मुझे प्रतिदिन मनाएँगे और मेरी पूजा, अर्चना करेंगे। इसलिए मैं उनका अहित नहीं होने दूँगी और उनकी रक्षा करूँगी। ग्रामवासियों का

यह कहना है कि उसी समय से शाम को शेर वहाँ आकर पहरा देता था। रात्रि में मन्दिर पर जाने वाले लोगों ने स्वयं उसे देखा है, परन्तु वह जनसाधारण को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता था। मन्दिर के आस–पास ही रातभर पहरा लगाता और सुबह होते ही वहाँ से जंगल में चला जाता था। वर्तमान में नवरात्रि में भी कई बार लोगों ने शेर को देखा है। मूर्ति के टुकड़े कई वर्षों तक मन्दिर के पास रखे हुए थे। नगरवासियों द्वारा मन्दिर में नई मूर्ति की स्थापना की गई और कुछ समय बाद उस खण्डित मूर्ति को पास ही कुण्डाखोह नामक तालाब में विसर्जित कर दिया गया।

यहाँ प्रतिवर्ष चैत्र पक्ष के नवरात्रा में नौ दिन का विशाल मेला लगता है, दूर–दूर से श्रद्धालु यहाँ आते हैं। इस मेले की मुख्य विशेषता है। यहाँ की नेजे (ध्वजा) चढ़ाने की सांस्कृतिक परम्परा है। यहाँ स्थानीय नगरवासी अपने–अपने समुदाय के नेजे नाच गानों के साथ माता के चरणों में अर्पित करते हैं। इसमें लोगों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र होता है, बच्चों का लांगुरिया (वानर वेश) स्वांग धारण करके किया जाने वाला नृत्य जिसे बच्चों द्वारा पारम्परिक वेशभूषा धारण करके किया जाता है। सामान्यतया वर्षभर ही यहाँ श्रद्धालुओं का आना–जाना लगा रहता है, परन्तु सप्तमी तिथि का यहाँ विशेष महत्व है। इस दिन माता की विशेष पूजा अर्चना होती है।

नवरात्रि की नवमी पर भी यहाँ हवन–पूजन और कई प्रकार के अनुष्ठान किए जाते हैं। प्रतिदिन माता की झांकियाँ बदल–बदल कर सजाई जाती है। दोनों नवरात्रों में यहाँ पण्डितों द्वारा अनुष्ठान किये जाते हैं नो दिनों तक यहाँ हवन पूजन के साथ ही कन्याभोज व गरीबों को भोजन कराया जाता है। नवरात्रा के दौरान कनक दण्डवत यात्रा (जिसमें व्यक्ति पूरा लेटकर चलता है) का विशेष महत्व है। दूर–दूर से लोग यहाँ मनोकामना पूर्ति हेतु कनक दण्डवत यात्रा करते हुए आते हैं।

वर्तमान में यहाँ अतिथि गृह, धर्मशाला व सुन्दर बगीचे का निर्माण कराया गया है, मुख्य मंदिर भी बड़ा और बहुत ही आकर्षक बनाया गया है। यहाँ की बावड़ी यहाँ आने वाले श्रद्धालुओं के लिए एकमात्र पेयजल स्त्रोत है। इतनी ऊँची पहाड़ी पर स्थित होते हुए भी इसका जल कभी सूखता नहीं है, यह भी एक चमत्कार से कम नहीं है। कालान्तर में इस मंदिर के रख–रखाव व पूजा का दायित्व पुजारी पूरनमल

जी व्यास उठाते हैं। लोगों की इस मंदिर से जुड़ी धार्मिक आस्था का प्रमाण इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि घने जंगल के बीच स्थित होते हुए भी लोग यहाँ प्रतिदिन सुबह व शाम को दर्शन करने के लिए जाते हैं।

शाहाबाद की प्रसिद्ध मस्जिद :–

जामा मस्जिद :–

शाहाबाद नगर के ठीक मध्य में बस स्टेशन से लगभग 2 किलोमीटर दूर स्थित जामा मस्जिद राजस्थान की बड़ी मस्जिदों में से एक मानी जाती है तथा यह मुगलकालीन है। शाहाबाद कस्बे में शहरपनाह के मध्य पूर्वी ओर झाँकती गगनचुम्बी दो मीनारों वाली भव्य एवं विशाल यह मस्जिद दिल्ली की शाही जामा मस्जिद की शैली में बनी है।

मुसलमानों के सामूहिक प्रार्थना स्थल को 'मस्जिद' कहते हैं। इस इमारत में आयताकार खुला आँगन होता है जिसके चारों ओर अथवा किसी भी ओर स्तम्भित बरामदा होता है। आँगन के केन्द्र में 'जल–कुण्ड' होता है जहाँ पर हाथ–पैर धोये जाते हैं। भारत में इन मस्जिदों के पश्चिमी ओर के बरामदों को अधिक विकसित किया गया है। इसी के पीछे की दीवारों में मेहराब बनाये जाते हैं, जो दिशा–निर्देशन का कार्य भी करते हैं। लोगों को प्रार्थना के आह्वान करने के लिए एक ऊँचा स्थान निर्मित किया जाता है। यही ऊँचा स्थान प्रायः मीनार कहा जाता है। लगभग प्रत्येक बड़े शहर में 'जामा–मस्जिद' निर्मित की जाती है।[65]

औरंगजेब के काल में शाहाबाद के मुगल फौजदार मकबूल ने इसका निर्माण 1666 ईस्वी में प्रारम्भ कराया था तथा यह 1676 ईस्वी में बनकर तैयार हुई थी।[66]

दरोगा मकबूल का मस्जिद निर्माण सम्बन्धी फारसी में लिखा शिलालेख अभी भी यहाँ लगा हुआ है। मस्जिद के अन्दर दो बहुत ही ऊँची मीनारें बनी हुई है। इसे मुस्लिम वास्तु का एक अन्य महत्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है। ऊँचा चबूतरा, विशाल गुम्बदयुक्त प्रार्थना स्थल का एक आवश्यक अंग होता है। इसी 'उन्नत

चबूतरे' से प्रतिदिन पाँच बार प्रार्थना के लिए मुसलमानों का आह्वान किया जाता है। यह ऊँचा स्थान ही ऊपर चलकर मीनार का रूप ग्रहण कर लेता है।

ये मीनारें लगभग 150 फुट ऊँची है तथा इनके ऊपर एक–एक आकर्षक छतरी बनी हुई है। इन मीनारों में ऊपर के लिये घुमावदार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मीनारों के अन्दर बीच–बीच में आलेनुमा छेद हवा व रोशनी के लिए निर्मित हैं। इनके ठीक मध्य में पहुँचने पर एक खिड़कीनुमा द्वार बना है, जिसके बाहर एक गोलाकार आकृति में बाहर आने के लिए स्थान बना है। यहाँ से आगे सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर छतरी तक पहुँचा जा सकता है। छतरी के ऊपर नुकीले घुमावदार छज्जे लगे हैं। इतनी ऊँचाई पर होने से इन मीनारों से शाहाबाद नगर का आधे से ज्यादा हिस्सा दिखाई देता है। स्थानीय भाषा में इन मीनारों को सुरही कहकर पुकारा जाता है। शाहाबाद के आस–पास घना जंगल होते हुए ये मीनारें कोसो दूर से दिखाई देती हैं।

मस्जिद में जाने के लिए 10–15 बड़ी–बड़ी सीढ़ियाँ चढ़कर इसके मुख्य प्रवेश द्वार पर पहुँचा जा सकता है। इन सीढ़ियों के नीचे मस्जिद के निचले हिस्से में बरामदेनुमा कक्ष बने हुए हैं। मस्जिद का मुख्य प्रवेश द्वार लकड़ी से निर्मित विशाल दरवाजा है। सामान्यतया यह दरवाजा बन्द रहता है, अन्दर जाने के लिए इसमें लगे छोटे खिड़कीनुमा द्वार को ही उपयोग में लिया जाता है। बड़ा दरवाजा किसी विशेष अवसर पर ही खोला जाता है। इसके दोनों ओर बाहर की तरफ एक–एक छोटे से चबूतरे के समान बैठने के स्थान बने हुए हैं।

अन्दर प्रवेश करने पर एक बरामदे से होकर गुजरना पड़ता है। इस बरामदे की छत पर भी क्रमशः तीन छतरियाँ बनी हुई हैं। इनमें मध्य में बनी छतरी बड़ी व आकर्षक तरीके से निर्मित है। इन पर ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। इनकी मेहराबें साधारणतया निर्मित है। भारतीय वास्तुकला में 'ट्राबिएट' शैली के अनुसार भवन की छतों को तिरछी धरनों (बीम्स) द्वारा भरा जाता था जबकि मुस्लिम भवनों में 'आर्क्यूएट' शैली के अनुसार रिक्त स्थानों में मेहराबों के प्रयोग द्वारा छत को आधार प्रदान किया जाता था। मेहराबों के निर्माण में व्यापक रूप से 'गारे व मसाले' का प्रयोग किया जाता था। पर्सी ब्राउन का मानना है कि कुछ मुस्लिम मेहराबों को प्राचीन बौद्ध चैत्यों के सूर्य द्वार अथवा गवाक्ष की परम्परा के अनुरूप बनाये गये हैं।

कुतुब मस्जिद (दिल्ली) में सर्वप्रथम इस विशिष्ट मेहराब को बनाया गया जिस पर सर्पबेल का अंकन भी किया गया है।[67]

यहाँ से आगे बढ़ने पर बहुत बड़ा खुला आँगन आता है। इस आँगन के ठीक बीच में एक आयताकार बड़ा सा जल–कुण्ड बना हुआ है। यहाँ से आगे चलते ही सामने की ओर बड़े–बड़े बरामदेनुमा कक्ष बने हुए हैं जो यहाँ के मुख्य कक्ष हैं। इन्हीं में हर शुक्रवार को सामूहिक नामाज होती है जिसे जुमे की नमाज कहा जाता है।

इन कक्षों के ऊपर तीन गोलाकार गुम्बद मस्जिद की छत पर बने हुए हैं। इनमें प्रवेश करने के लिए छोटे–छोटे खिडकीनुमा द्वार हैं। ये मस्जिद मुगल स्थापत्य कला का बेजोड़ नमूना है। इसकी बनावट मुस्लिमों के प्रसिद्ध धार्मिक स्थल काबा की ओर है (जिसकी ओर मुँह करके मुस्लिम प्रार्थना करते हैं।) जामा मस्जिद से मोहर्रम के अवसर पर ताजिये निकाले जाते हैं जिसमें साम्प्रदायिक सौहार्द का परिचय देते हुए हिन्दू सम्प्रदाय के लोग भी शामिल होते हैं। ईद के अवसर पर मस्जिद को बहुत ही आकर्षक तरीके से सजाया जाता है, तथा सारी रात कव्वाली के स्वर से आस–पास का वातावरण आनन्दमय हो जाता है।

बैनी गुप्ता ने मस्जिद के जीर्णोद्धार के विषय में लिखा है– महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय जो कि महाराव किशोरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र विशनसिंह के वंशज थे जिन्हें राजकीय आज्ञा भंग करने के कारण राज्य सिंहासन से वंचित करके अन्ता की जागीर दे दी थी। राजवंश से निकट होने के कारण इन्हें महाराव शत्रुसाल ने गोद लिया था और अपना उत्तराधिकारी बनाया था।[68] इनके द्वारा कोटा की पुरानी इमारतों का जीर्णोद्धार करवाया गया था, जिसमें इनके द्वारा शाहाबाद की जामा मस्जिद का जीर्णोद्धार करवाया गया।[69]

पाद टिप्पणी

1. डी. एन. शुक्ल : प्रतिमा विज्ञान, लखनऊ, 1956, पृ. 154
2. भगवत शरण उपाध्याय : भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, नई दिल्ली, 1991, पृ. 10, वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला, लखनऊ, पृ. 212 व 337
3. भुवनदेवाचार्य : अपराजितापृच्छा, 115, 3–4
4. उमेश दत्त दीक्षित – दक्षिण भारत के मंदिर, 1996, पृ. 1
5. वही, पृ. 1
6. ओमप्रकाश टंडन –उत्तर भारत के मंदिर, 1987, पृ. 1
7. वही, पृ. 1
8. वही, पृ. 1
9. वही, पृ. 2
10. वही, पृ. 2
11. के.डी. वाजपेयी : भारतीय कला, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ. 50
12. महेशचन्द्र जोशी : युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृ. 164
13. वही, पृ. 164
14. रामनाथ : मध्यकालीन कलाएँ और उनका विकास, जयपुर, 1973, पृ. 32
15. विश्वंभरा : वर्ष 26, अंक 3, जुलाई–सितम्बर 1994, हिन्दी विश्वभारती अनुसंधान परिषद, नागरी भंडार, बीकानेर, पृ. 1
16. पं. भगवानदास जैन (अनु. व. सं.) : प्रासाद मंडन, जयपुर, 1963, अध्याय प्रथम, पृ. 2
17. वही, पृ. 3
18. वही, पृ. 2
19. आर. नाथ अग्रवाल : प्राचीन भारतीय अवशेष : एक अध्ययन, मध्यप्रदेश, 1998, पृ. 63

20. पं. भगवानदास जैन (अनु. व. सं.) : पूर्वोक्त, पृ. 56

21. वही, पृ. 56

22. मंडोवर वस्तुतः मंदिर का ऊपर उठता हुआ भाग है जो कि जगती से ऊपर की ओर उठती हुई दीवारें बनाता है। कई बार यह छज्जे की भांति बाहर की ओर निकला रहता है जिसे 'मेरूमंडोवर' कहा जाता है।

23. नाथ, आर. अग्रवाल : प्राचीन भारतीय अवशेष, मध्यप्रदेश, 1998, पृ. 65

24. ओमप्रकाश टंडन – उत्तर भारत के मंदिर, 1987, पृ. 3

25. वही, पृ. 3

26. वही, पृ. 3

27. दिनेश मांडोल – भारत की सांस्कृतिक विरासत, 2010, पृ. 197

28. वही, पृ. 197

29. नागेन्द्र प्रताप सिंह, 2005, पृ. 58

30. दिनेश मांडोल – भारत की सांस्कृतिक विरासत, 2010, पृ. 199

31. वही, पृ. 199

32. नागेन्द्र प्रताप सिंह, 2005, पृ. 58

33. दिनेश मांडोल – भारत की सांस्कृतिक विरासत, 2010, पृ. 199

34 वही, पृ. 200

35 नागेन्द्र प्रताप सिंह, 2005, पृ. 58–59

36 स्त्रोत – सच्चिदानंद सहाय – बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, फर. 1981

37 अतुल कुमार श्रीवास्तव, उत्तरी म.प्र. में शैव सम्प्रदाय और शैवाचार्य परम्परा, 2013, परिशिष्ट 11, पृ. 22–23

38. वही, पृ. 22–23

39. पीताम्बर शर्मा – बून्दी राज्य के प्रमुख देवालय, पृ. 40

40. वही, पृ. 40

41. वही, पृ. 40

42. वही, पृ. 40

43. श्रीमद्वाल्मीकीयं रामायणाम, सर्ग–48–49, पृ. 1684–87 टीकाकार–पण्डित रामतेज पाण्डेय

44. दिनेश मांडोल – भारत की सांस्कृतिक विरासत, 2010, पृ. 125
45. वही, पृ. 125
46. श्रीमद्वाल्मीकीयं रामायणाम, सर्ग–48–49, पृ. 1727 टीकाकार–पण्डित रामतेज पाण्डेय
47. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, 2009, पृ. 76
48. मन्दिर के लेखानुसार
49. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' – भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, 2009, पृ. 443
50. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, पृ. 19
51. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, 2009, पृ. 76
52. वही, पृ. 76
53. वही, पृ. 76
54. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, 2009, पृ. 90
55. मन्दिर के लेखानुसार
56. हरिओम प्रधान – हाड़ौती के तीर्थ, 1994, पृ. 23
57. डॉ. अतुल कुमार श्रीवास्तव, उत्तरी मध्यप्रदेश में शैव सम्प्रदाय और शैवाचार्य परम्परा, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, 2013, पृ. 43–44
58. प्रो. योगेशचन्द्र शर्मा, दैनिक नवज्योति, कोटा (राज.) 10 फर. 2010, पृ. 5
59. संक्षिप्त शिव पुराणाङ्क, कल्याण संख्या–1, वर्ष 36, पृ. 32
60. वही, पृ. 31
61. प्रो. योगेशचन्द्र शर्मा, दैनिक नवज्योति, कोटा (राज.) 10 फर. 2010, पृ. 5
62. वही, पृ. 5
63. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' – भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला. 2009, पृ. 441–442
64. वही, पृ. 390

65. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' – भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला. 2009, पृ. 389
66. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, द्वितीय संस्करण, 2010, पृ. 199
67. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' – भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला. 2009, पृ. 389
68. बेनी गुप्ता – राजस्थान का इतिहास, 2004, पृ. 137
69. वही, पृ. 144

अध्याय–3

पुरातन अभिलेख

(अ) परिचय :–

प्राचीन खण्डहर एवं मुद्राओं की भांति राजस्थान के इतिहास की जानकारी के लिए सबसे अधिक विश्वस्त इतिहास बताने वाला एक साधन अभिलेख हैं। जहाँ कई अन्य साधन मूक अथवा अस्पष्ट हैं वहाँ इतिहास के निर्माण में हमें अभिलेखों से बड़ी सहायता मिलती है। ये अभिलेख शिलाओं, प्रस्तर–पट्टों, भवनों या गुहाओं की दीवारों, मंदिरों के भागों, स्तूपों, स्तम्भों, मठों, तालाबों, बावड़ियों तथा खेतों के बीच गढ़ी हुई शिलाओं, मुद्राओं आदि पर बहुधा मिलते हैं।[1]

प्रस्तुत अध्याय में अभिलेखीय साक्ष्यों को शाहाबाद क्षेत्र के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए आधार बनाया गया है। अभिलेखीय साक्ष्य समकालीन होने के कारण ऐतिहासिक लेखन को वस्तुनिष्ठता प्रदान करने के साथ–साथ घटनाओं की प्रमाणिक जानकारी प्रस्तुत करते हैं। यह कई विवादास्पद ऐतिहासिक गुत्थियों के समाधान में सहायक होने के साथ ही इतिहास लेखन को एक ठोस आधार प्रदान करने वाले स्त्रोत के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं।

शाहाबाद क्षेत्र से प्राप्त विभिन्न प्रकार के अभिलेखों में प्रस्तर लेख, प्रतिमालेख, स्तम्भ लेख, वीर स्मारक–लेख, एवं कूप या बावड़ी लेख, आदि उल्लेखनीय हैं। इस क्षेत्र में अभिलेखों की प्राप्ति के आधार पर अभिलेखों के उत्कीर्णन के लिए प्रमुखतः प्रस्तरों के उपयोग की जानकारी मिलती है। अभिलेख प्रायः मंदिर के विभिन्न भागों जैसे–भित्ति में लगे प्रस्तरों, प्रवेश द्वार के सिरदलों, स्तम्भों व प्रतिमाओं के आसनों अथवा पादपीठों, दुर्गों की भित्तियों के प्रस्तरों, वीर स्मारक–स्तम्भों, पहाड़ की चट्टान तथा कूपों, बावड़ियों में लगे प्रस्तरों, आदि पर उत्कीर्ण मिलते हैं।

सम्भवतः अभिलेखों के उत्कीर्णन के लिए इनके प्रयोग की पृष्ठभूमि में किसी कार्य या घटना को शताब्दियों तक आने वाली पीढ़ियों के स्मरण में बनाए

रखने की भावना रही होगी। प्राप्त अभिलेखों में प्रस्तर पर उत्कीर्ण लेखों की संख्या अधिक है।

प्रस्तर लेखों से, मन्दिर निर्माण के उल्लेखयुक्त कुछ अभिलेखों में यहाँ के इतिहास से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं। इन प्रस्तर–लेखों में मन्दिर निर्माण के उल्लेख के साथ–साथ निर्माण करवाने वाले निर्माताओं, उनके वंश–वृक्षों, निर्माण की तिथि, दान तथा राजनैतिक व सांस्कृतिक गतिविधियों आदि की भी जानकारी मिलती है। कुछ मंदिर निर्माताओं के रूप में विभिन्न राजवंशों के शासकों के अलावा उनके राज्याधिकारियों व आर्थिक रूप से सम्पन्न श्रद्धालुओं का भी उल्लेख मिलता है।

इस क्षेत्र के मन्दिर निर्माण से सम्बन्धित अभिलेखों में शाहाबाद, रामगढ़, भण्डदेवरा आदि स्थानों से प्राप्त कुछ उल्लेखनीय प्रस्तर–लेखों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है–

1. सहजनदेव का अभिलेख :–

शाहाबाद दुर्ग से प्राप्त 17 पंक्ति के, श्री मुख संवत्सर 1250 के प्रस्तर–लेख में सहजनदेव द्वारा महारूण्डा (चामुण्डा) माता के मंदिर का निर्माण करवाने की जानकारी के साथ सहजनदेव के पिता राजराज धंधलदेव का भी उल्लेख मिलता है।

2. मलय वर्मा का अभिलेख :–

भण्डदेवरा नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में राजा मलयवर्मा द्वारा किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में अपने इष्ट महादेव के मंदिर का निर्माण करवाने के विषय में जानकारी मिलती है।[2]

3. तीर्थयात्रियों से सम्बन्धित अभिलेख :–

भण्डदेवरा मंदिर से पाए जाने वाले लेखों में से एक लेख फाल्गुन सुदी वि.सं. 1761 (1704 ई.) का प्राप्त हुआ है जिस पर यहाँ आने वाले दर्शनार्थियों तथा तीर्थ यात्रियों के नामों का वर्णन है।[3]

4. परमार राजाभोज का अभिलेख :–

एक अन्य लेख मालवा के परमार राजाभोज के कार्यकाल से सम्बन्धित है। यह लेख 21 पंक्तियों का है। लेखन शिल्प तथा विद्वानों के अनुमानुसार यह लेख ईसा की लगभग 12वीं शताब्दी का है।[4]

भण्डदेवरा से प्राप्त अन्य स्तम्भ लेखों का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत अध्याय में आगे किया गया है।

5. राव छत्रसिंह का अभिलेख :–

शाहाबाद से प्राप्त वि. सं. 1678 (28 जनवरी, 1622) की तिथि के लेख में राव छत्रसिंह द्वारा एक नमन (स्मारक) राजा के युवराज के लिए निर्माण कराने का उल्लेख मिलता है।[5]

6. जामा मस्जिद अभिलेख :–

शाहाबाद जामा मस्जिद से प्राप्त 1671 ई. के लेख से औरंगजेब के दारोगा मकबूल के निरीक्षण में मस्जिद निर्माण सम्बन्धी सूचना की जानकारी मिलती है।[6]

औरंगजेब कालीन एक अन्य लेख से स्थानीय करों की व्यवस्था तथा मुगलों की समयोचित नीति पर प्रकाश पड़ता है।[7]

प्रतिमालेख प्रायः प्रतिमाओं के आसनों अथवा पादपीठों पर अंकित मिलते हैं। प्रतिमा लेखों में अधिकांशतः प्रतिमा के प्रतिष्ठाकाल तथा प्रतिष्ठा करवाने वाले श्रद्धालुओं के नामों का उल्लेख होता है। इस क्षेत्र में प्राप्त प्रतिमा लेखों में सर्वाधिक लेख भण्डदेवरा से प्राप्त हुए हैं।

कूपों व बावड़ियों में लगे प्रस्तरों पर उत्कीर्ण अभिलेखों में शासकों, उनके राज्याधिकारियों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए जनहित के कार्यों के साथ ही शासकों के शासनकाल व उनके वंश–वृक्ष आदि की भी जानकारी मिलती है।

उपर्युक्त अभिलेखों के अलावा मंदिरों, प्रस्तरों पर शिल्पी चिह्न (मैसन मार्क्स) भी प्राप्त होते हैं। यह शिल्पी चिह्न इनके निर्माण कार्य में सहायक शिल्पियों व दानदाताओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

शाहाबाद क्षेत्र में प्राप्त इन अभिलेखीय साक्ष्यों से जनसामान्य के इतिहास से लेकर राजनीतिक इतिहास तक की विषय सामग्री प्राप्त होती है, जो इस क्षेत्र के इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने में सहायक है।

अभिलेखों का महत्व :–

पुरातत्व में उत्खनन का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके अन्तर्गत शिलालेख, मुद्रा व स्मारक आदि का परिगणन सामग्री के रूप में किया जाता है। ऐतिहासिक अन्वेषण में जहाँ अन्य प्रकार के साधन सत्यता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं, वहाँ अभिलेख ही इतिहास की कड़ियाँ खोलते हैं। धातुओं एवं पत्थरों पर उत्कीर्ण होने के कारण इनकी प्रामाणिकता में संदेह नहीं किया जा सकता है।

श्रीकृष्ण ओझा जी ने लिखा है कि अभिलेखों पर अंकित तथ्यों का विवरण बिना किसी आशंका के प्रयुक्त किया जा सकता है। पुस्तकों का विवरण तो क्षेपक अंशों के कारण उसी रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता है। सदियों से प्रचलित होने के कारण इतने बड़े देश में प्रक्षिप्त भाग को मौलिक अंश में मिलाया जाना असंभव नहीं है। शिलालेखों पर जो लिख दिया गया, वह अमिट है। इनसे तत्कालीन लेखन शैली का तो ज्ञान प्राप्त होता ही है, साथ ही उसके स्वरूप, भाषा शैली, आकार प्रकार के आधार पर उनका समय भी निश्चित किया जा सकता है।[8]

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए हमें अनेक सामग्रियां जुटानी पड़ती है। उनमें से प्रायः मूक सामग्रियां ही अधिक हैं जिनकी मूक भाषा में ही मुखर कथा सुननी पड़ती है। साथ ही वह भी इतनी उलझी गुत्थी है कि उसको इतिहास की कसौटी पर रखकर सुलझाना भी बहुत सरल नहीं है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि राजतरंगिणी जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ के अभाव तथा इतिहासकार की स्पष्ट वाणी की कमी में हमारा इतिहास ही अन्धकार में रख छोड़ा हो फिर भी हमारे पास इतने साधन हैं कि उसको जोड़कर हमारा सारा का सारा पुराना इतिहास बड़ी सरलता एवं वैज्ञानिकता से तैयार किया जा सकता है।

इसके मूल स्त्रोतों में एक पठनीय स्त्रोत हैं अभिलेख जो भारत भूमि में बिखरे पड़े हैं। आवश्यकता है इनको पढ़ने और समझने की। इनके द्वारा हमारा अतीत पुनः अपने वास्तविक रूप में जीवित हो उठता है तथा सत्य की अनवरत धारा

में अपना इतिहास सुनाने लगता है। यह अभिलेख भले ही राजाश्रित या व्यक्तिगत छाया में खुदे हों पर इनमें ऐसी ऐतिहासिक सामग्रियां संजोई गई हैं जो समकालीन हैं, सत्य है तथा विश्वसनीय है।[9]

कुछ तो हमारे इतिहास में ऐसे शासक व राजवंश हुए हैं जिनका ज्ञान भी हमको न होता यदि उसका अभिलेख न प्राप्त होता और यदि उनका ज्ञान होता भी अन्य स्त्रोतों से तो बड़े ही सांकेतिक रूप में।

शिवस्वरूप सहाय जी ने इस प्रकार का चेदिवंशीय शासक खारवेल का एक उदाहरण दिया है। यदि हाथिगुम्फा अभिलेख उपलब्ध न हुआ होता तो खारवेल इतिहास के लिए एक अज्ञात शासक मात्र ही बना रहता। दूसरे समुद्रगुप्त नामक गुप्तवंशी शासक की महती विजय से हम अनभिज्ञ रह जाते यदि हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति उपलब्ध न हुई होती। इसी प्रकार अशोक जैसे महान शासक की बहुमुखी कृतियों के अध्ययन का एकमात्र व्यवस्थित स्त्रोत उसके अभिलेख हैं। दूसरी ओर मौखरि, उत्तरगुप्त, राष्ट्रकूट, चोल आदि राजवंशों का इतिहास हमारे लिए अन्धकार की गर्त में ही पड़ा रहता यदि इनके अभिलेख प्राप्त न हुए होते। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमारे इतिहास के पृष्ठों पर बिखरे पड़े हैं।[10]

अभिलेखों द्वारा व्यक्तिगत चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। इसमें प्रसंगवत लेखक अपने शासक की कृतियों की चर्चा करते हुए उसके चरित्र का भी वर्णन करते पाये गये हैं। कई अभिलेखों का तो इस दृष्टि से एकान्तिक महत्व है क्योंकि अन्य किसी भी स्त्रोत से इस पक्ष पर प्रकाश ही नहीं पड़ता यदि ये अभिलेख न लिखे गये होते तो इतिहास उस राजा के चरित्र से पूर्णतया वंचित ही रह जाता। इस दृष्टि से हम हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति को ले सकते हैं। समुद्रगुप्त के इतिहास को जानने का यही अभिलेख एकमात्र साधन है। इसमें समुद्रगुप्त के गुणों की चर्चा की गई है कि वह विद्या में कविकुल गुरु था। शास्त्र तत्वार्थ भर्तुः था। संगीत में गुरु, नारद और तम्बरू के समान था तथा युद्ध में यम और कुबेर की तरह था। इसी प्रकार मेहरोली के ''चन्द्र'' अभिलेख तथा पुलकेशिन द्वितीय के एहोल अभिलेख से भी क्रमशः चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा चालुक्य–वंशीय शासक पुलकेशिन द्वितीय का ज्ञान प्राप्त होता है।[11]

ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के पूर्व भारतवर्ष में अभिलेख उत्कीर्ण कराने की प्रथा प्रचलित नहीं थी। कुछ विद्वानों ने बस्ती में प्राप्त पिपरहवा–कलशलेख और अजमेर में प्राप्त बड़ली–अभिलेख को पूर्व अशोककालीन बता कर उपर्युक्त कथन को खण्डित करने की चेष्टा की है। परन्तु यदि हम इन दो अभिलेखों को पूर्व अशोककालीन स्वीकार भी कर लें तो भी वे अपवाद के रूप में ही ग्रहण किये जा सकते हैं, नियम के रूप में नहीं। अभिलेखों की परम्परा तो अशोककाल से ही भारतवर्ष में सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित हुई दिखाई पड़ती है।[12]

इतिहास का निर्माण आकस्मिक रूप से प्राप्त किसी एक उल्लेख से नहीं हो सकता। एक साधन पर अवलम्बित हमारा ज्ञान बहुधा सन्दिग्ध रहता है। इतिहास को असन्दिग्ध पीठिका पर स्थापित करने के लिये अनेक स्थानों की आवश्यकता होती है। इतिहास निर्माण का यह प्रारम्भिक नियम है कि निश्चित सत्य के रूप में प्रतिपादित करने के पूर्व हमें अपने कथन की पुष्टि विविध साधनों से करनी चाहिए। पुरातत्व के द्वारा यह गुरु कार्य भली–भाँति सम्पादित हुआ है। उसने अनेक प्रचलित धारणाओं का खण्डन–मण्डन किया है।[13]

विमलचन्द पाण्डेय जी ने लिखा है, पतंजलि के महाभाष्य के कतिपय वाक्यों से ऐसा प्रतीत होता था कि पुष्यमित्र शुँग ने कोई यज्ञ किया था। परन्तु एक व्याकरण–ग्रन्थ के एक–दो वाक्यों के आधार पर इतना बड़ा निष्कर्ष निकालने में अनेक विद्वान संकोच कर रहे थे। ऐसी सन्दिग्ध परिस्थिति में पुरातत्व ने उनका शंका–समाधान किया। अयोध्या का अभिलेख मिला और उसने स्पष्ट स्वर में घोषित किया– 'द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य'। इस प्रकार पुरातत्व ने पतंजलि के महाभाष्य के कथन की पुष्टि करते हुए यह कहा कि पुष्यमित्र शुँग ने दो अश्वमेघ यज्ञ किये थे। यह पुरातत्व के समर्थक रूप का महत्व है।[14]

अभिलेख लिखने के अवसर :–

अभिलेखों के विषय विभिन्न और विविध हैं जिनमें राजवर्णन, वंशवर्णन प्रमुख हैं। इनमें अधिकांश राजाओं की उपलब्धियों का प्रशंसायुक्त वर्णन रहता है और इसीलिए इनको प्रशस्ति भी कहते हैं। उनमें कई में राजाओं के आश्रित या उनसे सम्बन्धित पुरुष तथा राजवंश के क्रम का विस्तृत वर्णन मिलता है। राजाओं, सामन्तों,

रानियों, मंत्रियों तथा अनेक धर्मपरायण व्यक्तियों द्वारा बनवाये गये मंदिरों, मठों, बावड़ियों आदि में लगे हुए लेखों में निर्माणकर्ता के वंश–क्रम तथा राजवंश का वर्णन विस्तार से होता है। कुछ ऐसे भी शिलालेख होते हैं जिनमें राजाज्ञा, विजय यज्ञ, खेतों की सीमा, वीर पुरुषों का चरित्र, सती होना, झगड़ों के समाधान, पंचायत के फैसले आदि घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं।[15]

कई लेख तो एक प्रकार से स्वतः काव्य हैं जिनके द्वारा हमें न केवल ऐतिहासिक घटनाओं का ही बोध होता है वरन् कई अज्ञात किन्तु प्रतिभा–सम्पन्न कवियों की काव्यशैली का बोध होता है। उनके द्वारा हम उस युग के बौद्धिक स्तर का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे शिलालेख व्यक्ति–विशेष की साहित्यिक रुचि के स्मृति चिह्न हो जाते हैं।

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने लिखा है अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज का रचा हुआ– 'हरिकेलि नाटक', उक्त राजा के राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नाटक और विग्रहराज या किसी दूसरे राजा के समय के बने हुए चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की शिलाओं में से पहली शिला–यह सब अजमेर (ढाई दिन का झोंपड़ा) से प्राप्त हुई है। सेठ लोलाक ने 'उत्तम शिखर पुराण' नामक जैन पुस्तक बीजोलिया के पास एक चट्टान पर वि.सं. 1226 में खुदवाई थी, जो अब तक सुरक्षित है। महाराणा कुंभा ने कीर्तिस्तम्भों के विषय की एक पुस्तक शिलाओं पर खुदवाई थी, जिसकी पहली शिला के प्रारम्भ का अंश चित्तौड़ में मिला है। महाराणा राजसिंह ने तैलंग भट्ट मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ से 'राजप्रशस्ति' नामक 24 सर्ग का महाकाव्य, जिसमें महाराणा राजसिंह तक का मेवाड़ का इतिहास है, तैयार करवाकर अपने बनवाये हुए राजसमुद्र नामक तालाब की पाल पर 25 बड़ी शिलाओं पर खुदवाकर लगवाया था जो अब तक वहाँ विद्यमान हैं।[16]

लगभग सभी शाखाओं के राजपूत राजाओं के या उनके समय के अनेक शिलालेख मिले हैं जो तिथि–क्रम निर्धारित करने तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाश डालने के लिए बड़े उपयोगी हैं। इसी प्रकार साहित्यिक तथा अन्य सामग्रियों को शुद्ध कराने अथवा पूर्ण कराने में इनकी सहायता असामान्य सिद्ध होती है। कई वीरों तथा साहित्यों के स्मारक घटनाचक्र को

समझने और युद्धों की तिथियों को निर्धारित करने में लाभप्रद प्रमाणित हुए हैं। इसी प्रकार इन अभिलेखों से राजस्थान तथा सुलतान और मुगल सम्राटों के राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों पर भी प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

(ब) शाहाबाद क्षेत्र के शिलालेख :–

इस क्षेत्र के प्रायः प्रत्येक ग्राम में अभिलेख मिलते हैं। अधिकांश शिलालेख सतियों और वीरों के स्मारक हैं। इनमें से किसी–किसी पर शासक का नाम भी होता है। इस प्रकार के शिलालेख इतिहास के लिए विशेष महत्व के नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसे शिलालेख भी सैकड़ों पाये जाते हैं जिनसे उस समय की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता हो। सबसे प्राचीन शिलालेख अन्ता के पास बड़वा गाँव में मिले हैं जो विक्रम सम्वत् 295 के मालूम होते हैं।[17] इसके पीछे पाँचवी, छठी, आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों के कुछ महत्वपूर्ण शिलालेख और तदुपरान्त प्रत्येक शताब्दी के सैकड़ों शिलालेख ऐसे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। दूसरी से चौदहवीं शताब्दी तक के लेखों का सम्बन्ध मौखरी, मौर्य, गुप्त, नाग, परमार, मेद आदि राजपूत वंशों से है। पन्द्रहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक के कुछ शिलालेख खींची और गौड़ राजपूतों के भी मिले हैं परन्तु ये विशेष उपयोगी नहीं हैं। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से अब तक के शिलालेखों का सम्बन्ध बूँदी और कोटा के नरेशों से तथा झाला जालिम सिंह से है और यह शिलालेख कोटा राज्य के इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी है।[18]

शाहाबाद के शिलालेख :–

शाहाबाद मध्य युग का एक महत्वपूर्ण नगर था। यहाँ से प्राप्त शिलालेख स्थानीय शासकों के साथ–साथ मुगल बादशाहों के भी हैं। अधिकांश शिलालेख मंदिरों, छतरियों व पत्थरों की शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। शोध–विषय की दृष्टि से उल्लेखनीय, ये शिलालेख शाहाबाद क्षेत्र की तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति के साथ शासकों की स्थापत्य कला में रुचि को भी प्रदर्शित करते हैं।

राजा जयगम के काल का शिलालेख :–

राजा जयगम (जगमणि) के काल का एक लेख माघ बदी 13, सोमवार वि.सं. 1678 (28 जनवरी, 1622 ई.) की तिथि का प्राप्त हुआ है। इस लेख में राव

छत्रसिंह द्वारा एक नमन (स्मारक) राजा के युवराज के लिये निर्माण कराने का विवरण है। इस युवराज ने अपने मामा रामसाही पंवार के उकसाने पर कुछ अनैतिक कार्य कर डाला था। अन्त में उसे अर्थात् युवराज को अपने किये पर पश्चाताप् हुआ और उसने आत्महत्या कर डाली।[19]

औरंगजेब के शासनकाल से संबंधित शिलालेख :–

मुगल बादशाह औरंगजेब के शासनकाल का हिन्दी भाषी शिलालेख प्राप्त हुआ है। यह लेख द्वि–भाषी है। इस लेख की एक भाषा हिन्दी एवं दूसरी भाषा फारसी है और अंकन नसतालीक लिपि में कराया गया है। इस लेख में कस्बे में रहने वाले ब्राह्मणों तथा महाजनों को संबोधित किया गया है। इसमें नूर मोहम्मद का नाम भी अंकित है। इस लेख का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है।[20]

ऐतिहासिक महत्व :–

उपर्युक्त शिलालेख मुगलकाल के प्रथम हिन्दी शिलालेख व हाड़ौती अंचल का प्रथम द्विभाषी शिलालेख है साथ ही मुगल साम्राज्य की परंपरागत नसतालीक कला शैली का हाड़ौती में प्रथम प्रस्तुतीकरण भी दर्शाता है।

शाहाबाद की जामा मस्जिद का फारसी शिलालेख :–

बारां से लगभग 75 कि.मी. की दूरी पर पूर्व दिशा में बारां से शिवपुरी की ओर जाने वाले राजमार्ग पर पहाड़ों के मध्य प्राचीन नगर शाहाबाद स्थित है। इस नगर में फारसी भाषा में लिखे हुए कुछ प्रस्तर शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे मध्यकाल में शाहाबाद नगर से मुगलों के सम्बन्ध की जानकारी मिलती है।

जामा मस्जिद शिलालेख (1671–72 ई.) :–

शाहाबाद के मध्य में स्थित जामा मस्जिद के प्रवेश द्वार के ऊपर एक फारसी भाषा का शिलालेख अंकित है।

मूल पाठ[21] :–

''ई मस्जिद व अहतमाम दारोगा मकबूल ब अहद आलमगीर औरंगजेब तामीर याफ्त।''

अनुवाद :–

इस मस्जिद का निर्माण कार्य दरोगा मकबूल के निरीक्षण में बादशाह औरंगजेब आलमगीर के द्वारा कराया गया।

ऐतिहासिक महत्व :–

यह शिलालेख औरंगजेब के शासन काल का है इसका निर्माण हिजरी सन् 1082 (1671–72 ई.) है। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि शाहाबाद दिल्ली शासन के अन्तर्गत आता था।

नाहरगढ़ दुर्ग का फारसी शिलालेख :–

बारां जिले की किशनगंज तहसील में नाहरगढ़ नामक एक छोटा सा कस्बा स्थित है। इस स्थान पर मुस्लिम शासक द्वारा निर्मित शानदार दुर्ग विद्यमान है। यह दुर्ग दिल्ली के लाल किले के परकोटे की नकल है। दुर्ग के प्रवेश द्वार के ऊपर दीवाल के प्लास्टर में एक फारसी भाषा का लेख प्राप्त हुआ है।

अनुवाद :–

इस दुर्ग का निर्माण कुतुबुद्दीन ने 20 जमादी उस्मानी, 1090 हिजरी (1678 ई.) में कराया। ज्ञातव्य है कि कुतुबुद्दीन नाहर सिंह राठौड़ का पुत्र था तथा किशनगंज कस्बे का स्वामी था। बाद में इसने इस्लाम ग्रहण कर लिया था।[22]

ऐतिहासिक महत्व :–

इस लेख से यह ज्ञात होता है कि नाहरगढ़ का शासक कोटा राज्य से पृथक हो गया और मुस्लिम धर्म स्वीकार कर अपने को मुगल सत्ता का मनसबदार घोषित कर दिया तथा उसने स्वतन्त्र रूप से शासन करना प्रारम्भ कर दिया।[23]

शाहाबाद दुर्ग का लेख :–

शाहाबाद दुर्ग से प्राप्त एक अभिलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वर्तमान में यह पुलिस उप अधीक्षक आवास, शाहाबाद में एक चबूतरे पर स्थापित कर दिया गया है। इस अभिलेख में 17 पंक्तियाँ लिपिबद्ध है। अभिलेख का प्रारम्भिक भाग लगभग अपठनीय है किंतु इसका लगभग अन्तिम भाग पठनीय है, जो निम्नवत् है–

''1250 श्री मुख..... संवत्सरो माद्यमासो गुरु दिवसे एकादशी... तिथि।।

..... विरूदावली विराजमानेन रतन गिरि दुर्गे विनिर्मते धधेड़े वंश का उपगोत्रे।
श्रीमत् धंधल देव राजराजश्रीः सहजनदेवेम्। महा रूंडायाः कुल देवी
..... महिदावौड ग्रामे स्थापना कृता।। शुभम।। लिखिता... कृता् पंडित कीर्तिवरेण।।''

पठनीय अभिलेख का अनुवाद[24] निम्न प्रकार है–

''1250 श्री मुख संवत्सर में एकादशी गुरुवार के दिन रत्नगिरि दुर्ग में विराजमान धंधेड उपगोत्र के श्रीमान् महाशक्तिशाली राजराज धंधलदेव के पुत्र श्री सहजनदेव द्वारा महारूण्डा (चामुण्डा) कुल देवी की महिदावौड ग्राम में स्थापना करायी गई। कल्याण हो। इस लेख को पण्डित कीर्तिवर द्वारा लिखा गया।''

ऐतिहासिक महत्व :–

इस प्रकार उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि शाहाबाद दुर्ग का प्राचीन नाम रत्नगिरि दुर्ग था और धंधेड उपगौत्र के श्री सहजनदेव द्वारा महारूण्डा (चामुण्डा) देवी की स्थापना करायी गयी जो उनकी कुलदेवी थी। दुर्ग की बस्ती का नाम महिदावौड ग्राम रहा होगा, अथवा इस ग्राम से सम्बद्ध रहा होगा। दुर्ग की स्थापना 1250 श्री मुख संवत्सर में की गयी थी।

शाहाबाद का लेख (1679 ई.) :–

यह लेख प्रारम्भ में कोतवाली के निकटस्थ एक चबूतरे में मिला जिसे तहसील के दफ्तर में सुरक्षित कर दिया गया। यह लेख द्विभाषी है और खण्डित अवस्था में है।[25] इसमें वर्णित है कि कस्बे के महाजन, व्यापारी और ब्राह्मणों ने शाही दरबार में उपस्थित होकर यह फरियाद की थी कि उनसे अपनी अचल सम्पत्ति पर सायर (कर) की वसूली की जा रही है। इस अभ्यर्थना पर औरंगजेब ने यह तगदीर जारी की, कि इस प्रकार का सायर लेना अनुचित है अतएव वह उनसे न लिया जाये।[26]

इस हुक्म के तहत जागीरदार रंधुल्लाखाँ ने मुत्सद्दियों को यह आदेश दिया कि वे इस प्रकार की सायर वसूल न करें। इसका फल यह हुआ कि आधी रकम, जकात, बँटाई, खूत–तलाई, कोतवाली आदि से वसूल की गई और आधी रकम देने वाले की मर्जी पर छोड़ दिया गया जिसे वे या तो न दें या जमा करावें। परन्तु पैदाइश, विवाह आदि पर लिये जाने वाले करों को माफ कर दिया गया। अन्त में उन

लोगों को (हिन्दू एवं मुसलमान) राम तथा अल्लाह के श्राप का भाजन बतलाया गया जो इसकी तामील नहीं करेंगे। यह लेख स्थानीय करों की व्यवस्था पर तथा मुगलों की समयोचित नीति पर प्रकाश डालता है।[27]

रामगढ़ के लघु शिलालेख :–

बारां जिले में स्थित शाहाबाद से लगभग 55 कि.मी. की दूरी पर रामगढ़ नामक एक प्राचीन कस्बा स्थित है। प्राचीन समय में इसका नाम ''श्रीनगर'' था। रामगढ़ के निकट स्थित जंगल में एक प्राचीन शिव–मंदिर 'भण्डदेवरा' नामक स्थित है जो ईसा की दसवीं शताब्दी की निर्माण रचना है। वर्तमान में यह मंदिर जर्जर अवस्था में है, परन्तु पहाड़ी से घिरे हुए जंगल के बीच भण्डदेवरा नामक यह शैवमंदिर जीर्णावस्था में अब तक खड़ा है उससे पता चलता है कि श्रीनगर दशवीं शताब्दी के आसपास एक समृद्ध नगर होगा।[28]

भण्डदेवरा नामक इस मंदिर में कुछ लेख पाये गये है–।

राजा मलयवर्मा का शिलालेख (10वीं शताब्दी ई.) :–

भण्डदेवरा नामक मंदिर से एक संस्कृत भाषा का खंडित शिलालेख प्राप्त हुआ है। वर्तमान में यह शिलालेख कोटा के राजकीय पुरातत्व संग्रहालय में संग्रहित है। लेखन–शिल्प की दृष्टि से यह लेख ईसा की लगभग 10वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। इस लेख में वर्णित है कि राजा मलयवर्मा ने किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में अपने इष्ट महादेव के इस मंदिर का निर्माण करवाया।

मूल पाठ [29]

'' ..... श्रीमलय देव वर्मण..... विजयोल्लास–विनभ्रस्य सहस्त्रा वधि परास्त..... भक्ति, कीर्ति मूर्तिः।''

राजा त्रिशास वर्मा का शिलालेख (1162 ई.) :–

भण्डदेवरा के शिव–मंदिर के पीछे की ओर स्थित एक स्तम्भ पर राजा त्रिशास वर्मा का वि.सं. 1219 (1162 ई.) का लेख अंकित है। यह लेख इस मंदिर के जीर्णोद्धार से संबंधित है।

मूल पाठ[30]

'' संवत 1219 ..... त्रिशास वर्मा ..... मेड़वंशीय ..... महाराज श्रीमती सिंहस्य।''

परमार राजा भोज का शिलालेख (12वीं शताब्दी ई.) :–

भण्डदेवरा शिव–मंदिर से एक अन्य खंडित एवं अपूर्ण लघु लेख प्राप्त हुआ है। यह लेख मालवा के परमार राजा भोज के कार्यकाल से सम्बन्धित है, जिसकी भाषा संस्कृत है। यह लेख 21 पंक्तियों का है तथा वर्तमान में कोटा के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित है। लेख के प्रारम्भ में महालक्ष्मी की स्तुति की गई है। 15वीं पंक्ति में परमार नाम, 16वीं पंक्ति में भोज का नाम, तथा 21वीं पंक्ति में वि. सं. ..... (अपाठ्य) अंकित है। लेखन–शिल्प की दृष्टि से विद्वानों का अनुमान है कि यह लेख ईसा की लगभग 12वीं शताब्दी का होना चाहिए।[31]

भण्डदेवरा मंदिर की मूर्ति का लेख (1175 ई.) :–

भण्डदेवरा शिव–मंदिर में स्थित यम की मूर्ति के चरणों पर इसकी प्रतिष्ठा की तिथि अंकित है। यह तिथि संवत् 1232 (1175 ई.) स्पष्ट ही दिखलाई पड़ती है।

रामगढ़–दुर्ग के लघु शिलालेख :–

रामगढ़ के निकट स्थित पहाड़ी पर एक जीर्ण–शीर्ण सा दुर्ग विद्यमान है। इस दुर्ग के अन्दर–बाहर प्राचीन समय के अनेक हिन्दू एवं जैन मंदिरों के भग्नावशेष विद्यमान है जिनमें कुछ इस प्रकार है।

प्रतिमा शिलालेख :–

रामगढ़ की पहाड़ी पर स्थित इस दुर्ग की उत्तर दिशा में विद्यमान एक जैन प्रतिमा पर अंकित लघु लेख में संस्कृत भाषा में व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं। इस लेख का रचनाकाल ज्येष्ठ सुदी 15, वि.सं. 1211 (1154 ई.) अंकित है।

मूल पाठ[32]

''आचार (य) माणिक्य देव, लक्ष्मी धर, सूत्रधार वालिम।''

विष्णु मूर्ति शिलालेख (1166 ई.) :–

इस ऐतिहासिक किले के भीतर विद्यमान विष्णु भगवान की मूर्ति पर एक लेख संस्कृत भाषा का माघ सुदी 5 विक्रम संवत् 1223 (1166 ई.) तिथि वाला प्राप्त हुआ है। लेख में ''सूत्रधार वच्चू के पुत्र मदम द्वारा स्तुति करने का वर्णन है।[33]

जैन प्रतिमा का शिलालेख (1167 ई.) :–

एक दालान के बाहर प्रतिष्ठित एक जैन मूर्ति के नीचे संस्कृत भाषा तथा देवनागरी लिपि में एक खंडित लेख मंगलवार चैत्र सुदी 14 वि.सं. 1224 (4 अप्रेल 1167 ई.) की तिथि वाला प्राप्त हुआ है। इस लेख में एक व्यक्ति द्वारा स्तुति करने का वर्णन है। लेख में व्यक्ति का नाम अस्पष्ट है। लेख में आगे आचार्य माणिक्य देव और साधु कालीचन्द पुत्र साधु देल्हा मेदपाट निवासी तथा एक अन्य व्यक्ति महिचन्द्र का नाम भी अंकित है।[34]

शिव–पार्वती मूर्ति का शिलालेख (1174 ई.) :–

पहाड़ पर चढ़ते समय चढ़ाई पर एक मेहराब वाली दीवाल के अन्दर प्रतिष्ठित एक शिव–पार्वती की मूर्ति के नीचे एक संक्षिप्त लेख संस्कृत भाषा तथा देवनागरी लिपि में लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। लेख की तिथि सोमवार बैशाख सुदी 6 वि.सं. 1231 (28 अप्रेल 1174 ई.) अंकित है। लेख में किसी व्यक्ति द्वारा स्तुति करने का उल्लेख है। व्यक्ति का नाम अस्पष्ट है इसके अतिरिक्त इस लेख में साधु दुल्हा पुत्र नायक सहदेव पोरा दन्यवय निवासी का भी नाम अंकित है।[35]

स्तम्भ लेख (1175ई.) :–

दुर्ग के बाहरी और उत्तर दिशा में विद्यमान जैन मूर्ति के समीप स्थित एक स्तम्भ पर वि.सं. 1232 (1175 ई.) की तिथि का एक लघु लेख अंकित है। लेख की भाषा संस्कृत है। इस शिलालेख में कमल देव की निषेधिका का निर्माण कराने का वर्णन है। यह कमल देव मणदेव के शिष्य थे। इस निषेधिका का निर्माण जल, पदमसिंह और महाधर नामक व्यक्तियों ने करवाया था। इसके आगे पंडित सोमदेव शिष्य कर्मदेव का नाम भी अंकित है। यह सभी तपगच्छ से संबंधित थे। लेख में उनके गुरु का नाम नष्ट हो गया है।[36]

मंदिर लेख :–

यहां स्थित मंदिर में एक दीवार के प्लास्टर पर एक लेख अंकित है। लेखन–शैली की दृष्टि से लगता है कि यह लेख ईसा की लगभग 13वीं शताब्दी का प्रतीत होता है। इस लेख में दृष्टव्य है कि यह मूर्ति दण्डनायक सोलक की है।

मानक–मनेश्वर स्तम्भ का शिलालेख :–

मानक–मनेश्वर के गर्भगृह के आधार या खम्भे पर एक लेख आषाढ़ बदी 3, वि.सं. 1269 (1212 ई.) का अंकित है। लेख की भाषा अपभ्रंश–संस्कृत है। इस लेख में महाराजा मालसिंह का नाम अंकित है। इसके अतिरिक्त मालावर्मा, रालाहिका, तथा रानी का नाम भी अंकित है।[37]

मंडप–स्तम्भ :–

उपर्युक्त वर्णित मंदिर के संबंध में स्थित एक स्तंभ पर ईसा की 13वीं शताब्दी में संस्कृत भाषा का लेख प्राप्त हुआ है। इस लेख में कुछ तीर्थ यात्रियों के नामों का उल्लेख है।

''अच्यान्ताधज जोगी और ब्रह्मनाथ जोगी।''

इसी मंदिर के मंडप में अन्य लेख चैत्र सुदी नवमी रविवार वि.सं. 1652 (28 मार्च 1576 ई.) का अपभ्रंश–भाषा में लिखा प्राप्त हुआ है। लेख में कुवर रामससाही की मृत्यु का उल्लेख है। इस लेख को स्वर्णकार नामक व्यक्ति ने अंकित किया है।

उक्त मंदिर में कार्तिक सुदी 11 वि.सं. 1695 (1638ई.) का स्थानीय भाषा में लिखा हुआ लेख पाया गया है। यह लेख खंडित है तथा भद्दे ढंग से लिखा गया है। इस लेख की तीसरी पंक्ति में सिर्फ मोहन नाम ही पठनीय है।

मंदिर के मंडप पर पाये जाने वाले लेखों में से एक और लेख स्थानीय भाषा में भद्दे ढंग से लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। इस लेख की तिथि ही पठनीय है। लेख का रचनाकाल फाल्गुन सुदी वि.सं. 1761 (1704 ई.) बताया गया है।

स्तम्भ पर अंकित एक ऐसा भी लेख प्राप्त हुआ है जिसमें दर्शनार्थियों तथा तीर्थ यात्रियों के नामों का वर्णन है। यह नाम देवनागरी लिपि में लिखे गए हैं

तथा लेख शिल्प से लगता है कि यह लेख ईसा की 15वीं शताब्दी का है। लेख में नाम इस प्रकार अंकित है।

1. कालिया	2. विवाण	3. मल्हान	4. मल्हान	5. विवाण
6. सांठादेव	7. सांठादेव	8. सांठादेव	9. पदम	10. केलहिया
11. जलहा	12. सतकालिया	13. केलाड़िया	14. हाड़ादेव	15. प्राणसिंह
16. सलखनदे	17. विवाण	18. पदम	19. मुनिबल्हु	20. सलक्षणा
21. नाना	22. साहेदाह	23. विवाण	24. विवाण	25. नसिया
26. सकलहा	27. केसव	28. अलहाण।[38]		

प्रतिमा शिलालेख :–

रामगढ़ दुर्ग के उत्तर में खड़ी हुई जैन तीर्थंकर की प्रतिमा के नीचे ईसा की 13वीं शताब्दी का संस्कृत भाषा में लिखा हुआ शिलालेख प्राप्त हुआ है। इस लेख में स्तुति का वर्णन है। इस लेख में कुछ लोगों के नाम भी दिये गये हैं।

''आल्हा पुत्र राय पुत्र लखम देव ठाकुर हुन्दा, देल्हु, दामादर और कुलिचन्द्र।''

इसी पहाड़ी के एक छपरे में पड़ी हुई जैन प्रतिमा पर स्थानीय भाषा में लिखा गया लेख प्राप्त हुआ है। इस लेख में भी कुछ व्यक्तियों के नाम अंकित है। लेख की तिथि फाल्गुन वदी 1 वि.सं. 1237 (1180 ई.) अंकित है।[39]

पाद टिप्पणी

1. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत (पुरातत्व भाग–1), पृ. 41
2. कार्पस इन्सक्रप्शन इन्डीकेरम–जिल्द–1, पृ. 31–32 और परिशिष्ट संख्या 6
3. एस.आर. खान – हाड़ौती के बोलते शिलालेख 1998, पृ. 266
4. एनुअल रिपोर्ट, इण्डिया एपिग्राफिक 1962–63, पृ. 147
5. वही, पृ. 42
6. एस.आर. खान – हाड़ौती के बोलते शिलालेख 1998, पृ. 329
7. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत (पुरातत्व भाग–1), पृ. 230
8. श्रीकृष्ण ओझा – भारतीय पुरातत्व, पृ. 25
9. शिवस्वरूप सहाय–भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, 2006, पृ. 40
10. वही, पृ. 41
11. वही, पृ. 41
12. विमल चन्द्र पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–1, पृ. 18
13. वही, पृ. 18
14. वही, पृ. 18
15. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत (पुरातत्व भाग–1), पृ. 41
16. वही, पृ. 42
17. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, 2008, पृ. 3
18. वही, पृ. 3
19. एनुअल रिपोर्ट, इण्डिया एपिग्राफिक 1962–63, पृ. 42
20. वही, पृ. 42
21. एस.आर. खान – हाड़ौती के बोलते शिलालेख 1998, पृ. 329
22. वही, पृ. 331
23. वही, पृ. 331
24. यह अनुवाद श्रीमान भूपेन्द्र भार्गव, व्याख्याता संस्कृत, अ.रा.ब.जै. विश्वभारती स्नातकोत्तर महाविद्यालय छबड़ा ने मेरे लिए किया।
25. गोपीनाथ शर्मा –राजस्थान के इतिहस के स्त्रोत, पुरातत्व भाग–1, पृ. 230

26. वही, पृ. 230, एच.सी. जैन एवं नारायण माली– राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लोपीडिया, जनवरी 2012, पृ. 27–28
27. गोपीनाथ शर्मा –राजस्थान के इतिहस के स्त्रोत, पुरातत्व भाग–1, पृ. 230
28. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, 2008, पृ. 19
29. कार्पस इन्सक्रप्शन इन्डीकेरम–जिल्द–1, पृ. 31–32 और परिशिष्ट संख्या 6
30. वही, पृ. 31–32 और परिशिष्ट संख्या 6
31. एनुअल रिपोर्ट, इण्डिया एपिग्राफिक 1962–63, पृ.147
32. एनुअल रिपोर्ट एपिग्राफिक 1971, पृ. 109
33. वही, पृ. 109
34. वही, पृ. 109
35. खान, एस.आर – हाड़ौती के बोलते शिलालेख 1998, पृ. 266
36. वही, पृ. 266
37. वही, पृ. 266
38. वही, पृ. 267
39. वही, पृ. 267

अध्याय–4

पुरातन किले एवं अन्य पुरातात्विक स्थल

पुरातन दुर्ग : एक परिचय :–

दुर्ग रचना वस्तुतः स्थापत्य कला की एक उत्कृष्ट विद्या है जो 32 प्रमुख भारतीय विद्या के ''प्राकार शास्त्र'' के अन्तर्गत सम्मिलित है। भारतीय स्थापत्य की 32 मुख्य विद्या के अन्तर्गत् कृषि शास्त्र, जल शास्त्र, खनि शास्त्र, नौका शास्त्र, रथ शास्त्र, अग्नियान शास्त्र, वैश्म शास्त्र, प्राकार शास्त्र व नगर रचना शास्त्र सम्मिलित है। प्राकार शास्त्र के अन्तर्गत दुर्ग विद्या, कूट विद्या, आकार विद्या व युद्ध विद्या शामिल है। इसके अन्तर्गत दुर्ग–निर्माण, स्थापत्य के प्रमुख 8 अंगों में से अन्तिम अंग में सम्मिलित है। स्थापत्य के 8 प्रमुख अंगों में वास्तु–पुरुष अथवा वकल्पन, पुर निवेश, प्रासाद, ध्वाजोच्छिति राजवेश्म, जनभवन, यज्ञवेदि एवं राज शिविर सम्मिलित है। इनमें से अन्तिम अंग राजशिविर के तहत् विनिवेश व दुर्ग रचना आते हैं।

प्राचीन युद्ध परम्परा तथा यहाँ की भौगोलिक स्थिति के कारण उत्तर भारत में तथा विशेषकर राजस्थान में दुर्गों का अत्यधिक महत्व रहा है।[1] इस सम्बन्ध में प्राचीन मान्यता है कि गढ़, गढ़ी, किला या दुर्ग वह साधन है जिसमें रहने से गढ़पति को अपनी आत्मरक्षा का बहुत भरोसा रहता है और उसमें रहते हुए उसे बलवान शत्रु भी सहसा हरा नहीं सकते। ऐसा भरोसा बिलवासी या गुहानिवासी सामान्य जीवों को भी होता है। अतः दुर्ग निर्माण की परम्परा हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है जिसका प्रमाण हमारे धर्म एवं नीतिशास्त्र के ग्रन्थ हैं, जिनमें वास्तु शास्त्र के अन्तर्गत दुर्ग के रचना शिल्प तथा उनके विविध भेदों का भी विशद विवेचन किया गया है।

मुख्यतः एक दुर्ग को अथवा गढ़ को यदि सामान्य शब्दों में व्यक्त किया जाए तो वह स्थान जो कि मजबूत परकोटे से घिरा हो, गहरी परिखा अथवा खाई से युक्त हो व अनेक विशाल पिरोल (विशाल दरवाजे) से सज्जित हो, दुर्ग कहलाता है। विश्व का सभ्य मानव ऐतिहासिक काल के आरम्भ के साथ ही दुर्ग निर्माण की विधि से परिचित हो चुका था।[2] भारत में भी विश्व के अन्य देशों की भांति ये परम्परा शुरू

हो चुकी थी, जबकि दुर्ग के आरिम्भक रूप में गांव की चार–दीवारी अथवा परकोटे बनाए जाने लगे थे। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक आर्य व दासों ने आत्मरक्षा के लिए किलो का निर्माण करवाया जिन्हें 'पुर' कहा जाता था। इन पुरों को गोमती कहा जाता था।

ये किले पत्थर आदि कड़े और टिकाऊ साधनों से बनाए जाते थे। वस्तुतः पुर व गढ़ एक–दूसरे के पर्यायवाची थे जो कि गांव अथवा कस्बे के परकोटे को व्यक्त करते थे। सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय इन परकोटों से घिरे हुए ग्राम अथवा कस्बों का उल्लेख प्राप्त होता है। शैशुनागों के शाासनकाल में पांचवीं, छठी सदी ई. पू. में प्रमाणतः किलों का निर्माण हुआ।[3] यद्यपि इन किलों के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य था शत्रुओं से रक्षा, तथापि जंगली जानवरों, विदेशी आक्रमणकारियों, चोर लुटेरों से रक्षा हेतु भी किलों का निर्माण किया जाता था।

दुर्ग निर्माण के सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय साहित्यों प्रमुखतः धर्म एवं नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में दुर्ग रचना शिल्प तथा उनके विविध भेदों का विस्तृत विवेचन है। रामायण (युद्ध काण्ड) में चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख है।

नादेयं पार्वतं वान्यं क्रत्रिम च चतुर्विधम्।
अर्थात् लंका में नदी दुर्ग, गिरी दुर्ग, वन दुर्ग और कृत्रिम दुर्ग हैं।

जबकि अयोध्या काण्ड में राम ने 'पंचवर्ग' का उल्लेख किया है।[4] इसमें राम पंचवर्ग का उल्लेख करते हैं– जल दुर्ग, गिरी दुर्ग, वन दुर्ग, ईरिण दुर्ग व धन्व दुर्ग। ईरिण दुर्ग जहां किसी प्रकार की खेती नहीं होती तथा बालू से भरी भूमि को 'धन्व' कहा जाता है। महाभारतमें 6 प्रकार के दुर्गों का विवरण है।[5]

धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, गिरी दुर्ग तथैव च।
मनुष्य दुर्ग, जल दुर्ग, वन दुर्ग च तानिष्ट्।।

अर्थात् धन्व दुर्ग – वह जिसके चारों ओर बालू का घेरा हो।

मही दुर्ग – समतल जमीन के अन्दर बना हुआ किला।

गिरी दुर्ग – पर्वत शिखर पर बना किला।

फौजी किला मनुष्य दुर्ग है।

जल दुर्ग – जिसके चारों ओर जल का घेरा हो।

वन दुर्ग – कंटीले वनादि से घिरा दुर्ग।

कौटिल्य ने दुर्गों के निर्माण एवं उनमें से किसी एक में राजधानी बनाने के विषय में विस्तार से लिखा है। उन्होंने चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है–

(1) औदिक दुर्ग :– उदक जल को कहते हैं अतः औदक दुर्ग का अर्थ है–जल दुर्ग। अर्थात् जो जल से सुरक्षित व द्वीप सा हो तथा जिसके चारों ओर जल हो। राजस्थान का गागरोण दुर्ग बहुत कुछ इसी कोटि का है।

(2) पार्वत दुर्ग :– जो किसी उच्च गिरि श्रृंग या पर्वत पर अवस्थित हो तथा जिसके चारों ओर श्रेणियां हो। राजस्थान के अधिकांश प्रमुख दुर्ग इसी कोटि में आते हैं।

(3) धान्वन दुर्ग :– धन्व संस्कृत में मरूस्थल को कहते हैं। अतः धान्वन दुर्ग वह होता है जो मरूस्थल में बना हो तथा उसके इर्द गिर्द झाड़–झंखाड़ तथा ऊबड़–खाबड़ भूमि हो। जैसलमेर का दुर्ग इसी कोटि में रखा जा सकता है।

(4) वन दुर्ग :– वन दुर्ग वह होता है जो सघन बीहड़ वन में बना हो तथा जिसके चारों ओर दलदल या सघन कांटेदार झाड़ियां हो। राजस्थान में मेवाड़ संज्ञक दुर्ग बहुत कुछ इसी कोटि में माने जा सकते हैं।

कौटिल्य का कहना है कि प्रथम दो प्रकार के दुर्ग जन संकुल स्थानों की सुरक्षा के लिये हैं और अन्तिम दो प्रकार जंगलों की रक्षा के लिये है।[6]

नरपतिजयचर्या :– में आठ प्रकार के किले बताये हैं उनमें (1) पहला 'धूलकोट' मिट्टी का होता है (2) दूसरा 'जल कोट' जलपूर्ण खाड़ी आदि से घिरा होता है। (3) तीसरा 'नगर कोट' जन समूह से भरा हुआ रहता है (4) चौथा 'गिरिगह्वर' गुफा के रूप में बनता है (5) पांचवा 'गिरी कोट' पर्वतीय (पहाड़ी) परकोटे से घिरा रहता है (6) छठा 'डामरकोट' डमरू की आकृति में बनता है। (7) सातवां विषमभूमि उबड़–खाबड़ भूमि का होता है और (8) आठवां विषमाख्य टेढ़ी–बांकी सुरंगों से युक्त होता है।

विष्णु धर्मसूत्र में दुर्गों के छः प्रकार बताये हैं –

(1) धान्व दुर्ग :– जल विहिन, खुली भूमि पर, पांच योजन के घेरे में।

(2) मही दुर्ग :– (स्थल दुर्ग) प्रस्तर खण्डों या ईंटों से निर्मित प्रकारों वाला, जो 12 फुट से अधिक चौड़ा तथा चौड़ाई से दुगुना ऊँचा हो।

(3) वार्क्ष दुर्ग :– जो चारों ओर से एक योजन तक कटीलें एवं लम्बे–लम्बे वृक्षों, कटीले लता, गुल्मों एवं झाड़ियों से युक्त हो।

(4) जल दुर्ग :– चारों और जल से आवृत।

(5) नृदुर्ग :– जो चतुरंगिनी सेना से चारों ओर से सुरक्षित हो।

(6) गिरि दुर्ग :– पहाड़ों वाला दुर्ग जिस पर कठिनाई से चढ़ा जा सके और जिसमें केवल एक ही संकीर्ण मार्ग हो।

मानसोल्लास में प्रस्तरों, ईटों एवं मिट्टी से बने अन्य तीन प्रकार जोड़ कर 9 दुर्गों का उल्लेख किया है।

मनुस्मृति के अनुसार जो देश प्रचुर धान्यादिक से सम्पन्न हो, जहां धार्मिक लोग बसते हों, निरोग आदि से निरूपद्रव और रमणीय स्थान, जहां आसपास के रहने वाले लोग विनीत हो, जहां सुलभ जीविका हो, ऐसे देश में राजा को निवास करना चाहिए। धनुदुर्ग (मरूवेष्टित), महीदुर्ग (पाषाण खण्ड वेष्टित), जल दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, नृदुर्ग या गिरि दुर्ग का आश्रय लेकर नगर का वास करें–

धन्व दुर्ग महीदुर्ग मब्दुर्ग वार्क्षमेव वा।
नृदुर्ग गिरिदुर्ग वा समाश्रित्य वसेत्पुरम।।

पूर्वोक्त छः प्रकार के किलों में से प्रयत्न करके गिरि दुर्ग का ही आश्रय करें, इन सभी दुर्गों में अधिक गुणों से युक्त होने के कारण गिरिदुर्ग की अपनी विशेषता है। प्रथम तीन दुर्गों में (यथाक्रम) मृग, चूहे और मगर (जलचर) आश्रय लेते हैं तथा शेष तीन दुर्गों में वृक्ष दुर्ग के आश्रित वानर, मनुष्य और पशु, पक्षीगण तथा गिरि दुर्ग के आश्रित देवता होते हैं। यथा–

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्ग रामाश्रयेत।
एषांहि बहुगुण्येन गिरिदुर्ग विशिष्यते।।

जैसे किले के आश्रित इन मृगादि जीवों को इनके शत्रु नहीं मार सकते वैसे ही दुर्ग के आश्रित राजा को भी शत्रु नहीं मार सकते। दुर्ग या किले के महत्व को रेखांकित करते हुए मनुस्मृति में स्पष्ट कहा है किले में रहने वाला एक धनुधारी बाहर वाले 100 यौद्धाओं का सामना कर सकता है और किले के एक सौ सैनिक दस सहस्त्र सैनिको के साथ युद्ध कर सकते हैं। इसलिये यह दुर्ग अवश्य बनाना चाहिए।

एकः शर्त योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्त्राणि तस्माद्दुर्ग विधीयते।।

वह किला अस्त्र–शस्त्र, धन–धान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्पी, यन्त्र तृण और जल से परिपूर्ण रहना चाहिए। ऐसे दुर्ग के बीच में पर्याप्त खाई और सब प्रकार की ऋतुओं के फलफूल और निर्मल जल से भरे हुए कुओं और बावड़ियों से युक्त अपना राज भवन बनवाये।

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार दुर्ग में पर्याप्त आयुध, अन्न, औषध, धन, घोड़े, हाथी, भारवाही, पशु, ब्राह्मण, शिल्पकार, मशीनें (जो सैकड़ों को एक बार में मारती हैं–शतघ्नी), जल एवं भूंसा आदि होना चाहिए।[7]

नीतिवाक्यामृत में उल्लेख है कि दुर्ग में गुप्त सुरंग अवश्य होनी चाहिए जिससे संकटकाल में गुप्त रूप से बाहर निकला जा सके, नहीं तो वह बन्दीगृह सा हो जायेगा।[8]

याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि दुर्ग की स्थिति से राजा की सुरक्षा, प्रजा एवं कोष की रक्षा होती है (जनकोशात्मगुप्तये)।[9]

शुक्राचार्य ने 'शुक्रनीति' में छः तरह के दुर्गों का विवेचन किया है।[10]

षष्ठं दुर्ग प्रकरणं प्रवक्ष्यामि समासतः।
खात कण्टक पाषाणै र्दुष्पथं दुर्ग मैरिणम।।

शुक्राचार्य ने छठे दुर्ग के रूप में एरिण दुर्ग का उल्लेख दिया है। खाई, काँटों तथा पत्थरों से जिसके मार्ग दुर्गम हो उसे एरिण दुर्ग कहते हैं। शुक्रनीतिकार के अनुसार पारिख दुर्ग से श्रेष्ठ एरिण दुर्ग, उससे श्रेष्ठ पारिध दुर्ग, उससे श्रेष्ठ वन

दुर्ग, उससे श्रेष्ठ धन्व दुर्ग, उससे श्रेष्ठ जल दुर्ग तथा उससे भी श्रेष्ठ गिरि दुर्ग को माना गया है। लेकिन इन सभी से उत्तम है सैन्य दुर्ग जिसे सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।

यथा– **''श्रेष्ठं तु सर्वदुर्गेभ्यः सेनादुर्गमः स्मतंबुधः।''**

राजा को सुदृढ़ दुर्ग बनाने का निर्देश देते हुए शुक्रनीति में उल्लेख है कि प्रहरियों से नित्य सुरक्षित तथा तोपों से युक्त व बहुत से कुश आदि के गुच्छे जिस पर उगे हुए हों तथा जिसमें सुन्दर रीति की खिड़कियों की जालियाँ बनी हों तथा जिसके भीतर उससे छोटा दूसरा प्राकार (परकोटा) बना हुआ हो और जिसके समीप में पर्वत न हो, ऐसा प्राकार (परकोटा) बनाना चाहिए और उसके बाद ऐसी परिखा (खाई) बनानी चाहिए, जिसकी चौड़ाई उसकी गहराई से दुगुनी हो और जिसके अत्यन्त समीप में प्राकार न खिंचा हो व जिसमें अगाध जल भरा हो।

दुर्ग का महत्व सेना के साथ जुड़ा हुआ है। युद्ध कला में दक्ष सेना के बिना दुर्ग वैसे ही हैं जैसे बिना प्राणों के शरीर। शुक्रनीति में राजा को यह आगाह किया गया है कि युद्ध करने योग्य साधन, सामग्रियों यथा–– शस्त्रास्त्र, बारूद एवं युद्ध कला में निपुण यौद्धाओं के बिना दुर्ग में केवल निवास करना राजा के लिए कल्याणकारक नहीं होता है प्रत्युत उसका बंधन हो जाता है। अन्य आचार्यों ने दुर्गों के विषय में लगभग ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं। अतः प्राचीन भारतीय वाङःमयों में दुर्गों के विविध प्रकार के विवरण प्राप्त होते हैं। बाह्य भागों से दुर्ग की सुरक्षा हेतु निम्न चीजों का निर्माण आवश्यक माना जाता था। 'परिखा' अथवा खाई पाणिनी के अष्टाध्यायी के अनुसार परिखा बनाने से पूर्व जितनी भूमि में इसे बनाना होता था उस पर चिन्ह लगा दिया जाता था, इसे 'परिखेई' भूमि कहते थे।[11] इसकी आदर्श गहरायी 15 फीट मानी जाती थी।

'वप्र' (रेम्पर्ट)–परिखा के बाद वप्र का निर्माण किया जाता था। इसका निर्माण परिखा से 24 फुट की दूरी पर किया जाता था। वप्र के ऊपर 'प्राकार' (परकोटे) का निर्माण ईंटों से किया जाता था।[12] ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार प्राकार को 30 फुट (20 हाथ) ऊँचा उठाया जाए।[13] कहीं–कहीं यह ऊँचाई केवल 9 हाथ रखी जाती थी।[14]

प्राकारों में स्थान–स्थान पर 'गोपुराहलक' (बुर्ज) बने रहते थे, सुरक्षा हेतु ये बुर्ज आवश्यक थे। वस्तुतः युद्ध की आवश्यकता की दृष्टि से राज्य की सीमाओं पर दुर्ग बनवाने का प्रचलन प्राचीन काल में था जिनमें सेना रहती थी।[15] मनु स्मृति में लिखा है कि दुर्ग राज्य की रक्षा का प्रमुख आधार है।[16] याज्ञवल्क्य स्मृति में दुर्ग को राज्य की सुरक्षा के आधार के साथ–साथ इसे प्रजा सम्पत्ति एवं मित्रों को भी आश्रय प्रदान करने वाला बताया गया है।[17] वस्तुतः प्रत्येक राज्य की राजधानी व नगर सुरक्षात्मक दुर्ग, परिखा आदि से घिरा रहता था जो परिस्थिति, आर्थिक साधन तथा आक्रमण के भय से बनाए जाते थे।[18]

यद्यपि राजस्थान में पूर्व वर्णित दुर्गों के विविध प्रकारों में से कुछ ही प्रकार देखने को मिलते हैं, तथापि यहाँ गढ़ों या दुर्गों की कोई कमी नहीं रही है। यहाँ की स्थापत्य कला में दुर्ग स्थापत्य का विशेष महत्व रहा है। राजपूत शासकों, सामन्त वर्ग तथा जागीरदारों ने राजपूताना के विविध भागों पर राज्य किया और अत्यधिक दुर्गों का निर्माण करवाया।[19] वस्तुतः राजस्थान में दुर्ग स्थापत्य के पीछे अनेक महत्वपूर्ण कारकों का समावेश मिलता है यथा–सामरिक एवं सुरक्षा की दृष्टि से[20] रोजमर्रा की आवश्यक सामग्री के संचय हेतु[21] किलो का अपना एक कारखाना होता था, जिसमें सैन्य आवश्यकता तथा सुरक्षा हेतु विविध वस्तुओं का निर्माण किया जाता था, किले के गोदामों में संकटकाल के लिए अनाज, नमक, गुड़, तेल, रूई, घास, अफीम, मिर्च, हल्दी तथा हथियार रखे जाते थे। जिनका उपयोग युद्ध के समय शरण लेने हेतु,[22] प्रजा, पशु व सम्पत्ति की सुरक्षा हेतु किया जाता था।

राजस्थान के मुख्य समान स्थापत्यक् स्मारकों में इन दुर्गों का स्थान महत्वपूर्ण है।[23] वस्तुतः ये दुर्ग भीतर से एक विशाल नगर की भांति होते थे। इनमें ताल–तलैया, मन्दिर, राजप्रासाद, जन सामान्य के आवास, हाट बाजार आदि बने होते थे। दुर्ग की दीवारें विशाल व ऊँची बनाई जाती थी जिनमें आनुपातिक दूरी पर छिद्र किये जाते थे ताकि नीचे से आने वाले शत्रु पर प्रहार किया जा सके। दुर्ग के दरवाजे भी काफी विशाल बनाए जाते थे। किलों की रक्षा हेतु किलेदार अथवा दुर्गाध्यक्ष होता था जिसके अधीन एक सैन्य टुकड़ी रहती थी। ये सैनिक किलो के बुर्जों तथा दीवारों पर नियुक्त किए जाते थे। किलों की दीवारों पर हल्की व भारी तोपें लगाई जाती थी।[24] चूंकि राजस्थान के अधिकांश दुर्ग मध्यकाल में निर्मित हुए,

अतः इन पर तुर्क एवं मुगल स्थापत्य कला का प्रभाव दिखाई देता है।[25] राजस्थान के कुछ कतिपय प्रमुख दुर्गों में चित्तौड़गढ़, कुम्भलगढ़, रणथम्भौर दुर्ग, जोधपुर दुर्ग, गागरोण दुर्ग, बीकानेर दुर्ग व अन्य कई दुर्ग सम्मिलित हैं। सारतः राजस्थान गढ़ों और किलों के रूप में अतीत की अनमोल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। यहाँ वास्तुशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित प्रायः सभी कोटि के छोटे बड़े दुर्ग विद्यमान हैं जिनका अपना गौरवशाली अतीत रहा है।

राजस्थान के दक्षिण पूर्वी भाग में बसे बारां जिले में राजस्थान के अन्य भागों की अपेक्षा सीमित संख्या में सुदृढ़ किलों का निर्माण हुआ। इसका मुख्य कारण था यहाँ शत्रु आक्रमणों का अपेक्षाकृत कम होना। किसी बड़े युद्ध का अथवा लड़ाई का न होना। अतः यहाँ के शासकों के समक्ष किसी किले अथवा दुर्ग निर्माण जैसी कोई समस्या नहीं आई। लेकिन हाँ ये अवश्य हुआ कि समय–समय पर दुर्गीकरण अथवा किलेबन्दी की तकनीक इस क्षेत्र में भी देखने को मिली।

(अ) शाहाबाद क्षेत्र के प्रमुख दुर्ग :

(1) शाहाबाद दुर्ग

(i) दुर्ग स्थिति :–

राजस्थान के प्राचीनतम ऐतिहासिक दुर्गों में शाहाबाद दुर्ग का अपना एक अलग स्थान है। शाहाबाद दुर्ग को हाड़ौती अंचल के सबसे मजबूत व सुदृढ़ दुर्गों में से एक माना जाता है। यह बारां से लगभग 80 किलोमीटर दूर कोटा शिवपुरी राष्ट्रीय राजमार्ग पर एक विशाल और ऊँचे पर्वत शिखर पर स्थित है।

शाहाबाद का किला अपने चतुर्दिक फैले विशाल घने जंगल तथा दो तरफ से कुण्डा खोह नामक गहरे प्राकृतिक झरने तथा तीसरी ओर एक खाई से घिरा होने के कारण एक सुरक्षित दुर्ग है। जिसे प्रकृति ने सुदृढ़ सुरक्षा कवच प्रदान किया है। किले तक पहुँचने का एकमात्र मार्ग ऊँची पहाड़ी पर से जाता है। शाहाबाद कस्बे से पश्चिम दिशा की ओर लगभग 2 किलोमीटर तक इस पहाड़ी मार्ग पर चलने पर किले का मुख्य प्रवेश द्वार आता है। शाहाबाद दुर्ग का सुदृढ़ स्वरूप उसकी विशाल एवं दृढ़ प्राचीर घुमावदार मार्ग तथा विशालकाय बुर्जों से पता चलता है।

शाहाबाद दुर्ग शताब्दियों से अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, सुदृढ़ बनावट और सामारिक महत्व के कारण आक्रान्ताओं के आकर्षण का केन्द्र रहा है। यह किला अनियमित आकार की पर्वतमालाओं और घने जंगल के मध्य ऐसे प्रदेश में स्थित है जो चंबल, कालीसिंध, और उसकी अन्य सहायक नदियों, तालाबों और झरनों से घिरा है। रणथम्भौर दुर्ग की भांति शाहाबाद का किला प्रकृति प्रदत्त इसी परिवेश के कारण एक विकट दुर्ग माना जाता था, साथ ही दिल्ली मालवा और दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण इस किले का अपना विशेष आकर्षण तथा महत्व था।[26]

(ii) दुर्ग का इतिहास :–

शाहाबाद में अनेक स्थानों पर प्राप्त पुरावशेषों के आधार पर यह बस्ती 9वीं–10वीं शताब्दी में निर्मित प्रतीत होती है। इस भू–भाग पर 8वीं शताब्दी में धनेड़ियाँ राजपूतों का अधिकार था। रणथम्भोर के प्रतापी शासक हम्मीर के पुत्र जसराज के वंशज सारंगदेव ने सावरगद से आकर 1408 ई. में धनेड़िया राजपूतों से इस भू–भाग को छीनकर अपना राज्य स्थापित किया तथा कुनु नदी के किनारे पर सहजनपुर को अपनी राजधानी बनाया। आगे चलकर जसराज के वंशज मुकुटमणि देव ने सहजनपुर के स्थान पर शाहाबाद को अपनी राजधानी बनाया। मुकुटमणि देव ने पुरानी बस्ती के खण्डहरों के स्थान पर एक नया नगर बसाया तथा पहाड़ के ऊपर एक किला निर्मित कराया।[27]

शाहाबाद दुर्ग के निर्माण की सही तिथि और इसके निर्माताओं के बारे में प्रमाणिक जानकारी का अभाव है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण 9वीं शताब्दी ईस्वी के लगभग परमार शासकों द्वारा कराया गया। जिनका उस समय इस क्षेत्र पर आधिपत्य था। जबकि दूसरी मान्यता के अनुसार शाहाबाद के इस किले का निर्माता चौहान राजा मुकुटमणि देव था जो कि रणथम्भौर के प्रसिद्ध शासक राव हम्मीर देव चौहान के वंश से था। मुकुटमणि देव ने चैत्र बदी 3, मंगलवार, संवत् 1577 (1521 ईस्वी) को शाहाबाद के किले की नींव रखी। मुकुटमणि देव के समय शाहाबाद में हम्मीर वंशियों का चौहान राज्य और राजधानी अच्छी तरह से व्यवस्थित हो गई थी।[28]

शाहाबाद दुर्ग के शासकों का कालक्रम

मुकुटमणि देव (प्रतापरूद्र व रानी परिहारी का पुत्र)

↓

जगन

(मुकुटमणि के पुत्र, मुगल स्त्रोतों के अनुसार शाहाबाद का राजा मुगलों का मनसबदार हो गया था)[29]

↓

जगतमन

प्रतापमन

(मुगल शाही दरबार में जगन के बड़े पुत्र प्रतापमन द्वारा कुछ गुस्ताखी करने से उसे गद्दी का हकदार नहीं रहने दिया, और उसका छोटा भाई जगतमन शाहाबाद का राजा हुआ)[30]

↓

चित्रमन

↓

इन्द्रमन (शाहाबाद किले का अन्तिम प्रतापी चौहान नरेश)[31]

↓

विट्ठलदास गौड़ (कुछ समय पुत्र अर्जुन गौड़ भी शासक रहा)[32]

↓

खाण्डेराव (मराठा सेनापति, पुत्र मेघसिंह भी कुछ समय शासक रहा)[33]

↓

झाला जालिमसिंह

(जालिम सिंह झाला के पश्चात् शाहाबाद दुर्ग स्वतन्त्रता तक कोटा तथा झालावाड़ रियासतों का भाग रहा। 1991 में बारां जिला बनने पर वह इसके अन्तर्गत आ गया।[34])

मेवाड़ के प्रतापी शासक राणा कुम्भा के शासन काल के प्रारम्भ में शाहाबाद दुर्ग पर मांडू के सुलतान महमूद खलजी का अधिकार था लेकिन बाद में राणा कुम्भा ने मांडू के सुल्तान को पराजित कर शाहाबाद दुर्ग को अपने राज्यान्तर्गत कर लिया। इस प्राचीन दुर्ग का पुनर्निर्माण या जीर्णोद्धार संभवतः शेरशाह सूरी के द्वारा कराया गया। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार शेरशाह सूरी अपने कालिंजर अभियान के समय यहां से गुजरा था तथा उसने शाहाबाद और निकटवर्ती शेरगढ़ के किलों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। तदनन्तर इस किले पर मुगल बादशाहों का आधिपत्य रहा। शाहजहाँ ने शाहाबाद दुर्ग वहां के अन्तिम प्रतापी चौहान नरेश इन्द्रमन को पराजित कर अपने अधिकार में लिया। तत्पश्चात् उसने यह दुर्ग अपने विश्वस्त सेनापति विट्ठलदास गौड़ को इनायत (भेंट) कर दिया। शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात औरंगजेब ने गौड़ फौजदार को हटाकर शाहाबाद दुर्ग वापस अपने प्रत्यक्ष नियन्त्रण में कर लिया।[35]

मुकुटमणि देव के समय में इस स्थान का नाम सारंगपुर या कुछ और रहा होगा, परन्तु अपने कालिंजर अभियान में जाते समय शेरशाह सूरी इस मार्ग से गुजरा था तथा शाहाबाद राज्य के नगर कस्बाथाना के पास मुकुटमणि से युद्ध हुआ। बाद में दोनों में सुलह हो गई तथा शेरशाह के पुत्र के नाम पर इसका नाम सलीमाबाद रखा गया और जब यह राज्य मुगलों के अधिकार अन्तर्गत आया तब इसका नाम शाहाबाद कर दिया गया।[36] तब से यह किला शाहाबाद दुर्ग के नाम से प्रसिद्ध हो गया। कहा जाता है कि शाहाबाद के इस दुर्ग से औरंगजेब को विशेष लगाव था। वह अपनी दक्षिण यात्रा के दौरान शाहाबाद दुर्ग का उपयोग विश्राम स्थल के रूप में करता था। औरंगजेब के शासनकाल में शाहाबाद के मुगल फौजदार मकबूल द्वारा निर्मित जामा मस्जिद मुगल स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है।[37]

मुकुटमणि के पश्चात् जगन शाहाबाद का राजा हुआ। प्रतीत होता है कि इसके समय में ही कभी शाहाबाद राज्य विस्तृत मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत आया होगा। मुगल स्त्रोतों के अनुसार शाहाबाद का राजा मुगलों का मनसबदार हो गया था। मुगल शाही दरबार में जगन के बड़े पुत्र प्रतापमन द्वारा कुछ गुस्ताखी करने पर उसे गद्दी का हकदार नहीं रहने दिया और उसका छोटा भाई जगतमन शाहाबाद का राजा हुआ। जगतमन का पुत्र चित्रमन और उसका पुत्र इन्द्रमन था।

इन्द्रमन शाहाबाद का अन्तिम प्रतापी चौहान नरेश था। उसने शाहाबाद में अनेक निर्माण कार्य कराए जिसमें सावन भादों महल तथा इन्द्रपोल प्रमुख हैं। इन्द्रमन शाहजहाँ और औरंगजेब के काल में मुगलों का मनसबदार रहा था। समकालीन मुगल इतिहास ग्रन्थों में अनेक जगहों पर इन्द्रमन धंधेरे के नाम का उल्लेख मिलता है। मुगल दरबार में इन्द्रमन धंधेरे का महत्व इसी बात से आंका जा सकता है कि जब उसके समकालीन कोटा के राजा जगतसिंह का मनसब 2000 जात, 1500 सवार था, तब उसका मनसब 4000 जात व 3000 सवार का था। सामूगढ़ के युद्ध में इन्द्रमन धंधेरा औरंगजेब के साथ था। इस युद्ध में इन्द्रमन औरंगजेब की सेना में दाहिनी ओर चम्पतराय बुन्देला तथा भगवन्तसिंह हाड़ा के साथ था।[38]

शाहाबाद का भूभाग एक प्रकार से बुन्देल खण्ड का ही प्रसार भाग है। यहाँ अभी तक भी बुन्देलखण्डी भाषा बोली जाती है। यद्यपि यह शताब्दियों तक कोटा के हाड़ा राज्य के अन्तर्गत रहा है। शाहाबाद के धंधेरे शासकों के बुन्देलखण्ड के बुन्देले शासकों से विवाह सम्बन्ध रहे थे। शाहजहाँ के समय में जुझारसिंह बुन्देला के साथ इन्द्रमन ने भी मुगल सत्ता के खिलाफ विद्रोह किया था। शाहजहाँ ने इसी कारण से कर न चुकाने का बहाना लेकर शाहाबाद छीन लिया तथा इसे मुगल साम्राज्य में मिलाकर इन्द्रमन को नारनोल के किले में बन्दी बना लिया था। बाद में उसके चाचा जात ससुर चम्पतराय ने शाहजहाँ से सिफारिश कर इन्हें कैदमुक्त कराया और मध्यप्रदेश में 'सहरा' नामक स्थान जागीर में दिलाया। इसी समय से शाहाबाद राज्य का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया।[39]

शाहजहाँ ने इन्द्रमन से छीनकर शाहाबाद अपने विश्वस्त सेनापति विट्ठलदास को भेंट के रूप में दे दिया। लेकिन औरंगजेब के समय विद्रोह करने पर गौड फौजदार से शाहाबाद पुनः छीन कर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् होने वाले उत्तराधिकार युद्ध के पश्चात् मराठे मध्यप्रदेश तक आगे बढ़ आए तथा सिन्धियाँ के सेनापति तथा नरवर के हाकिम मराठा ब्राह्मण खाण्डेराव ने इसे मुगल हाकिमों से जीतकर अपने कब्जे में कर लिया। खाण्डेराव से 1714 ईस्वी में कोटा के महाराव भीमसिंह प्रथम ने शाहाबाद जीत लिया। महाराव भीमसिंह के पश्चात् शाहाबाद कोटा राज्य व खाण्डेराव और उसके वंशजों के पास आता जाता रहा। अन्त में कोटा के फौजदार झाला जालिम सिंह ने 1779 में

शाहाबाद को जीतकर तथा सिन्धिया को इसका हर्जाना देकर शाहाबाद को सदैव के लिए कोटा राज्य का हिस्सा बना दिया।

ऐसा कहा जाता है कि झाला जालिमसिंह ने शाहाबाद का किला खाण्डेराव के पुत्र मेघसिंह से छल से जीता था। कहते हैं कि कोटा वालों ने मेघसिंह और उसके सामन्तों को कुण्डाखोह नामक स्थान पर गोठ (भोजन) के लिए आमन्त्रित किया था और जब सब खाने में व्यस्त थे तब जालिम सिंह के सेनापति बड़ौरा के जागीरदार अनवर खां ने पीछे से अपनी सेना सहित किले में कूद कर शाहाबाद के किले पर कब्जा कर लिया तथा मेघसिंह के सैनिकों को भगाकर शाहाबाद नगर को भी हस्तगत कर लिया तथा इसे खूब लूटा। इसी समय से हाड़ौती में यह कहावत मशहूर है कि ब्राह्मणों ने लड्डुओं के लालच में शाहाबाद का राज्य खो दिया।[40] कोटा राज्य के मराठों से सम्बन्ध विच्छेद होने के उपरान्त, 1817 में अंग्रेज कम्पनी से कोटा की सन्धि हुई। इस समय जालिमसिंह ही सर्वेसर्वा था। महाराव उम्मेदसिंह प्रथम तो केवल नाममात्र के शासक थे, अतः इस शासनकाल में जो भी प्रशासन सम्बन्धी कार्य अथवा सुधार हुए थे उन्हें जालिमसिंह ने उन्हें द्वारा ही संपादित किया गया था।[41]

उस समय किलों के निर्माण की तथा पुराने किलों की मरम्मत की आवश्यकता थी जिनसे मराठों, पिण्डारियों तथा बाहरी आक्रमणकारियेां से रक्षा हो सके। इसलिये कोटा में सभी पुराने किलों की मरम्मत करवाई गई। शेरगढ़ की प्राचीर बनाई गई। कोटा नगर की प्राचीर जो सूरजपोल से चम्बल तक गई है इसी समय बनाई गई। यह बहुत ही मजबूत है। गागरोण की प्राचीर और शाहाबाद के किले की मरम्मत करवाई गई। लगभग सभी किलों में सेना का अच्छा प्रबन्ध रखा गया था। सभी मुख्य किलों गागरोण, नाहरगढ़, भंवरगढ़, शाहाबाद, केलवाड़ा, शेरगढ़ आदि पर बड़ी–बड़ी तोपें जमाई गई। सभी किलों में पर्याप्त सेना तथा सैनिक सामग्री रखी गई।[42]

कोटा राज्य में विलयन के पश्चात् से ही शाहाबाद का गौरव समाप्त हो गया। राजधानी हटने से नगर वीरान होने लगा। हवेलियाँ खाली पड़ी रहीं और खण्डहरों में परिवर्तित होती गई। बाद में कोटा राज्य द्वारा इसे शाहाबाद निजामत या सदर मुकाम बनाने से यहाँ कुछ पुनरूद्धार कार्य हुआ, परन्तु राजधानी जैसा गौरव

फिर कभी लौट कर नहीं आया। शाहाबाद झाला जालिमसिंह ने जिताया था। अतः 1838 ईस्वी में उनके पौत्र मदनसिंह के समय में पृथक झालावाड़ राज्य का निर्माण होने से शाहाबाद झालावाड़ राज्य में चला गया। तब से 1899 ईस्वी तक शाहाबाद झालावाड़ राज्य में रहा। 1899 में जब झालावाड़ में कुछ परगने वापस कोटा राज्य के पास आए तब झालरापाटन के स्थान पर शाहाबाद पुनः कोटा राज्य में चला गया और तब से 1949 तक (राजस्थान बनने तक) शाहाबाद कोटा राज्य में रहा और 1991 तक कोटा जिले का तहसील मुख्यालय रहा। 1991 ईस्वी में कोटा से पृथक बारां जिला बनने पर यह बारां जिले में चला गया और तहसील के स्थान पर अब सब डिवीजन मुख्यालय है।

सब डिवीजन मुख्यालय होने के बावजूद भी शाहाबाद आज भग्न किला, महलों, हवेलियों, बावड़ियों एवं जर्जर शहरपनाह का नगर है। ऊपर पहाड़ से देखने पर यह एक पुराने भव्य नगर का एक भग्न स्वरूप सा प्रतीत होता है। इस नगर में आज भी दर्जनों पुरावशेष मौजूद हैं लेकिन उनमें से मुख्य है–शाहाबाद का किला।[43]

(iii) दुर्ग स्थापत्य :–

शाहाबाद का किला अपने अनूठे स्थापत्य और विशिष्ट संरचना के कारण भी अपनी विशेष पहचान रखता है। दुर्ग की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी नैसर्गिक सुरक्षा व्यवस्था। ऊँची पर्वतमालाओं की अभेद दीवारों व चारों ओर से सघन वनों ने इस दुर्ग को प्राकृतिक सुरक्षा कवच प्रदान किया है। अपनी बनावट की इस अद्‌भुत विशेषता के कारण शत्रु के लिए दूर से किले की स्थिति के विषय में अनुमान लगाना कठिन रहा होगा। किले को प्रवेश द्वार पर पहुँचकर ही देखा जा सकता है, क्योंकि यह किला उच्च पर्वत शिखर पर घने जंगल में स्थित है। किले के प्रवेश द्वार पर पहुँचते ही हिन्दू–मुस्लिम स्थापत्य कला से साक्षात्कार होता है। एक तरफ हिन्दू मूर्तियाँ हैं, इनमें सतियों के अंकन है, वहीं दूसरी ओर एक मुस्लिम धर्म से जुड़ा मकबरानुमा स्थान बना है।

सुरक्षा की दृष्टि से किले में तीन प्रवेश द्वार है। प्रथम प्रवेश द्वार में प्रवेश करते ही किले की मजबूती एवं सुरक्षा व्यवस्था का आंकलन अपने आप ही हो जाता है। दोनों प्रवेश द्वारों के बीच में सैनिकों एवं पहरेदारों के लिए स्थान नियुक्त हैं।

जहां से सैनिक सम्पूर्ण किले पर नजर रख सकते थे। मुख्य प्रवेश द्वार अत्यन्त विशाल, नुकीले मेहराबयुक्त कंगुरों से अलंकृत सुदृढ़ संरचना वाला है। इस पर बहुत ही मजबूत लकड़ी से निर्मित एक विशाल द्वार लगा हुआ है, जो आज भी बहुत अच्छी स्थिति में है। इस पर भारी वजन के लोहे से निर्मित सांकल व कुन्दे लगे हैं जिन पर किसी प्रकार का जंग भी नहीं लगा है।

मुख्य द्वार के दोनों ओर दो खिड़कियाँ हैं। इनमें से एक खिड़की लम्बी व पतली, जबकि दूसरी खिड़की चौड़ी व छोटी है इसका उपयोग सम्भवतया द्वार बन्द होने के उपरान्त आने–जाने वालों के प्रवेश हेतु किया जाता होगा। किले की सुरक्षा हेतु चारों ओर ऊँची–ऊँची प्राचीर बनी हैं। प्राचीर और बुर्जों के शीर्ष भाग में शत्रु पर निशाना साधने के लिए अनेक छिद्र बने हुए हैं। साथ ही इस प्राचीर के बीच–बीच में कई जगह सैनिकों हेतु कमरेनुमा स्थान भी आरक्षित है। इस सुरक्षा दीवार पर रियासत काल में 18 तोपें रखी हुई थीं। जिनमें नवलवाण तोप दूर तक मार करने की क्षमता के कारण प्रसिद्ध थी। दुर्ग की सबसे बड़ी व प्रसिद्ध तोप 'नवलबाण' किले के बुर्ज पर आज भी रखी हुई है, यह तोप अष्टधातु से निर्मित है जिस पर कभी जंग नहीं लगता है इसकी लम्बाई 19 फुट है। लम्बी दूरी तक मार करने वाली नवलबाण तोप अपनी भीषण संहारक क्षमता के लिए प्रसिद्ध रही है। जनश्रुति है कि यह तोप एक बार ही चलाई गई है। बताया जाता है कि इस तोप का गोला किले से 3 मीज दूर अहूखाने पर गिरा था और इसकी आवाज से आस–पास की औरतों के गर्भ गिर गये थे तब से यह तोप दुबारा कभी नहीं चलाई गई।[44]

अन्य तोपों में से 3–4 तोपें कुछ समय पूर्व तक यहीं दुर्ग की प्राचीर पर रखी देखी जा सकती थीं, परन्तु प्रशासन की अनदेखी के कारण धन के लालची लोगों द्वारा इन्हें ले जाया गया। किले में लोहे से निर्मित असंख्य छोटे व बड़े गोले थे जो सभी नीलाम कर दिये गए हैं। यहाँ दो बड़े–बड़े बारूद के गोदाम थे, एक तो आज भी सीलबन्द है। एक सन् 1965 की भारत पाक लड़ाई के समय बावड़ी में बारूद डलवाकर खाली करा दिया गया था। बारूद खोदकर निकालने की लकड़ी की कुदाली आज भी उसमें पड़ी हुई है।

स्थानीय बुजुर्गों से चर्चा करने पर पता चला कि लोग किला भ्रमण हेतु जाते थे तो शौक के तौर पर वहाँ स्थित बारूद को गोलियाँ बना कर जलाया करते थे। काफी वर्षों तक यहाँ जिन्दा बारूद मौजूद था। उस समय भी बारूद इतना शक्तिशाली था कि बावड़ी में डलवाते समय थोड़ा बहुत बारूद ऊपर बिखर गया था, 3–4 साधु किला देखने गये और बावड़ी के पास खड़े होकर चिलम सुलगाई तो ऐसा विस्फोट हुआ कि चारों ही साधु झुलस गये और एक साधु की तत्काल मौत हो गई।

(iv) दुर्ग के जलाशय :–

किले में अथाह जल राशि वाले अनेक जल स्त्रोत हैं। जिनमें सर्वप्रमुख गुलाब बावड़ी है। बावड़ी में एक सुरंग द्वारा बाहर जाने का रास्ता है, जो सम्भवतः किले के भीतर से बाहर निकलने का आपातकालीन निकास था। यह बावड़ी अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है इसमें प्रवेश के लिए जहां सीढ़ियाँ बनी हैं वहां ऊपर ही दीवारों में कलात्मक मूर्तियाँ लगी हैं, जिनमें विष्णु, यक्ष–यक्षिणी तथा शिवरूपी मूर्तियाँ स्पष्टतया दिखाई देती है। कुछ मूर्ति तोड़–फोड़ होने से खण्डित दिखाई देती है। सीढ़ियाँ काफी हद तक जर्जर हो चुकी हैं परन्तु बावड़ी में इनसे उतरकर नीचे पहुँचा जा सकता है।

इसके पत्थर टूट–टूट कर बावड़ी में गिर गए हैं। इसकी दीवार में गोदामनुमा कक्ष बने हैं जिनके बारे में लोकमान्यता है कि इनके भीतर खजाना रखा रहता था।[45] इन कक्षों के द्वार पर ताले लगे हुए थे, जो कि पानी में पहले स्पष्ट दिखाई देते थे। बावड़ी खाली करने व भरने की कोई गुप्त व्यवस्था रही होगी। जिसकी जानकारी न मिलने पर कोटा स्टेट के समय दो इंजनों से पानी कम करने की कोशिश की गई थी, मगर पानी तनिक भी नीचे नहीं गया अर्थात् जल स्तर कम नहीं हो पाया। इंजन रखने के चैनल आज भी लगे हुए हैं। अब तो यह बावड़ी भी ऊपर से गिर गई है। इसके अतिरिक्त अन्य कई छोटे–बड़े कुएं, बावड़ी दुर्ग में बने हैं, जल संग्रह हेतु पानी के विशाल टांके भी यहाँ बने हुए हैं।

(v) दुर्ग के मन्दिर :–

किले के भीतर हिन्दू व मुस्लिम दोनों ही वास्तु शैलियों पर आधारित भव्य भवन बने हैं। विभिन्न देवी–देवताओं के लगभग 10–12 मंदिर यहाँ निर्मित हैं, जिनमें ज्यादातर मूर्तियाँ खण्डित कर दी गयी हैं या चोरी जा चुकी हैं।

(A) राधाकृष्ण मन्दिर :–

मन्दिर में मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही एक खुला आँगन आता है। आँगन से आगे बढ़ने पर मुखमण्डप में प्रवेश करते हैं। मुखमण्डप में बाहरी ओर आठ स्तम्भ लगे हुए हैं, जिनकी बनावट शैली साधारण तरीके की है। मुखण्मडप में कलात्मक चित्रकारी की गई है इनमें राधा–कृष्ण के प्रेम प्रसंग, गायों के बीच बांसुरी बजाते कृष्ण, उत्सव मनाते लोग, मोर व अन्य पक्षियों के अलावा कई प्रकार के चित्रांकन किए गए हैं। वर्तमान समय में यह काफी हद तक खुद चुके हैं, दीवारों के प्लास्टर पर उकेरे गए ये चित्र धुंधले से पड़ गए हैं, फिर भी हमें अपने समय की कलात्मक चित्रकारी शैली का बोध कराते हैं।

गर्भगृह के प्रवेश द्वार का ऊपरी हिस्सा और चौखट के अलंकरण अत्यन्त सुन्दर है। प्रवेशद्वार के ऊपर मध्य में सूर्य देव की प्रतिमा उत्कीर्ण है तथा दोनों ओर अन्य देवगण व गन्धर्वों की मूर्तियों को उत्कीर्ण किया गया है। यद्यपि समय के साथ ये भग्न अवस्था में दिखाई देते हैं फिर भी इनकी कलात्मकता के अंकन से निवर्तमान समय की स्थापत्य शैली का ज्ञान होता है।

मन्दिर के गर्भगृह में कोई देव प्रतिमा नहीं है। दुर्ग में अनेक स्थानें से प्राप्त खण्डित मूर्तियों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस मन्दिर की देव प्रतिमा भी किसी मुस्लिम शासक या आक्रान्ता द्वारा खण्डित कर यहाँ से हटा दी गयी होगी। गर्भगृह के बाहर की ओर प्रदक्षिणा पथ का निर्माण किया गया है।

गर्भगृह की छत पर एक छोटा सा मन्दिर की आकृति का विमान निर्मित है, इसकी आकृति गुम्बदनुमा प्रतीत होती है। इसके ऊपर निर्मित शिखर कमलाकृति में निर्मित है, इसका अलंकरण अत्यन्त सुन्दर है। मुखमण्डप के बाहर मन्दिर के दोनों ओर कक्ष निर्मित है, जिसमें एक कक्ष के भीतरी भाग में बड़े–बड़े आकार की मटकियाँ

जमीन से दबी हुई थीं। वर्ष 2010 में पंचायत समिति शाहाबाद द्वारा मनरेगा के माध्यम से दुर्ग में सफाई कार्य कराया गया, जिसमें उत्खनन के दौरान इस कक्ष से जमीन में दबी इन मटकियों को बाहर निकाला गया।

यद्यपि ये मटकियाँ मिट्टी से निर्मित हैं। स्थानीय भाषा में इन्हें 'कनारी' कहा जाता है। जनश्रुति के आधार पर इनमें पानी भरा रहता था, ये कनारियाँ जमीन में दबी रहती थीं, सिर्फ ऊपरी हिस्सा दिखाई देता था। इनमें पानी कहाँ से आता था ये कोई नहीं जानता। सम्भवतयाः प्राकृतिक रूप से इन कनारियों में पानी आता था।

मुखमण्डप के दूसरी ओर बने कक्ष के भीतरी भाग में एक छोटा सा कक्ष निर्मित है। यह पुजारी के निवास का स्थान होगा। यह कक्ष लगभग जर्जर अवस्था में है। मुखमण्डप के बाहरी हिस्से में लगे छज्जे लगभग टूट चुके हैं। मन्दिर परिसर में पेड़–पौधे व कांटेदार झाड़ियाँ उगी हुई हैं।

(B) हनुमान मन्दिर :–

हनुमान मन्दिर बाला किले से कुछ दूरी पर स्थित है। चार सीढ़ियाँ चढ़कर मन्दिर के मुखमण्डप में पहुँचा जाता है जो अब लगभग जीर्ण स्थिति में है। इसके स्तम्भ भी लगभग टूट चुके हैं। छत का प्लास्टर भी गिर रहा है। गर्भगृह के बाहर बने प्रदक्षिणा पथ में भी पत्थर गिरे हुए हैं। इसमें अन्दर प्रवेश करना भी सम्भव नहीं है।

गर्भगृह एक छोटा सा कक्ष है जिसके भीतर हनुमान जी की प्रतिमा स्थानक मुद्रा में है। इसके नजदीक एक शिवलिंग जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है। हनुमान प्रतिमा अत्यन्त बलिष्ठ मुद्रा में है। हनुमान जी की मूर्ति का एक पग स्पष्ट रूप से एक अस्पष्ट राक्षस सम्भवतयाः अहिरावण को दबाए हुए है। एक हाथ अभय मुद्रा में (आशीर्वाद देते हुए) है, दूसरे हाथ में गदा उठाए हुए हैं।

मन्दिर का लगभग आधा भाग जर्जर अवस्था में है। छत से भी पत्थर गिरते दिखाई पड़ते हैं।

(C) गणेश मन्दिर :–

दुर्ग के मुख्य द्वार से प्रवेश करने के उपरान्त कुछ दूरी पर ही गणेश मन्दिर स्थित है। मन्दिर में प्रवेश करते ही दो कक्ष निर्मित हैं, जो साधारण निर्माण शैली से बने हैं। सम्भवतया इनका उपयोग पुजारी के निवास हेतु किया जाता होगा। मन्दिर के मध्य में खुला आँगन है, जिसमें वृत्ताकार आकृति में तुलसी के पौधे का स्थान निर्मित है।

मन्दिर का मुखमण्डप बरामदेनुमा निर्मित है। गर्भगृह के दोनों ओर दो कक्ष व प्रदक्षिणा पथ निर्मित है। गर्भगृह में कोई देवप्रतिमा नहीं है, यहाँ की गणेश प्रतिमा वर्तमान में शाहाबाद, तहसील कार्यालय में स्थापित करवा दी गयी है जो कि गणेश जी की ललितासन मुद्रा में चतुर्भुजी मूर्ति है।

गर्भगृह के दोनों ओर बने कक्षों में भी सम्भवतया देव मूर्तियाँ प्रतिष्ठित रही होंगी, परन्तु अब ये कक्ष रिक्त हैं। गर्भगृह व अन्य दोनों कक्षों में गहरे गड्डे खुदे हुए हैं, कहा जाता है कि धन के लालची लोगों द्वारा अपनी अर्थ पिपासा के लिए धन के लालच में यहाँ खुदाई की गयी है और इस पुरातन अमूल्य धरोहर के वास्तविक स्वरूप से छेड़छाड़ की गयी है। मंदिर के मुख्य द्वार के बाहर सीढ़ियों के दोनों ओर क्रमशः एक–एक स्थान आगन्तुक के बैठने के लिए बना हुआ है।

(D) लक्ष्मण मन्दिर :–

लक्ष्मण मन्दिर किले के पिछले दरवाजे जिसे फतह दरवाजा कहा जाता है, अन्दर प्रवेश करने पर कुछ दूरी पर स्थित है। आकार में यह दुर्ग का सबसे बड़ा मन्दिर है। यह मन्दिर सतह से लगभग चार फीट ऊँचा बना हुआ है, जिस पर छः सीढ़ियाँ चढ़कर पहुँचा जाता है। मन्दिर के मुखमण्डप में आठ स्तम्भ लगे हुए हैं, जिन पर राजपूत स्थापत्य शैली का अंकन है। इन स्तम्भों पर पत्तियोंदार लताओं का अंकन किया गया है।

मुखमण्डप में क्रमशः तीन कक्ष निर्मित हैं। गर्भगृह के दोनों ओर दो छोटे आकार के कक्ष निर्मित हैं, जिनके अन्दर खण्डित मूर्तियों के कुछ अवशेष पड़े हैं, जो पूरी तरह से जीर्ण–शीर्ण स्थिति में है। सम्भवतया इनमें भी किसी की मूर्ति प्रतिष्ठित

रही होंगी। गर्भगृह में भी देव प्रतिमा नहीं है। गर्भगृह के द्वार पर कलात्मक अलंकरण किया गया है, जो लगभग जीर्ण अवस्था में है। अन्दर का फर्श भी खुदा हुआ है।

मन्दिर के दोनों छोर पर एक–एक कक्ष निर्मित है। जिनकी स्थापत्य शैली साधारण सी प्रतीत होती है। इस मन्दिर की आश्चर्यचकित करने वाली बात है इसके नीचे की ओर भी दोनों छोर पर तलघरनुमा प्रदक्षिणा पथ निर्मित है जो क्षेत्र के अन्य किसी मन्दिर में देखने को नहीं मिलती है। भारतीय वास्तुशास्त्र के आदर्शों के अनुरूप निर्मित ये मन्दिर यद्यपि बहुत कुछ भग्न व खंडित हो गए हैं तथापि अपने इस रूप में भी सुन्दर और आकर्षक लगते हैं।

दुर्ग में स्थित मजार :–

दुर्ग के भीतर मुस्लिम समुदाय की कुछ मजारें निर्मित है। जिसमें मुख्य मजार हक्कानी जलालुद्दीन साहब की है। बाकी मजारें उन्हीं के काफिले की हैं। मुख्य मजार में एक चबूतरे से होकर अन्दर पहुँचा जाता है। यहाँ एक खुला बरामदानुमा कक्ष निर्मित है, जिसके ऊपर छत नहीं है, सिर्फ चारदीवारी निर्मित है जहाँ सामने ही हक्कानी जलालुद्दीन साहब की मजार बनी है। इसके प्रवेश द्वार के ऊपर गुम्बदनुमा आकृति निर्मित है, जो देखने में मन्दिर के शिखर के समान प्रतीत होती है। गुम्बद की बनावट भी राजपूत स्थापत्य शैली की है इसके बाहरी भाग में खुले स्थान पर अन्य मजारें निर्मित हैं।

मुख्य मजार के निकट एक छोटा सा कक्ष निर्मित है। यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है जिसमें मुस्लिम समुदाय के लोग बड़ी संख्या में आते हैं। जनश्रुति है कि रियासतकाल में यहाँ से तीन ताजिये भी निकाले जाते थे। जिन्हें दुर्ग से होते हुए शाहाबाद कस्बे में लाया जाता था।

(vi) दुर्ग से ज्ञात हुईं मूर्तियाँ :–

शाहाबाद किले में यत्र–तत्र अनगिनत स्थूल एवं भद्र मूर्तियाँ खण्डित अवस्था में बिखरी हुई है। अनेकानेक मूर्तियों के सुघड़ पट्ट (पेनल) भित्तियों में दृष्टव्य होते हैं। जिन्हें सम्भवतः मध्यकालीन मुस्लिम शासकों ने खण्डित कर दिया। इन मूर्तियों एवं मूर्ति–पट्टों को उनकी बनावट और विकास क्रम के आधार पर 8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य रखा जा सकता है क्योंकि इसी प्रकार की

अन्य प्राचीन मूर्तियाँ भारतवर्ष के अन्य भागों से भी ज्ञात हुई हैं जिनकी तिथियाँ विभिन्न विद्वजनों ने इसी कालक्रम के मध्य प्रदर्शित की हैं। उदाहरण के लिए किले के मध्य हजारों की संख्या में ज्ञात अनेक शिवलिंग अत्यन्त सादा और आकार में छोटे हैं। आभास होता है इनका निर्माण किले की स्थापना के समय 8वीं शताब्दी में अथवा उसके पश्चात् हुआ होगा।

इसी प्रकार एक अन्य हनुमान जी की स्थूल मूर्ति बिखरी हुई मुद्रा में ज्ञात है। अन्य एक शिलापट्ट पर एक देव मूर्ति है जो अत्यन्त आकर्षक है इसको सम्भवतः पुरातत्व विभाग या अन्य किसी ने भित्ति पर पुनः स्थापित किया है। मूर्ति की प्रत्येक ओर तीन–तीन भुजाएं आयुध युक्त हैं। कटि क्षेत्र में वस्त्राभूषण का अलंकरण है। ग्रीवा क्षेत्र में अनेक आभूषणों से युक्त दिखाया गया है। नैन–नक्श अत्यन्त आकर्षित हैं यद्यपि खण्डित कर दिये गये हैं। मस्तक पर अर्द्धचन्द्र स्पष्ट दिखाया गया है। हाथों की अंगुलियों के घुमाव अत्यन्त स्पष्ट रूप से आयुधों को धारण किये हुए हैं। सम्पूर्ण आकृति से देवी प्रतिमा का आभास होता है।

एक अन्य पेनल पर पद्मासन मुद्रा में भगवान शिव की आकृति स्पष्ट है जिनके दोनों ओर दो अन्य कटीली स्त्रियों की आकृतियाँ हैं। यद्यपि यह पेनल प्राकृतिक अथवा मानवीय कारणों से पूरी तरह जीर्ण स्थिति में है।

इसी प्रकार की अनेकानेक युगल मूर्तियाँ अलंकरण स्वरूप भित्तियों में सजाई गयी हैं।

एक अत्यन्त बलिष्ट मूर्ति ज्ञात होती है जिसमें यक्ष मूर्ति होने का आभास होता है। एक भित्तिका पर एक फलक (पेनल) के ऊपर शिवजी की ललितासन मुद्रा में मूर्ति उत्कीर्ण है जिसमें शिवजी के हाथ में त्रिशुल है। त्रिशुल पर अलंकरण स्वरूप डमरू स्पष्ट दिखाई देता है, दूसरा हाथ पग पर रखे दिखाया गया है। गले में सर्प लिपटा हुआ दिखाई पड़ता है। मूर्ति में शिव के साथ नवग्रह की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

पेनल के अन्तिम दोनों छोर पर क्रमशः एक–एक अनुचरों की मूर्तियाँ स्थित हैं। इसी प्रकार की एक मूर्ति जैन मन्दिर खजुराहो से प्राप्त हुई है। जैन मन्दिर के एक लम्बे फलक में यक्षी अम्बिका, चक्रेश्वरी व पद्मावती एवं नवग्रह उत्कीर्ण हैं।

यह मूर्ति चन्देलवंशी है तथा 11वीं शताब्दी ई. की रचना है। यह जार्डिन संग्रहालय में सुरक्षित है।[46]

शाहाबाद दुर्ग से प्राप्त शिवजी की मूर्ति जैन मन्दिर खजुराहो की इस मूर्ति से काफी समानता लिए हुए प्रतीत होती है।

दुर्ग के भीतर एक खुले स्थान पर क्रमशः तीन देवी रूपी पाषाण मूर्तियाँ ज्ञात हुई हैं। जिनमें सबसे बड़ी मूर्ति अम्बिका माता की है। ज्ञातव्य है कि पूर्व में दुर्ग के भीतर अम्बिका माता का मन्दिर था, जिसके अवशेष भी शेष नहीं हैं, यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ उसी मन्दिर की हैं। मूर्ति में देवी के चार हाथों को दर्शाया गया है जिसमें दो हाथों में आयुध धारण किए हुए हैं, यद्यपि भक्तगणों के द्वारा इन मूर्तियों पर सिंदूर लगा दिया गया है जिससे इन मूर्तियों की स्थिति अस्पष्ट सी प्रतीत होती है। सम्भवतया देवी के अन्य दो हाथों को अभय व वरद मुद्रा में दर्शाया गया है।

अन्य दो मूर्तियों में क्रमशः प्रथम मूर्ति स्थानक मुद्रा में है जिसे दोनों हाथों में आयुध धारण किये दर्शाया गया है, जो अस्पष्ट हैं। द्वितीय मूर्ति देवी की चतुर्भुजी मूर्ति है इसमें भी देवी को हाथों में आयुध धारण किए हुए दर्शाया गया है। इन मूर्तियों के समीप ही एक शिवलिंग खण्डित अवस्था में स्थित है। शिवलिंग की जलधारी अष्टकोणीय है तथा शिवलिंग का आधा भाग टूटा हुआ है जो यहीं देवियों की मूर्ति के निकट पड़ा हुआ है।

यहाँ प्राप्त भगनावशेषों में एक स्त्री रूप हाथ में दीपक लिए स्थानक मुद्रा में खण्डित स्थिति में स्थित है। ये दीपक अधिकतर मंदिरों में 'दान' के रूप में आते हैं। कभी–कभी उसी व्यक्ति की आकृति भी दीपक के रूप में निर्मित की जाती है, जो व्यक्ति मंदिर में इस दीपक का दान करता है। जब ये दीप स्त्री आकृति के रूप में बनाये जाते हैं, जब वे 'दीप–लक्ष्मी' के रूप में जाने जाते हैं।[47]

ये दीपक मन्दिर के धार्मिक कृत्यों का अभिन्न अंग होते हैं और अधिकतर धार्मिक व्यक्तियों और भक्तों द्वारा मंदिर के देवता को समर्पित किये जाते हैं। इन्हें 'देव–दानम्'[48] (देवता को भेंट) के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार के दीपक की महत्ता इसी बात से समझ में आ जाती है कि 'शिल्प–शास्त्र' का पूरा एक अध्याय इन्हीं को समर्पित है जिसमें उनका कलात्मक महत्व, उनका वर्गीकरण और निर्माण के तरीके बताये गये हैं। वेदो में भी इस प्रकार के दीपकों के सम्बन्ध में हमें अनेक जानकारियां प्राप्त होती हैं। वेदों में बताया गया है कि इन दीपकों में इनके स्तम्भ भाग को बनाना सर्वथा आवश्यक है और जब इन्हें बिना स्तम्भ के बनाया जाता है, जब इन्हें छत से चेन आदि की सहायता से लटकाया जाता है, जो कलात्मकता से परिपूर्ण होते हैं। सबसे अधिक लोकप्रिय 'दीप–लक्ष्मी' दीपक होते हैं, जिन्हें एकस्त्री आकृति के रूप में बनाया जाता है, जिसके हाथ में तेल व बत्ती के लिए एक बर्तन बनाया जाता है।[49] शाहाबाद दुर्ग से ज्ञात हुआ यह दीप अपने आप में विलक्षण है, क्षेत्र के अन्य किसी पुरातन स्थल से इस प्रकार की मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है। यह लगभग खण्डित अवस्था में है हाथ में जो दीपक रूपी पात्र है वह भी खण्डित है। इसकी बनावट चूना मिट्टी की प्रतीत होती है। समय के साथ इसकी रंगत मठमैली बल्कि, ये कहें कि यह काले रंग की प्रतीत होती है।

(vii) दुर्ग के भवन

परिचय :– महल अथवा भवन निर्माण कला की परम्परा प्राचीनकाल से रही है। यहां के शासकों एवं धनाड्य वर्ग ने समय–समय पर कला के विविध आयामों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन दिया। इनमें से भवन निर्माण कला अथवा स्थापत्य कला का स्थान प्रमुख रहा है। हिन्दू स्थापत्य में मुख्यतः भवन निर्माण में पत्थर, ईंटें व लकड़ी का प्रयोग किया जाता था, स्तम्भ ऊपर से पतले व नीचे से मोटे, चौड़े होते थे जबकि राजपूत वास्तुकला में छतें चपटी व पटावदार, नक्काशीदार पतले, छोटे व चौकोर स्तम्भ, तोड़ों पर आधारित छज्जे, दरवाजे सादे व आंगन सादे होते थे।

मध्यकाल में मुस्लिम सत्ता की स्थापना के साथ ही मध्यकालीन भवनों में मुस्लिम स्थापत्य शैली का प्रभाव दृष्ट्व्य होने लगा। अतः मध्यकालीन भवनों में हिंदू–मुस्लिम स्थापत्य शैली का प्रभाव पाया जाता है। पर्सी ब्राउन ने इस नवीन कला को ''इण्डो–इस्लामी'' कला कहा है।[50] इस शैली की अपनी विशेषताएँ थीं यथा इमारतों में गुंबदों का होना, विशाल मेहराबदार दरवाजे, ऊँची पीठ वाली इमारतों का निर्माण, दीवारें मजबूत व चौड़ी बनाई जाती थी, डॉटदार छतों का निर्माण व

अलंकरण का प्रावधान भी होता था। इस प्रकार की विशेषताएँ शाहाबाद दुर्ग के कुछ भवनों में भी देखी जा सकती हैं।

(A) बाला किला :–

दुर्ग की सबसे भव्य व सुदृढ़ इमारत है बाला किला, यह दुर्ग के ठीक मध्य में स्थित है। यह चारों ओर से ऊँची–ऊँची प्राचीर से घिरा है। सुरक्षा की दृष्टि से इसकी प्राचीर इतनी ऊँची है कि बाहर से कोई आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता है। इसका मुख्य प्रवेश द्वार करीब 20 फीट ऊँचा व 12 फीट चौड़ा है, ये द्वार सागवान की लकड़ी से निर्मित तथा कलात्मक दृष्टि से भी आकर्षक है। इस द्वार के ऊपर तीन मंजिला बरामदे बने हैं। सबसे नीचे खम्भों पर टिका बरामदा है जिसमें एक ओर हनुमान जी की प्रतिमा लगी हुई है, वही पास में ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ लगी हैं वहाँ भी बरामदेनुमा कमरे बने हैं। सबसे ऊपर की मंजिल में जो कमरा बना है, उसमें चार दरवाजे हैं इसकी ऊँचाई अधिक होने के कारण यहाँ से किले को चारों और से देखा जा सकता है। बाला किले के चारों ओर करीब 12 फीट ऊँची चाहर दीवारी निर्मित है। इसके अन्दर पिछले हिस्से में 15 से 20 फीट लम्बाई व चौड़ाई का एक आयताकार कुण्डनुमा आकृति का स्थान बना है सम्भवतः यह पानी का टांका होगा। वही दूसरी ओर एक बड़ा–सा चबूतरा बना है जनश्रुति है कि बाला किले का उपयोग जौहर स्थली के रूप में भी किया जाता था, ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इससे बाहर निकलते ही एक समान आकार वाले साधारण से कई भवन बने हुए हैं ये सैनिकों के आवासगृह थे। अब इनकी छतें टूट चुकी हैं दीवारे भी जर्जर अवस्था में हैं।

(B) कठमहला :–

दुर्ग की प्राचीर के किनारे पर बना कठमहला अपनी स्थापत्य कला व सुदृढ़ता के लिए अपनी एक अलग पहचान लिए हुए है। इसकी छतों के निर्माण में एक विशेष प्रकार की लकड़ी का प्रयोग किया गया है जो अभी भी इतनी मजबूत है कि छत का भारी भरकम बोझ इतने वर्षों से उठाए है। इस महल की लकड़ी की छतों पर की गई नक्काशी जिसमें अधिकांश ज्यामितिय आकार, नक्काशी वाले ललित स्तम्भ, मेहराबों की श्रृंखलाओं के पीछे दीर्घाएं परवर्ती राजपूत कला पर मुगल शैली

के प्रभाव वाले अलंकरण, स्तम्भों पर फूल पत्तियों व मालाओं के लुभावने चित्रांकन, कठमहला को विशिष्ट बनाते हैं। वर्तमान समय में यह काफी हद तक नष्ट प्रायः हो गए हैं, पर इस जर्जर स्थिति में भी इसने अपनी आकर्षकता को नहीं खोया है।

इसकी बनावट इस प्रकार की है जिससे पहाड़ी के नीचे से आने वालों को देखा जा सकता है। इसके पीछे सघन वनों वाला जंगल है, जिसमें जंगली जानवरों का भय भी बना रहता था। ऐसा माना जाता है कठमहला का उपयोग शिकार करने के लिए भी किया जाता था। इसमें निर्मित खिड़कियों से जंगल में दिखाई देने वाले जानवरों पर निशाना साधने में आसानी रहती होगी।

(C) राज दरबार :–

राजदरबार शाहाबाद दुर्ग की सबसे आकर्षक अलंकरण वाली इमारत है। दरबार कक्ष का बरमदा लगभग 35 फीट लम्बा व 20 फीट चौड़ा है यह बरामदा 36 अलंकृत स्तम्भों पर टिका है। जिसमें आगे की ओर 9 स्तम्भ दो–दो के जोड़े में अर्थात् 18 स्तम्भ व इसी प्रकार के 9 स्तम्भों की दोहरी श्रृंखला बराबदे के मध्य में स्थित है। ये स्तम्भ पीठिका (Base) से शीर्ष (Capital) तक एकाश्म (मोनोलिथिक) पद्धति से निर्मित है। इनके शीर्ष (Capital) कमलाकृति से निर्मित हैं। स्तम्भों के मेहराबों पर बहुत ही आकर्षक घुमावदार नक्काशी की गयी है। स्तम्भों व मेहराबों पर लता, बल्लरियाँ, फूल, पत्तियाँ आदि का बहुत ही बारीक अंकन किया गया है। इनकी बनावट से राजपूत स्थापत्य शैली का बोध होता है।

बरामदे की आन्तरिक भित्तिका पर छोटी आकृति की अलमारियाँ निर्मित हैं जिनके ऊपर ताकें (छज्जे) हैं। इस भित्तिका पर अलंकरण स्वरूप विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ यथा–हाथी की सवारी, ढोल–नगाड़े बजाते लोग, पशु–पक्षियों के चित्र आदि का अंकन किया गया है। बरामदे के भीतरी भाग में एक कक्ष निर्मित है। कक्ष में राजा के बैठने के लिए एक मंच के समान स्थान निर्मित है, बाकी जगह रिक्त है। सम्भवतयाः इस कक्ष का उपयोग गुप्त मन्त्रणा कक्ष के रूप में किया जाता होगा।

दरबार कक्ष की छत पर भी क्रमशः दो कक्ष निर्मित है, जिनमें एक कक्ष में एक झरोखा निर्मित है जो बाहर की ओर खुलता है। बाहर खुला मैदान है, जिसमें एक विशालाकार चबूतरा निर्मित है।

दरबार भवन ने ठीक पीछे की ओर शास्त्रागार स्थित है, जिसमें कुछ वर्षों पूर्व तक भी जिन्दा बारूद व लोहे के गोले देखे जाते थे। शास्त्रागार की इमारत में गोदामनुमा कक्ष बने हुए हैं तथा नीचे की ओर तलघर निर्मित हैं। इनमें बहुत अंधेरा रहता है तथा इनके अन्दर जाने के लिए एक छोटा सा द्वार है जिसमें नीचे उतरने हेतु सीढ़ियाँ निर्मित हैं। यहाँ अभी तक जला हुआ बारूद मौजूद है।

(D) खांडेराव नवलसिंह की हवेली :–

राधाकृष्ण मंदिर के ठीक सामने यह हवेली स्थित है। इस हवेली का निर्माण खांडेराव नवलसिंह के द्वारा करवाया गया था। खांडेराव नवलसिंह नामक ब्राह्मण नरवर के राजा के सेनानायक का पुत्र था। उसने शाहाबाद का परगना हथिया कर अपना स्वतंत्र राज्य बना लिया था। तब कोटा महाराव भीमसिंह ने उसे भी हरा दिया और शाहाबाद को जीत लिया था।[51]

हवेली के मुख्य प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर एक बरामदानुमा कक्ष निर्मित है। इस बरामदे में लगे स्तम्भों पर फूल, पत्तियाँ, लताओं आदि का अलंकरण किया गया है। बरामदे और मुख्य प्रवेश द्वार के ऊपर लगे छज्जे भी आकर्षक रूप से अलंकृत है। मुख्य द्वार से अन्दर प्रवेश करने पर एक बड़ा सा बरामदा निर्मित है जो कि 10 स्तम्भ व 2 अर्द्धस्तम्भ से सुशोभित है, इन पर की गई नक्काशी भी आकर्षक है।

बरामदे के दोनों ओर दो कक्ष निर्मित है। आगे खुला आंगन है, जिसमें 6 फुट लम्बा व 4 फुट चौड़ा एक जल कुण्ड निर्मित है। इस जल कुण्ड में प्राकृतिक रूप से पानी आता है, इस कारण इसमें सदैव पानी रहता है। आंगन में पीछे की ओर भी बड़े–बड़े दो अन्य कक्ष निर्मित हैं जिनके निकट हवेली की द्वितीय मंजिल पर पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ निर्मित है। द्वितीय मंजिल के पिछले हिस्से में दो कक्ष व आगे मुख्य द्वार के ऊपरी हिस्से में बड़े से दो बरामदे निर्मित है। जिनमें लगे द्वार व खिड़कियों के चौखट पत्थर पर नक्काशी कर बनाए गए हैं, जो अत्यन्त आकर्षक लगते हैं। यहीं आगे की ओर एक छतरी की आकृति में झरोखा निर्मित है, जिसमें एक साथ दो या तीन व्यक्ति ही खड़े हो सकते हैं। इसमें छोटे–छोटे छः स्तम्भ लगे

हैं, जिनकी अलंकृत मेहराबें व छतरी के ऊपरी हिस्से पर झुके हुए छज्जों का आकर्षण देखने योग्य है।

नवलसिंह की हवेली के नाम से जानी जाने वाली यह पुरातन हवेली लगभग जर्जर अवस्था में है। इसके अलंकृत दरवाजे व खिड़कियाँ चोरी जा चुके हैं, तथा अन्य भाग भी जीर्ण होता जा रहा है।

(E) कचहरी :–

राजदरबार से कुछ दूरी पर निर्मित कचहरी भवन दुर्ग की बड़ी इमारतों में से एक है। कचहरी के बाहरी ओर छोटे बड़े चार–पाँच चबूतरे निर्मित हैं, जो लगभग भग्न अवस्था में है। इसके सामने के भाग में बड़ा सा बरामदा निर्मित है, जिसमें 16 स्तम्भ लगे हैं। इनके मेहराबों की स्थापत्य शैली साधारण सी है। बरामदे के दाहिनी ओर एक बड़ा कक्ष निर्मित है, जिसमें पूरे कक्ष में छोटी बड़ी आलेदार अलमारियाँ निर्मित हैं जिनका उपयोग दस्तावेजों को रखने हेतु किया जाता होगा। इस कक्ष के नीचे निर्मित तलघर में दो कक्ष निर्मित हैं, इनमें पहुँचने के लिए एक छोटा सा द्वार बना है, जिसमें नीचे की ओर सीढ़ियाँ निर्मित है। इन अंधेरे तलघर कक्षों में अब चमगादड़ों का वास है। सम्भवतया इनका उपयोग कीमती दस्तावेज रखने के लिए किया जाता होगा।

बरामदे के बाँयी ओर भी एक कक्ष इसी प्रकार से अलमारियों युक्त निर्मित है। इस कक्ष के निकट से छत पर पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ निर्मित हैं। यहाँ से छत पर पहुँचने पर भवन के ऊपरी भाग में भी क्रमशः दो कक्ष निर्मित हैं, जो साधारण तरीके से निर्मित है। ये कक्ष छत के दोनों छोर पर निर्मित है, इनके बीच के हिस्से में सामने की ओर लगभग 6 फीट ऊँची दीवार है जिसमें 8 खिड़कियाँ निर्मित है। यहाँ से छत पर जाने के लिए जो सीढ़ियाँ निर्मित थी वो लगभग टूट चुकी हैं। यहाँ से दुर्ग की कई इमारतों को देखा जा सकता है। जीर्णोद्धार व सार सम्भाल के अभाव में इस इमारत की स्थिति जीर्ण–शीर्ण होती जा रही है। बाहरी हिस्से में काँटेदार झाड़ियाँ उग चुकी हैं, जिनसे यहाँ तक पहुँचना भी मुश्किल सा हो गया है।

शाहाबाद दुर्ग में अन्य बहुत सारी इमारतें व महल हैं यथा सैनिकों के आवासगृह, अन्नागार, हवेलियाँ, रनिवास इत्यादि इनमें से ज्यादातर तो जर्जर अवस्था

में है, किन्तु कुछ अभी भी ठीक स्थिति में है। दुर्ग में छोटे बड़े कई गुप्त मार्ग हैं, जो दुर्ग से बाहर अन्यत्र जाकर खुलते हैं। किवदन्ती है एक दो गुप्त मार्ग ऐसे सुरंगनुमा निर्मित है जो यहाँ से जाकर मध्यप्रदेश की सीमा में निकलते हैं। सम्भवतया इनका उपयोग आपातकालीन परिस्थितियों के लिए किया जाता होगा।

(viii) दुर्ग की छतरियाँ :–

किले के पिछले हिस्से में क्षार बाग छतरियाँ बनी हुई हैं। जिस स्थान पर दाह संस्कार होता है, वहाँ उस शासक की स्मृति में छतरी या चबूतरा बनाने की पुरानी परम्परा रही है। इस स्मारक का निर्माण शासक के पौत्र द्वारा किया जाता था। ऐसे स्थान को नगर या कस्बे में 'क्षार बाग' के नाम से जाना जाता है। राजस्थानी भाषा की विविध बोलियों में इसे क्षारबाग कहते हैं। विद्वानों ने इस क्षारबाग के शाब्दिक व ऐतिहासिक अनुमान लगाकर अपने निष्कर्ष निकाले हैं लेकिन अन्त में यही निर्णय निकला कि 'जीवन का सार' अर्थात् 'मृत्यु' होने से ही इस शब्द की उत्पत्ति हुई। दुर्ग में बाला किले के निकट बनी ये छतरियाँ किले में आने वालों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं तथा देखने को मजबूर कर देती हैं।

इस स्थान पर कुल 10 से 12 छोटी बड़ी छतरियाँ निर्मित हैं जिन पर पूर्व में शिवलिंग रखी हुई थीं, जो समय के साथ लोगों द्वारा नष्ट कर दी गई, अन्यथा हटा दी गई। इन छतरियों के निर्माण में भूरे, लाल, पत्थरों का प्रयोग किया गया है तथा सभी छतरियों के नीचे चबूतरे बने हुए हैं। इनमें 6 बड़ी छतरियाँ आगे बनी हैं तथा बाकी छतरियाँ पीछे की ओर निर्मित हैं जो सम्भवतः बाद में निर्मित हुई प्रतीत होती हैं। इनकी बनावट वर्गाकार है।

ये छतरियाँ राजपूत स्थापत्य शिल्प का बेहतरीन नमूना हैं। इनके स्थापत्य शिल्प पर मुगल स्थापत्य की छाप दिखाई देती है। छतरियों पर पशु–पक्षी व लता–बल्लरियाँ उत्कीर्ण है। कुछ छतरियों पर पाषाण पदचिन्ह भी बने हुए हैं, जिनके साथ शंख, चक्र, भाला इत्यादि चिन्ह भी उत्कीर्ण किए गए हैं। बीच वाली छतरी में आगे की तरफ एक दोहा शिला पर उत्कीर्ण है परन्तु समय के साथ यह टूटा–फूटा दिखाई पड़ता है इसे स्पष्ट रूप से पढ़ पाना सम्भव नहीं है।

पुरातत्व की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण इस ऐतिहासिक धरोहर की स्थिति आज विचारणीय है। पुरातत्व विभाग द्वारा इनकी मरम्मत कराई जाए तो ये वापस अपने आकर्षक स्वरूप को प्राप्त कर सकती है।

दिसम्बर 2010 में मनरेगा के द्वारा यहाँ सफाई कार्य कराया गया था जिसमें हुई खुदाई के दौरान कई तरह की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक वस्तुएँ जिनमें कई पाषाण मूर्तियाँ, शिलालेख, पत्थर की चक्की के पाट, पत्थर के गोले, अनाज रखने के बर्तन व अन्य कई प्रकार की वस्तुएं प्राप्त हुई हैं।

फरवरी 2011 में शाहाबाद फेस्टिवल का आयोजन भी दुर्ग में किया गया था, जिसमें अन्य राज्यों के विद्यार्थियों द्वारा भी शाहाबाद दुर्ग का भ्रमण किया गया था। इस उत्सव के दौरान दुर्ग में स्थित नवलबाण तोप को भी बारूद भरकर चलाने का प्रयास किया गया था। यह शाहाबाद दुर्ग के लिए एक ऐतिहासिक क्षण था। इसके बाद पुनः प्रशासन द्वारा शाहाबाद दुर्ग की सुध नहीं ली गई। सार सम्भाल व देख रेख के अभाव में वापस यहाँ स्थित इमारतों व महलों में पेड़, पौधे व कांटेदार झाड़ियाँ उग आए हैं, जिसके कारण कुछ भवनों में तो अन्दर जाकर उन्हें देख पाना भी असम्भव सा हो गया है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से यह दुर्ग इतना विस्तृत है कि एक दिन में इसे पूरा देख पाना भी सम्भव नहीं है। इसे हम शाहाबाद दुर्ग का दुर्भाग्य ही मान सकते हैं कि इतने विशाल क्षेत्रफल में फैले इसने मजबूत व आकर्षक महल, भवन, इमारतें, मन्दिर आज वीरान होकर काल के क्रूर प्रहार को झेल रहे हैं। यह पुरातात्विक अमूल्य धरोहर अपनी ऐतिहासिकता के साथ राजस्थान के मानचित्र पर एक बिन्दू मात्र बनकर रह गयी है।

(2) नाहरगढ़ दुर्ग :–

नाहरगढ़ बारां जिले के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। यह दुर्ग बारां–शाहाबाद मार्ग पर भंवरगढ़ ग्राम से 20 किलोमीटर दूर भंवरगढ़ गुना–मार्ग पर, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित है। नाहरगढ़ के दुर्ग का निर्माण उत्तर मुगलकाल में हुआ था। इसका निर्माण ईस्वी 1712 में नाहरसिंह राठौड़ के पुत्र कुतुबुद्दीन ने करवाया था जिसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था।[52] लोकमान्यता है

कि औरंगजेब ने आक्रमण कर नाहरसिंह का धर्म परिवर्तन कर उसका नाम नेकखान रख दिया था। शिवाजी ने इसका विरोध किया और यहाँ आक्रमण किया। नेक बाबा का वध यहीं पर हुआ था। इस स्थान पर आज भी नेक बाबा की मजार स्थित है।

यह दुर्ग कोटा राज्य के दक्षिण में स्थित है, जो कि मराठों की सीमा को छूता था। अतः सर्वप्रथम कोटा राज्य को मराठों के आक्रमण का प्रहार सहना पड़ा। दुर्ग का किलेदार नाहरसिंह राठौड़ था। जो बाद में मुसलमान हो गया तथा स्वयं को मुगल बादशाह का सूबेदार मानता था। वह कोटा के महाराव की अधीनता स्वीकार नहीं करता था। नाहरसिंह राठौड़ ने अपना नाम भी बदलकर नाहर खाँ रख लिया था।[53]

कोटा महाराव दुर्जनसाल ने मराठा सरदार पिलाजी से एक गुप्त संधि की थी जिसमें यह निश्चित किया गया कि नाहरगढ़ का किला उन्हें दिलवाया जाए। इसके उपलक्ष्य में वे पिलाजी जाधव को एक लाख, पचास हजार रुपये नकद तथा मराठा सेना का सारा खर्च वहन करेंगे। पिलाजी जाधव ने ऐसा ही किया।

1737 में मुगल बादशाह मोहम्मद शाह रंगीला ने जयपुर बून्दी व कोटा के नरेशों को मराठों के विरूद्ध निजाम की सहायता के आदेश दिए। परिणामस्वरूप कोटा के महाराव दुर्जनसाल सेना सहित निजाम की सहायता को रवाना हुए परन्तु मराठों ने उन्हें बीच रास्ते से ही वापस लौटने पर विवश कर दिया। बाजीराव पेशवा ने दिल्ली को लूटने के विचार से पूना से प्रस्थान किया तथा मालवा होते हुए वह कोटा राज्य में घुसा। उस समय बाजीराव ने कोटा नरेश दुर्जनसाल से रसद की मांग की थी, मराठों के प्रकोप से बचने के लिये दुर्जनसाल ने रसद सामग्री भिजवा दी तथा मराठों ने 1739 से 1740 के मध्य कोटा से 81351 रूपये छः किस्तों में लिये।[54]

कोटा नरेश दुर्जनसाल ने बाजीराव से नाहरगढ़ का किला छीनकर कोटा राज्य को देने का वादा लिया, जिसके उपरान्त पिलाजी जाधव ने नाहरगढ़ पर आक्रमण कर, नाहरगढ़ का दुर्ग महाराव के सुपुर्द कर दिया तथा नाहर खाँ युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।[55]

यह हाड़ौती अंचल के प्रमुख किलों मे से एक है। यह दुर्ग लाल रंग के पत्थरों से निर्मित है। इस किले का मुख्य द्वार उत्तर दिशा में झाँकता है। बाहरी ओर से नाहरगढ़ दुर्ग की स्थापत्य शैली दिल्ली के लाल किले के समान प्रतीत होती है। किले में चारों ओर से ऊँची–ऊँची प्राचीर निर्मित है, जिस पर बुर्ज बने हुए हैं। प्राचीर सामने देखने पर तो बहुत अच्छी स्थिति में दिखाई पड़ती है, लेकिन समय के साथ इसका कुछ हिस्सा जीर्ण होता नजर आता है।

किले का मुख्य प्रवेश द्वार बहुत आकर्षक एवं सुदृढ़ है, जिस पर लकड़ी से निर्मित विशाल द्वार लगे हुए हैं। प्रवेश द्वार के ऊपर एक कक्ष निर्मित है तथा दोनों छोर पर दो सैनिक कक्ष निर्मित है, जिनसे बाहर से आने वालों पर नजर रखी जाती होगी। मुख्य प्रवेश द्वार पर एक शिलालेख है तथा बाईं ओर की बुर्जी पर अरबी लिपि एवं फारसी भाषा में लेख उत्कीर्ण है।

दुर्ग में प्रवेश करने के उपरान्त सामने की ओर बारहदरी निर्मित है। बारहदरी की छत टूट चुकी है, इसके स्तम्भ व मेहराबें राजपूत स्थापत्य शैली से निर्मित हुई जान पड़ती है। वर्तमान में यहाँ राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय संचालित है।

दरवाजे से पश्चिम दिशा में रानी महल निर्मित है, जिसके स्तम्भों पर किया गया अलंकरण आकर्षक है। फूल–पत्तियोंदार अलंकृत इन स्तम्भों से हिन्दू–मुस्लिम स्थापत्य कला का बोध होता है। वर्तमान समय में रानी महल में दूसरा दशक परियोजना नामक सामाजिक संस्था का कार्यालय स्थित है।

बारहदरी के दायीं ओर रंगमंच निर्मित है, जो अब जीर्ण–अवस्था में है। दुर्ग के अन्दर जलापूर्ति हेतु दो बावड़ी एवं एक जल–कुण्ड निर्मित है। इस कुण्ड में किले के बाहर की ओर स्थित जलाशय से गुप्त मार्ग से पानी आता था। कुण्ड में उतरने के लिए सोपान निर्मित है। यह जल–कुण्ड वर्गाकार आकृति में है।

दुर्ग के उत्तरी पूर्वी भाग में आशापाला माता का मन्दिर स्थित है। मंदिर का शिखर नागर शैली से निर्मित प्रतीत होता है। यह शिखर नीचे से ऊपर क्रमशः बड़े से छोटा होता जाता है, जो अत्यन्त सुन्दर व कलात्मक दिखाई देता है। आशापाला माता की प्राचीन मूर्ति किले की दीवार में स्थित है। मन्दिर के गर्भगृह में

दुर्गा जी की श्वेत पाषाण मूर्ति स्थित है। मूर्ति में दुर्गा माता को सिंह पर आरूढ़ दिखाया गया है तथा अपने हाथों में आयुध धारण किए हुए है। यह मूर्ति स्थानीय नागरिकों के सहयोग से स्थापित की गयी है। वर्तमान में इस मन्दिर की देखरेख कमला बाई करती है, जो वहाँ की भूतपूर्व सरपंच है।

मन्दिर के सामने का बरामदा 4 स्तम्भों पर टिका हुआ है। यह बरामदा लगभग 35 फुट के आकार में निर्मित है। किले के उत्तरी दक्षिणी भाग में नेकनाम बाबा की दरगाह है, कहा जाता है कि मराठों के आक्रमण के समय यहाँ पर युद्ध करते समय वे शहीद हो गए थे। इस दरगाह में एक चौकी रखी हुई है जिसका क्षेत्रफल 4x6 फुट है। दरगाह परिसर के बाहर दो बड़े आकार के चबूतरे निर्मित हैं।

दुर्ग की प्राचीर 5 फुट चौड़ी है, जो किसी भी बाहरी आक्रमण को सहन करने की क्षमता रखती थी। दुर्ग के चारों तरफ बुर्ज व सैनिक चौकियाँ बनी हुई हैं। मुख्य प्रवेशद्वार के ऊपरी हिस्से में बायीं ओर एक छतरी निर्मित है ऐसा माना जाता है कि यह छतरी दुर्ग के संरक्षक की है। प्रवेश द्वार के दोनों ओर घुड़साल व सैनिक चौकियाँ निर्मित हैं।

दुर्ग के पश्चिमी भाग में एक जलाशय स्थित है जो किले की प्राचीर से सटा हुआ है, जिसका क्षेत्रफल लगभग 250 बीघा है। रानी महल से जलाशय तक आने के लिए किले की प्राचीर के पास से सीढ़ियाँ निर्मित की गयी है। 2008–09 ईस्वी में इस भाग पर आकाशीय बिजली गिरने के कारण यह भाग क्षतिग्रस्त हो गया था।

दुर्ग के प्रवेशद्वार के पश्चिमी भाग में भारत निर्माण राजीव गाँधी केन्द्र संचालित है। किले की जमीन पर सरकारी व गैर सरकारी लोगों का अतिक्रमण है। प्रमुख समस्या यह है कि आज इनकी देखरेख करने वाला कोई नहीं है। स्कूल के बच्चे महलों में खेलते तथा वहाँ तोड़–फोड़ करते हैं। महलों की सुरक्षा के लिए कोई उचित व्यवस्था नही है।

(3) विलासगढ़ :–

विलासगढ़ बाराँ से 26 किलोमीटर दूर, पूर्व दिशा में तथा रामपुरिया गाँव से 6 मील जंगल में विलास नदी के किनारे है। यहाँ जाने के लिए कोटा शाहाबाद

राष्ट्रीय राजमार्ग नं. 27 पर बस एवं निजी वाहन द्वारा पहुँचा जा सकता है। पार्वती नदी की सहायक नदी विलासी के बायें तट पर एक राजधानी के खण्डहर स्थित हैं। यह स्थान कृष्ण विलास कहलाता है। यहाँ पर एक दुर्ग, कई जैन और हिन्दू मन्दिर तथा एक छोटे से नगर के भग्नावशेष पाए गए हैं।[56]

विलासगढ़ 9वीं से 13वीं शताब्दी के लगभग एक बहुत ही वैभवशाली नगर रहा होगा। गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् यह क्षेत्र भी गुप्त मौखरी, परमारों से होता हुआ खींचियों के पास आ गया। विलासगढ़ दुर्ग का निर्माण 7वीं–8वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य हुआ था। यह दुर्ग 10वीं शताब्दी ईस्वी के आस–पास खींची साम्राज्य का प्रमुख स्थान था।[57] जनश्रुति के आधार पर इस दुर्ग का निर्माण अशोक वर्धन ने करवाया था। स्थानीय नागरिकों के कथनानुसार स्थानीय शासक भैंसाशाह के पास पारस पत्थर था, जिसके कारण मुस्लिम आक्रमणकारियों ने आक्रमण किया। भैंसाशाह के 4 पुत्रियाँ थी। भैंसाशाह की मृत्यु के पश्चात् उसकी पुत्रियाँ उस पारस पत्थर को लेकर 'दह' (गहरे पानी का कुण्ड) में कूद पड़ी। जिसके कारण उस स्थान का नाम 'कन्यादह' पड़ा।

दूसरी जनश्रुति के आधार पर इस स्थान पर गौड़ क्षत्रिय राजाओं का शासन था। विलासगढ़ राजाओं का शिकारगाह था, जिसमें शासक समय–समय पर शिकार एवं सैर–सपाटे (मनोरंजन) करने आते थे। प्राचीन समय में खींची की पुत्री उदलदे कुँवर बाई नामक राजकुमारी इस स्थान पर शिकार के लिए आया करती थी। उस समय मालवा का सुल्तान गयासुद्दीन अपनी सेना के साथ रणथम्भौर जाते समय उस स्थान से निकल रहा था। तब उसका सेनापति उस रूपमती कन्या का सौन्दर्य निहार कर अपने होश हवास खो बैठा और अपने सुल्तान को नजर (भेंट) करने के लिए पकड़ना चाहा। तब वह राजकुमारी अपनी रक्षार्थ चट्टान से विलास नदी में छलांग लगाकर लहरों में विलीन हो गयी। इसलिए यह स्थान इसी नाम से जाना जाने लगा। उस समय राजकुमारी उदलदे विलास के किले में झूला झूल रही थी। इस घटना के बाद दरीया खाँ ने पूरे विलास को लूटा ही नहीं, बल्कि सारे मन्दिरों और किलों को नष्ट कर दिया। आज भी यहाँ शिकारगाह के भग्नावशेष पड़े हुए हैं। यह दुर्ग पूरी तरह से नष्ट हो चुका है। यहां की पुरासम्पदा कोटा, झालावाड़ व बाराँ के संग्रहालय में रखी हुई है।

विलासगढ़ में डेढ़ दर्जन ध्वस्त मंदिरों के अवशेष यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। इसके चारों ओर परतदार चट्टानें फैली हुई हैं। इसे मंदिरों का नगर कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। यहाँ पर जैनधर्म का प्रभाव रहा है इसलिए अनेक जैन मन्दिर आज भी देखे जा सकते हैं। अभी भी यहाँ के प्राचीन खण्डहर 6 किलोमीटर के क्षेत्र में फैले हैं। यहाँ कई मन्दिर, कुएँ, बावड़ियाँ, मूर्तियाँ एवं नदी के किनारे शैलाश्रयों में प्रागैतिहासिक मानव द्वारा बनाए हुए शैलचित्र स्थित हैं। मुख्य रूप से कन्यादह का देवालय, छीपों की चाँदनी, जैन मंदिर, चार खम्बा मंदिर, मसान का ढेर, नेताजी का मंदिर, वराह वेषधारी विष्णु मंदिर, आदि प्रमुख प्राचीन स्थान हैं। मन्दिर इतना नष्ट हो गया है कि इसके असली स्वरूप का केवल गिरे हुए पत्थरों से, दीवारों के कुछ अवशिष्ट अंशों से और गर्भगृह के स्तम्भों से ही अनुमान किया जा सकता है, कि यह शैव मन्दिर था या वैष्णव। इसके गिरे हुए अलंकारित विशाल पत्थर इसकी निर्माण शैली को प्रदर्शित करते हैं। जैन मन्दिर अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में है। इस मन्दिर की विशेषता है कि इसमें तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के लिए गर्भगृह बने हुए हैं। दरवाजे पर एक वर्गाकार आँगन है, जिसके चारों ओर इन गर्भगृहों की पंक्तियाँ स्थित हैं। ये गर्भगृह 8 फीट लम्बा और 8 फीट चौड़ा है। जिसमें एक विशाल तीर्थंकर जैन प्रतिमा स्थित है।

विलासगढ़ से थोड़ी ही दूर एक हिन्दू मंदिर के खण्डहर प्राप्त हुए हैं। पत्थरों के ऊँचे ढेर में मण्डप के चार स्तम्भ खड़े हैं जिन पर पत्थरों की चौखटें भी स्थित हैं। इन स्तम्भों की ऊँचाई, खुदाई, कला स्थिति तथा चारों ओर पड़े हुए पत्थरों से विलीन कला और सौन्दर्य का अनुमान किया जा सकता है।

चार खम्भा मंदिर एक विष्णु मन्दिर है इसके समान स्तम्भ सारे राजस्थान में कहीं नहीं होंगे। विलासगढ़ किले का परकोटा आज भी विद्यमान है। यह स्थान असंख्य मूर्तियों का एक विशाल भण्डार है। ये मंदिर साधारण श्रेणी के नहीं हैं अपितु उच्च कलात्मक स्तर के हैं तथा इनमें लगी हुई मूर्तियाँ खजुराहों के शिल्प वैभव के समान प्रतीत होती है। यहाँ अब भी 25 से 30 ध्वस्त मन्दिरों के टीले तो जमीन पर ऊपर ही गिने जा सकते हैं और भी कितने मन्दिर जमीन में दबे पड़े होंगे।

स्थानीय निवासियों से बातचीत करने पर पता चलता है कि यहाँ अधिकतर मूर्तियाँ चोरी चली गई है। लोगों ने भारी मूल्य में मूर्तियों को विदेशों में बेच दिया है। इन मूर्तियों की सुरक्षा हेतु यहाँ कोई व्यवस्था नहीं है। विलास नदी के किनारे प्रागतिहासिक मानव सभ्यता के प्रमाण मिले हैं। यहाँ लगभग 40 प्रागैतिहासिक गुफाऐं ज्ञात हुई हैं जिनमें से 14 गुफाऐं चित्रित थी।[58] मन्दिरों के जीर्णोद्धार का कोई काम नहीं हो सका है क्योंकि यहाँ यातायात के साधनों की कमी है। केन्द्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा इन प्राचीन मन्दिरों के अवशेषों को राष्ट्रीय स्मारक घोषित कर सुरक्षा व्यवस्था की गई है। विलास गांव में एक छोटा सा अस्थाई संग्रहालय भी बना हुआ है, जिसमें विलास नदी के मन्दिरों से प्राप्त तथा अन्यत्र बिखरी पड़ी लगभग पांच सौ प्रतिमाएँ एवं आकर्षक प्रस्तर खंड सुरक्षित रखे गए हैं। ये सब प्रतिमायें अलंकारिक प्रतिमायें हैं। शिव, विष्णु, सरस्वती, ब्रह्म, नृसिंह आदि देवों की प्रतिमाओं के अतिरिक्त यक्ष, यक्षिणी, द्वारपाल, नर्तकी, नायिका, पशु, विचित्र पक्षी आदि की भी अनेक प्रतिमायें स्थित हैं। कला की दृष्टि से ये सब प्रतिमायें उच्च कोटि की हैं।

दुर्ग की दीवारों के केवल निम्न भाग शेष रह गये हैं। इसके मुख्य दरवाजे के सामने एक हिन्दू मन्दिर के पत्थर पड़े हैं। इसी के पास एक विशाल वाराह भगवान की प्रतिमा है। सम्भव है यह नष्ट मन्दिर वाराह का हो। यह प्रतिमा अटरू से प्राप्त वाराह प्रतिमा से मिलती जुलती है परन्तु इसका आकार बहुत बड़ा है। इस प्रकार की विशाल और सुन्दर वाराह प्रतिमा भारतवर्ष में अन्यत्र शायद कहीं नहीं है। एक नष्टप्राय हिन्दू मन्दिर किले के अन्दर विद्यमान है। अब इस मन्दिर का केवल रत्नगृह शेष रह गया है, जिसकी छत एक ही शिलाखण्ड की बनी हुई है और उसके अन्दर के हिस्से में सुन्दर बेल बूँटे खुदे हुए हैं। इसको छीपों की चाँदनी कहते हैं। यह पता नहीं चला कि इसका यह नामकरण कैसे हुआ।

कोटा और झालावाड़ के राजकीय संग्रहालयों में भी विलास से प्राप्त अनेक आकर्षक प्रतिमाएँ रखी हैं जिनसे ज्ञात होता है कि विलास की मूर्तियां 8वीं–9वीं शताब्दी की हैं। कुछ प्रतिमाएँ आश्रम स्कूल की दीवारों में लगी हैं। कई प्रतिमाओं को आसपास के लोगों ने गांवों के मन्दिरों में रख दिया है। विलास में अब तक कोई शिलालेख तो नहीं मिला परन्तु दुर्ग और नगर तथा मन्दिर के खण्डहरों से

तथा प्रतिमाओं के निर्माण से प्रतीत होता है कि विलास नगर दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में नष्ट हुआ होगा।[59]

(4) रामगढ़ का दुर्ग :–

रामगढ़ बारां जिला मुख्यालय से लगभग 50 किलोमीटर दूर स्थित है। रामगढ़ में हजारों वर्ष पूर्व उल्का पिण्ड गिरा था। पिण्ड के गिरने के स्थान पर झील का निर्माण हुआ तथा आस–पास का भू–भाग ऊपर उठकर पहाड़ी के रूप में परिवर्तित हो गया। जिसे अब रामगढ़ की पहाड़ी कहते हैं।

रामगढ़ का प्राचीन नाम श्रीनगर था। रामगढ़ में पहाड़ियों पर जो एक जीर्ण–शीर्ण दुर्ग स्थित है, वह लगभग चार सौ या पाँच सौ वर्ष का पुराना प्रतीत होता है परन्तु पहाड़ी से घिरे हुए जंगल के बीच जो भण्डदेवरा नामक एक प्राचीन शैवमन्दिर जीर्णावस्था में अब तक खड़ा है उससे पता चलता है कि श्रीनगर दशवीं शताब्दी के आसपास एक समृद्ध नगर होगा।[60]

रामगढ़ दुर्ग खींची साम्राज्य के अन्तर्गत आता था।[61] दुर्ग के नीचे तलहटी में खजुराहो शैली के मंदिर निर्मित हैं तथा एक देवी का मंदिर पहाड़ी पर स्थित है। दुर्ग तथा तलहटी के मंदिर अब खण्डहरों में परिवर्तित हो गये हैं।

(5) कस्बाथाना का किला :–

कस्बाथाना बाराँ–शिवपुरी मार्ग पर मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित है। ऐसा माना जाता है कि यहां सर्वप्रथम आदिवासी लोग आकर बसे थे, इन्होंने कुएँ के पास स्थित प्राचीन बड़ के पेड़ के पास अपने निवास स्थान बनाए। पहले किले व बड़े–बड़े पूलों का निर्माण होता था तो अंधविश्वास के कारण उस निर्माण स्थल पर नर बलि दी जाती थी। जिससे निर्माण कार्य में मजबूती आती थी। उस समय इस प्रकार के अंधविश्वास व जादू टोने का अधिक प्रचलन था। सर्वप्रथम कस्बाथाना में थानासिंह सहरिया नामक व्यक्ति आकर बसा था, उसके आठ पुत्र थे। थानासिंह सहरिया ने दुर्ग निर्माण के समय अपने एक बेटे की बलि दुर्ग की नींव में दी थी। इसी उपलक्ष में गांव का नाम थाना रखा गया।[62] किले के भीतर थानावली के नाम से उसका चबूतरा भी निर्मित है। वस्तुतः थाना पुलिस स्टेशन को कहा जाता है

इसलिए गांव की पहचान के लिए कस्बा विशेषण जोड़ दिया गया और इस स्थान का नाम कस्बाथाना रख दिया गया।

दुर्भाग्यवश कस्बाथाना दुर्ग के निर्माताओं के बारे में प्रमाणिक जानकारी का अभाव है। जनश्रुति के आधार पर कस्बाथाना के किले का जीर्णोद्धार झाला जालिम सिंह के द्वारा करवाया गया था। कस्बाथाना दुर्ग के चारों ओर सघन वन आच्छादित हैं। किले की सुरक्षा हेतु चारों ओर से ऊँची–ऊँची प्राचीर निर्मित है। किले की प्राचीर पर चारों ओर चार तोपें रखी हुई थीं, और दो तोपें नीचे किले के मध्य रखी थीं। किवदंती है कि कोटा महाराव उम्मेदसिंह के जन्मदिन, अनन्त चतुर्दशी तथा दशहरे के दिन, इन दो अवसरों पर या फिर राजा के शिकार के लिए कस्बाथाना आने व यहाँ से शिकार करके वापस जाने पर इक्कीस तोपों की सलामी दी जाती थी। दुर्ग के अन्दर किले व नगर की सुरक्षा के लिए गोला और बारूद के भण्डार निर्मित थे, जहाँ वर्तमान में दुकाने बन चुकी हैं।

आपातकाल में किले से बाहर निकलने के लिए एक गुप्त मार्ग स्थित था, यह मार्ग किले से बाहर जाकर एक कुएँ में निकलता था। किले के चारों ओर खाई बनी हुई है, जिसमें दुर्ग के निकट स्थित तालाब की मोरी से पानी भरा जाता था, इसके पीछे कारण यह था कि दुश्मन चारों तरफ से कहीं से भी किले के अन्दर प्रवेश ना कर पाए। खाई का जल बिल्कुल शुद्ध था। कस्बाथाना किले का किलेदार गुलाब सिंह था, जिसके द्वारा कई बार खाई के पानी में तैराकी प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती थी। जीतने वाले को किले की ओर से पुरुस्कृत किया जाता था।

इसके अलावा दशहरे व होली पर भी नगरवासियों के द्वारा किले में उत्सव का आयोजन किया जाता था। किले के अन्दर व बाहर पत्थर की नालें (होज) बनी थीं जिनमें पानी व रंग भरकर होली खेली जाती थी। दुर्ग के भीतर एक प्राचीन बावड़ी स्थित है जो कि दुर्ग निवासियों के लिए मुख्य जल स्त्रोत थी। यह बावड़ी साधारण शैली से निर्मित है। वर्तमान समय में इसका ऊपरी भाग लगभग टूट चुका है तथा इसके अन्दर स्थानीय नागरिकों द्वारा कचरा आदि डालने से इसमें पानी की आवक बन्द हो गयी है।

अन्तःपुर या रनिवास किले में ऊपर निर्मित था, जिसके नीचे के भाग में सैनिक पहरा देते थे। यहाँ सैनिकों के लिए बाहर बैरक निर्मित थे इन सैनिक कक्षों के भग्नावशेष अभी भी स्थित हैं। रानी महल भी लगभग जर्जर अवस्था में है। इसमें निर्मित कलात्मक झरोखों का बाहरी परिदृश्य देखने योग्य है। कस्बाथाना नगर के चारों ओर नगर कोट बना हुआ था, जिसमें चारों ओर चार दरवाजे थे, यथा–

(1) शाहाबाद दरवाजा (पश्चिम दिशा में)

(2) नदी दरवाजा (पूरब दिशा में)

(3) लुहार दरवाजा (दक्षिण दिशा में)

(4) चमराना दरवाजा (उत्तर दिशा में)।

चमराना दरवाजा दो मंजिला निर्मित था। इसमें ऊपर स्तम्भों पर टिके बरामदेनुमा कक्ष निर्मित थे। इसके स्तम्भों पर भी कलात्मक नक्काशी की गई है जो समय के साथ भग्न अवस्था में है। इसमें बहुत विशाल दरवाजा लगा हुआ था, यह दरवाजा रात्रि 10 बजे बन्द होता था, और प्रातः 4 बजे धानुक (नफील) बिगुल बजाता था तभी दरवाजा खोला जाता था। रात्रि 10 बजे के बाद कोई भी नागरिक यदि किले के बाहर था तो वह बाहर ही रह जाता था। किले के भीतरी गेट पर नौवत खाना निर्मित था। जिसमें प्रातःकाल नगाड़ा, शहनाई आदि वाद्य बजाये जाते थे। यह प्रातः उठने की सूचना होती थी, इसके बाद चहल–पहल शुरू हो जाती थी। रियासतकाल में जहाँ शाहाबाद दरवाजा था अब वहाँ पंचायत भवन निर्मित है। पूरब व दक्षिण में निर्मित दो दरवाजे बिना किवाड़ों के अभी भी मौजूद हैं। नदी किनारे जहाँ शाही परिवारों के निवास स्थान थे वहाँ आज भी मुस्लिम धर्मावलम्बियों की मजारें बनी हुई हैं।

(6) केलवाड़ा का किला :–

बारां–शिवपुरी राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित केलवाड़ा दुर्ग शाहाबाद से 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस दुर्ग का निर्माण कब हुआ, व इनके निर्माता कौन थे इसके बारे में प्रमाणिक जानकारी का अभाव है। शाहाबाद किले से इस किले की अत्यधिक निकटता और ज्ञात ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि दुर्ग का निर्माण शाहाबाद के शासकों द्वारा 8वीं या नवीं शताब्दी में

किया गया होगा।[63] केलवाड़ा का किला एक सुदृढ़ किला है जिसे हम उत्कृष्ट कोटि के स्थल दुर्ग की श्रेणी में रख सकते हैं। यद्यपि वर्तमान में यह दुर्ग भग्न और जर्जर अवस्था में है तथापि इस दशा में भी यह भव्य और गरिमामय प्रतीत होता है। इसमें अन्दर प्रवेश करते ही एक चबूतरा निर्मित है जिसे ठाकुर बाबा का चबूतरा कहते हैं, सम्भवतया यह दुर्ग स्थापना के बाद स्थानीय नागरिकों द्वारा यहाँ बनाया गया है। किले के अन्दर करणी माता का मंदिर है जिसकी नियमित पूजा अर्चना की जाती है। पीर बाबा की एक मजार भी इसके अन्दर स्थित है जिस पर मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग चादर चढ़ाने जाते हैं।

3–4 वर्ष पूर्व प्रशासन द्वारा केलवाड़ा किले का जीर्णोद्धार कार्य करवाया गया था जिससे यह वीरान होने से बचा है, अन्यथा कुछ अमानवीय तत्वों द्वारा इसकी स्थिति दयनीय कर दी गयी थी। लोग इसके पत्थर तक निकाल कर ले गए हैं। इसकी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है, केलवाड़ा ग्राम के बीच में स्थित होते हुए भी इसके रख–रखाव की कोई व्यवस्था नहीं है।

(ब) क्षेत्र के अन्य पुरातात्विक स्थल :–

पुरातन स्थलों को जानने के लिए उसके इतिहास की जानकारी होना अति आवश्यक है। इतिहास एवं पुरातत्त्व में इतना गहरा सम्बन्ध है कि उन्हें एक–दूसरे से अलग करना सम्भव नहीं है। ये दोनों ही विषय अतीत की मानवीय सभ्यताओं के विषय में अध्ययन करते हैं। पुरातत्व इतिहास का अभिन्न अंग है क्योंकि इसके अन्तर्गत मानवीय सभ्यता एवं विकास का क्रमबद्ध अध्ययन प्रागैतिहासिक काल के अविकसित समाज से लेकर विकसित समाज तक किया जाता है।

ग्लीन डैनियल ने उचित ही कहा है (we all are historians, we are all studying the part of man. Manuscripts, Microliths, Megaliths, It is all one) हम सभी इतिहासकार हैं, हम सभी मानव के अतीत का अध्ययन कर रहे हैं। हस्तलिपि, लघु पाषाण उपकरण, वृहत् पाषाणिक समाधियाँ, ये सब भी एक हैं।[64]

इतिहास एवं पुरातत्व दोनों ही मानवीय आधारों पर निर्भर है। इतिहास में भूतकाल के जीवन के विषय में अध्ययन होता है, जबकि पुरातत्व में पुरावशेष एवं उसके मूल्यों का अध्ययन होता है। किसी काल या क्षेत्र के इतिहास के ज्ञान के बिना

उस क्षेत्र में पुरातात्विक कार्य असम्भव हो जाता है। ग्लीन डैनियल पुरासामग्रियों से प्राप्त स्त्रोत को पुरातत्व एवं विभिन्न लिखित स्त्रोत को इतिहास मानते हैं। इतिहास में किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन होता है। जबकि पुरातत्व में किसी क्षेत्र के समाज एवं संस्कृति का अध्ययन पुरासामग्रियों के आधार पर किया जाता है।[65]

(1) सहजनपुर :–

शाहाबाद से करीब 12 किलोमीटर पर सहजनपुर नामक स्थान है। यह नोनेरा ग्राम से 2 किलोमीटर की दूरी पर कूनू नदी के तट पर स्थित है। सहजनपुर काफी पुराना नगर बसा हुआ था। इसकी प्राचीनता यहाँ स्थित 8वीं–9वीं शताब्दी से भी पूर्व में बने शेषशायी मंदिर से सिद्ध होती है। यहाँ शेषशायी नामक प्राचीन विष्णु मंदिर निर्मित है, साथ ही यहाँ अन्य कई मंदिरों के भग्नावशेष यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं जिनके काल–क्रम एवं निर्माण के विषय में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। जनश्रुति है कि 8वीं–9वीं शताब्दी के लगभग सहजनपुर काफी अच्छी स्थिति में बसा हुआ नगर था। कूनू नदी के तट पर स्थित होने से इसकी सामरिक स्थिति भी अच्छी थी।

इसके क्रमिक इतिहास का ज्ञान तो सोलहवीं शती के प्रारम्भ से ही मिलता है। कोटा राज्य के पुराने इतिहास लेखक मुंशी प्रेमचंद के अनुसार इस भू–भाग पर पहले 8वीं शती से धनेड़िया नामक राजपूतों का अधिकार था। उनके अनुसार रणथम्भोर के प्रतापी शासक हमीर के पुत्र जसराज के वंशज सारंगदेव ने सावरगढ़ से आकर 1408 ईस्वी में धनेड़ियाँ राजपूतों से इस भू–भाग को छीनकर अपना राज्य स्थापित किया तथा कूनू नदी के किनारे पर सहजनपुर को अपनी राजधानी बनाया। आगे चलकर जसराज के वंशज मुकुटमणि देव ने सहजनपुर के स्थान पर शाहाबाद को अपनी राजधानी बनाया।[66]

यहाँ स्थित शेषशायी मंदिर में भगवान विष्णु की चतुर्भुजी पाषाण प्रतिमा प्रतिष्ठित है जिसकी ग्रामीण लोगों द्वारा पूजा अर्चना की जाती है। इस मंदिर के अलावा यहां स्थित अन्य मंदिरों के कई कलात्मक स्तंभ एवं मूर्तियाँ जमीन में नीचे दब गये हैं तथा कुछ अवशेष इधर–उधर बिखरे पड़े हैं।

पूर्व में यहाँ महादेव, गणेश, विष्णु, हनुमान, दुर्गा आदि सैकड़ों देवी–देवताओं, गण–गणिकाओं की मूर्तियाँ खण्डित अवस्था में बिखरी पड़ी थी। परन्तु काल के क्रूर प्रहार से वे नष्ट हो गयीं, अन्यथा लोगों द्वारा उठा ली गयी। वर्तमान में यहाँ सिर्फ एक यही विष्णु मंदिर ही शेष बचा है। रियासतकाल में शाहाबाद राज्य की राजधानी रह चुके पुरातन नगर सहजनपुर में अब बस्ती के नाम पर खण्डहर ही शेष बचे हैं। यहाँ पुराने मंदिरों के भग्नावशेष मात्र बचे हैं। क्षेत्र सर्वेक्षण के आधार पर यह स्थान शाहाबाद से अधिक अच्छी बसावट वाला नगर हुआ करता था। यहाँ पड़े मंदिरों के भग्नावशेषों से भी उस समय की स्थापत्य कला का ज्ञान होता है।

पुरातत्व की दृष्टि से महत्व रखने वाले सहजनपुर का केवल नाम शेष बचा है।

(2) पचमढ़ी :–

शाहाबाद से करीब 14 किलोमीटर की दूरी पर स्थित बीलखेड़ा माल ग्राम से कुछ दूर पचमढ़ी नामक गैर आबाद बस्ती के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इस स्थान के कालक्रम के ऐतिहासिक साक्ष्य तो उपलब्ध नहीं है परन्तु जनश्रुति एवं यहाँ की वर्तमान स्थिति के आधार पर कहा जा सकता है कि 8वीं–9वीं शताब्दी में पचमढ़ी एक समृद्ध नगर रहा होगा।

यह स्थान बीलखेड़ा माल ग्राम के जंगलों में स्थित है। यहाँ दूर–दूर तक अब किसी प्रकार की कोई बस्ती नहीं है। पुरातात्विक महत्व के इस स्थान पर पुरातन महल, भवन व मंदिरों के भग्नावशेष हैं जो पर्याप्त जीर्ण–शीर्ण स्थिति में है। यहाँ बिखरे पड़े पत्थरों में कुछ मूर्तियाँ भी हैं, जिनमें शिवलिंग, कई भुजाओं वाली माता की मूर्तियाँ, विष्णु मूर्तियाँ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

पचमढ़ी से मानवकृत चीजों के नमूनों के रूप में पाषाण एवं धातु की बनी हुई चीजें अथवा मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े ही प्राप्त हुए हैं। यहाँ ज्यादातर भवनों की अपेक्षा मंदिरों के भग्नावशेष अधिक संख्या में उपलब्ध हैं। कलात्मक स्तम्भ, टूटी–फूटी मूर्तियाँ, नक्काशीदार पत्थर यहाँ दूर–दूर तक बिखरे पड़े हैं। भव्य अलंकरण वाली ये मूर्तियाँ व भवन तत्कालीन संस्कृति के इतिहास के साक्षी हैं। ये हमें उस समय की स्थापत्य कला व सामाजिक स्थिति का ज्ञान कराते हैं।

मानव के अतीत का सारा अध्ययन अनुसंधान, लिखित और अलिखित साक्ष्यों की व्याख्या पर ही आधारित होता है। इसी व्याख्या के आधार पर हम कुछ अनुमानपरक निष्कर्ष निकाल पाते हैं। प्रत्येक साक्ष्य की अपनी संभावनाएँ तथा सीमाएँ होती हैं। वस्तुतः हमें पचमढ़ी के बारे में कोई लिखित ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हुए हैं, इसलिए यहाँ उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री तथा जनश्रुतियों के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान में खण्डहरों और भग्नावशेषों की नगरी पचमढ़ी अतीत में एक वैभवशाली नगर था जिसका अपना गौरवशाली इतिहास और विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान थी।

यहाँ स्थित राजप्रासाद और देवालयों के खण्डहर इसके स्वर्णिम अतीत की कहानी कहते हुए प्रतीत होते हैं। समय के साथ पुरातात्विक महत्व की यह सम्पदा नष्ट प्रायः होती नजर आ रही है, या तो कुछ हद तक यहाँ स्थित भवन मिट्टी के टीलों में परिवर्तित हो रहे हैं या फिर अज्ञात लोगों द्वारा इनका व्यक्तिगत उपयोग हेतु यहाँ के पत्थर तक ले जाए जा रहे हैं।

(3) बादल महल :–

प्राचीन भारतीय वांग्मयों में प्रासाद के कई प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है यथा कालिदास के नाटकों में सद्म[67], वेश्म[68], सोध[69] प्रासाद[70] आदि का उल्लेख है। इन सभी का तात्पर्य एक बड़े भवन अथवा उच्च वर्ग के प्रासाद के रूप में लगाया जाता है। सामान्यतः राजपरिवार एवं शासक से सम्बन्धित अन्य कर्मचारीगणों हेतु राजप्रासाद होता था, जो कि आम व्यक्तियों अथवा उच्च घरों से भिन्न होता था और इन्हें नगर की प्रमुख विशेषता समझा जाता था। उच्चता विस्तार व रचना इन सभी दृष्टियों से ये अधिक महत्वशाली थे। राजप्रासाद कई मंजिले होते थे। ये शासकीय (राजकीय) सुविधा की दृष्टि से अन्य इमारतों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होते थे।

भारत के अन्य राज्यों की भांति राजस्थान में भी समय–समय पर राजप्रासादों का निर्माण हुआ, जो कि न सिर्फ स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, अपितु तकनीकी दृष्टि से भी ये उत्तम कोटि के है। यथा शाहाबाद नगर में स्थित पुरातन बादल महल एक भव्य व राजसी इमारत है। बादल महल में एक खुला आँगन है, जिसके चारों ओर बरामदे हैं जिसके सुन्दर एवं बारीक नक्काशीयुक्त झरोखे हैं,

जालियाँ भी बंगलादार हैं। वस्तुतः यह सम्पूर्ण संरचना एक भव्य महल की भांति प्रतीत होती है। यद्यपि इस इमारत में काफी टूट फूट है, परन्तु अब भी इस हालत में है कि मरम्मत के द्वारा इसे बचाया जा सकता है।

बदल महल शाहाबाद की विशिष्ट भवन निर्माण शैली एवं प्रस्तर कारीगरी की परिचायक है। इसका प्रवेश द्वार विशाल, भव्य एवं अलंकृत है। दरवाजे के साथ ऊँचे प्लेटफार्म पर यहाँ दोनों ओर बड़ी–बड़ी प्रतिमाएँ लगी हुई थीं। शाहाबाद के निवासी इन्हें अललपंख कहकर पुकारते थे। अललपंख एक पंखयुक्त हाथी है, जो कि अपने चारों पैरों तथा सूंड में पाँच छोटे–छोटे हाथी लेकर उड़ता हुआ दिखाया गया है। ये दोनों मूर्तियाँ अब यहाँ से निकालकर कोटा जिलाधीश कार्यालय में कुछ वर्षों पूर्व स्थापित कर दी गयी है।[71] उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर बादल महल का उपयोग रियासतकाल में शाही परिवार द्वारा आमोद–प्रमोद हेतु किया जाता था। वस्तुतः यह शाहाबाद नगर के बीच निर्मित है, जब दुर्ग से राजा अपने परिवार सहित नगर भ्रमण हेतु आते थे तब इसका उपयोग किया जाता था। यहाँ निर्मित अलंकृत बरामदे, नक्काशी किए गए स्तम्भ तत्कालीन समय की स्थापत्य शैली का बोध कराते हैं।

इसके पास विस्तृत भू–क्षेत्र में एक तालाब स्थित था जो कि वर्तमान में सूख गया है यह भू–क्षेत्र अभी खेल मैदान में परिवर्तित हो गया है, जहाँ स्थानीय बच्चे खेलते हैं। शोधकर्त्ता ने स्वयं 8–10 वर्ष पूर्व तक बादल महल को बहुत अच्छी स्थिति में देखा है, परन्तु वर्तमान समय में लालची लोगों द्वारा इसकी दीवारों को तोड़कर यहाँ से पत्थरों तक को ले जाया जा चुका है। इस पुरातन महल के सौन्दर्य को देखकर मध्यकाल में शाहाबाद की शानो–शौकत का अनुमान लगाया जा सकता है। पुरातत्व विभाग द्वारा इसके जीर्णोद्धार हेतु विशेष कदम उठाकर इस ऐतिहासिक धरोहर को बचाया जा सकता है।

(4) सावन भादो महल, शाहाबाद :–

शाहाबाद के मध्य में बहने वाली सिरसा नदी के बीच में चौहान राजा इन्द्रमन द्वारा सावन भादो महल बनवाया गया था। इन्द्रमन शाहाबाद का अन्तिम प्रतापी चौहान नरेश था। उसने शाहाबाद में अनेक निर्माण कार्य कराए जिसमें सावन

भादो महल प्रमुख है।[72] कहा जाता है कि कलात्मक दृष्टि से यह महल बहुत ही सुन्दर व आकर्षक था। इसके पास एक कुआँ भी है जो वर्तमान में सावन भादो कुआँ नाम से ही जाना जाता है, जिससे शाहाबाद नगर में पेयजल आपूर्ति की जाती है।

इस महल के पास एक सुन्दर फूलों का बगीचा था और एक मन्दिर जिसमें राम–लक्ष्मण व सीता की प्रतिमा स्थापित थी, यहाँ निर्मित था। यहाँ एक विश्राम स्थली भी बनी थी जिसमें रियासतकाल के दौरान कोटा दरबार रुका करते थे। यहाँ और भी अन्य छोटी–छोटी छतरियाँ इस महल के आस–पास बनी हुई थी। 1971 की बाढ़ में ये महल बह गया। परन्तु कुछ छतरियाँ व खण्डहरों के अवशेष अभी भी यहाँ नदी के बीच में बने हुए हैं जो अतीत का स्मरण कराते हैं।

ऐसी जर्जर अवस्था में पहुँचने पर भी इन महलों के स्थापत्य को देखकर लगता है उस समय भी कला के पारखी मौजूद थे, जिन्होंने इतनी अच्छी तरह से पत्थरों को काटकर नक्काशी की हुई है, जो अभी तक काल की गति को झेलते हुए अपना सौन्दर्य बनाए हुए हैं। इन खण्डहरों पर पौधे उग चुके हैं तथा वर्षा के कारण इनके पत्थरों पर काई जम चुकी है। किसी समय नाम से पहचाने जाने वाले सावन भादो महल के अब सिर्फ भग्नावशेष बचे हैं।

(5) टकसाल :–

शाहाबाद नगर के मध्य में जामा मस्जिद के निकट टकसाल स्थित है। इसके निर्माण के विषय में प्रमाणिक जानकारी का अभाव है। जनश्रुति के आधार पर इसका निर्माण लगभग 11वीं या 12वीं शताब्दी में हुआ बताया जाता है।

मध्यकाल में निर्मित हुई इस टकसाल में चाँदी के सिक्के ढाले जाते थे। इसलिऐ इसे चाँदी की टकसाल के नाम से भी जाना जाता है। पूर्व में यहाँ बहुत बड़ी इमारत हुआ करती थी जिसका प्रमाण आज यहाँ स्थित मजबूत दीवारों व दूर तक बिखरे पड़े इसके अवशेषों में देखा जा सकता है।

टकसाल में वर्तमान समय में सिर्फ एक इमारत ही शेष बची है जिसमें बने बरामदे जीर्णावस्था में है। सुरक्षा की दृष्टि से यह चारों ओर से एक सुदृढ़ दीवार से बन्द है। इसके अन्दर एक कुआँ भी है जिसमें अभी भी वर्ष भर जल रहता है।

अन्दर बने बरामदों को खम्भों के साथ बनी दीवारो ंसे कई भागों में बाँटा गया है जिनमें अन्दर प्रवेश करने के लिए छोटे–छोटे द्वार बने हुए हैं। नीचे का फर्श पूरी तरह से खुदा पड़ा है, धन के लालची लोगों द्वारा यहाँ खोद–खोदकर गड्डे कर दिये गये हैं, जिसकी मिट्टी यहाँ बिखरी पड़ी है। दीवारों व स्तम्भों पर वर्षा के कारण काली–काली पपड़ी सी जम गई है।

इसकी छतों के बीच से पत्थर गिरे हुए हैं, जिसमें से होकर वर्षाकाल में पानी का रिसाव होता रहता है। विवेच्य विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि रियासतकालीन इस टकसाल की स्थिति विचारणीय है। इसके आधे से ज्यादा भाग पर स्थानीय लोगों द्वारा अतिक्रमण कर इसमें जानवरों को रखने का स्थान बनाकर इसका दुरूपयोग किया जा रहा है।

(6) थानेदार नाथूसिंह की छतरी :–

शाहाबाद शिवपुरी राष्ट्रीय राजमार्ग पर बनी थानेदार नाथूसिंह की छतरी इस क्षेत्र में अपना एक विशेष महत्व रखती है। थानेदार नाथूसिंह ने 20 सितम्बर 1932 को शाहाबाद तहसील में स्थित सांदरी के जंगलों में महादेव खोह नामक स्थान पर लूट का माल लेकर जाने वाले डाकुओं का पीछा कर उन पर हमला किया था। इसमें एक डाकू मारा गया तथा उनसे सारा माल भी उन्होंने छुड़ा लिया और डाकुओं को वहाँ से भागने पर विवश किया था। लेकिन डाकुओं की गोली से वे स्वयं जख्मी हो गए। 26 सितम्बर, 1932 को उनका निधन हो गया।

उनकी बहादुरी से प्रभावित हो कोटा के महाराव उम्मेदसिंह ने उस समय पुलिस कोष से उनकी इस छतरी का निर्माण कराया। थानेदार नाथूसिंह को किंग्स पुलिस मेडल भारत सरकार से दिलाया, उनके परिवार के भरण–पोषण की राज्य की ओर से व्यवस्था की तथा पढ़ाई पूरी होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र खुमानसिंह को भी थोनदार नियुक्त कराया।[73] साधारण सी दिखने वाली यह छतरी क्षेत्र में शौर्य और वीरता की मिसाल है। स्थापत्य की दृष्टि से हिन्दू स्मारक होने के बावजूद इस छतरी की शिल्पकला में मुगल शैली का मिश्रण स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस छतरी की कुर्सी धरातल से 4 से 5 फीट ऊँची है तथा आधार चबूतरे तक पहुँचने के लिए 5

सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। आधार चबूतरे की लम्बाई एवं चौड़ाई समान है। इस चबूतरे के ऊपर स्तम्भों पर टिकी एक छतरी निर्मित है।

(7) बारह खम्भों की छतरी व स्मारक :–

शाहाबाद नगर से बाहर जंगल की तरफ यहाँ के शासकों द्वारा निर्मित कुछ स्मारक बने हुए हैं। जिनमें विशाल चबूतरे पर ऊँचे–ऊँचे बारह स्तम्भों पर टिकी छतरी प्रमुख है। प्रियजनों की स्मृतियों को संजोकर रखना मानव की प्रकृति रही है, इसलिए प्रागैतिहासिक काल से ही अपने प्रियजनों का शवाधान करने के विविध रूप देखने को मिलते हैं। मिश्र में जहाँ इस भावना ने पिरामिड का रूप लिया, वहीं भारत में अग्निदग्धाः स्मारक[74] स्तूप, चैत्य, समाधि, कब्र, मकबरा और छतरी आदि विविध रूपों में अभिव्यक्ति प्राप्त की।

स्मारक स्थापत्य में छतरी या देवल उल्लेखनीय है, जो किसी व्यक्ति की याद में बनाए जाते हैं। ऐसे स्मारक भवनों का निर्माण वैदिक काल से होता आया है। वैदिक काल में मनुष्य के शव को दफनाकर उसकी समाधि पर तूदाकार इमारत भी बनाई जाती थी। 'शतपथ ब्राह्मण' यह स्पष्ट करता है कि चारों वर्णों के लिए विभिन्न प्रकार का शव–टीला बनाना चाहिए।[75] अतः वैदिक काल में दफनाने की परम्परा थी।

सूत्रकाल में शव को जलाने का उल्लेख मिलता है। 'आश्वलायन गृह सूत्र' में अस्थि–कुम्भ (अस्थि कलश) में शव की भस्म तथा कुछ अस्थियाँ एकत्र कर भूमि में गाड़ देने तथा उस पर ऊँचा टीला निर्माण करने का विवरण आया है।[76] धर्मशास्त्र में भी दाह–संस्कार के चार–चरणों में अन्तिम चरण राख संग्रह, भस्म को कलश में रखना व स्मारक बनाना उल्लिखित है।[77]

फर्ग्युसन के अनुसार राजा या सामन्त की चिता के स्थान, स्मारक या छतरी निर्माण का राजपूती रिवाज मुसलमानों से ग्रहण किया गया। यद्यपि मुस्लिम मकबरा या समाधि के वैभव में राजपूतों को छतरी के रूप में समरूप प्रदर्शन के लिए प्रेरित किया किंतु यह प्रथा भारतीय परम्परा में अत्यन्त प्राचीन काल से रही है।[78] भारत में मुसलमानों द्वारा शव को उत्तर पश्चिम की ओर लिटाया जाता था। मुँह की दिशा पश्चिम (मक्का) की ओर इंगित करती थी। कब्र वर्गाकार या अष्टभुजाकार, मेहराब युक्त प्रवेश द्वारों वाले गुंबदाकार छत युक्त कमरे से घिरी रहती थी। कालांतर

में इन समाधियों अथवा कब्र के ऊपरी हिस्से में ''छतरियों'' का निर्माण होने लगा। अतः छतरियाँ मूल रूप से मृतक समाधियों से सम्बन्धित रहीं हैं।[79]

राजपूत एवं मुस्लिम कला के अन्तर्गत छतरियों की मुख्य भूमिका रही है। इस्लामी स्थापत्य ने छतरियों के विकास के साथ ही कुछ परिवर्तनों के साथ छतरी स्थापत्य को प्रभावित भी किया, किन्तु मंदिर स्थापत्य के औपचारिक रूप ने इस कला को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित किया है।[80] छतरियों की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद है जहाँ कई इतिहासकार इसे मध्यकालीन राजपूती मृतक संस्कारों का एक हिस्सा बतलाते हैं।[81] वही हरमन् गोएट्ज इसे न तो हिंदू और न ही मुस्लिम स्थापत्य से उत्पन्न हुआ मानते हैं, न ही वे इसे 'मध्य एशियाई सासेनियन' कला का हिस्सा मानते हैं, अपितु वे इसे राजपूताना और मध्य भारत की कुछ आदिवासी जातियों की देन मानते हैं।[82]

वस्तुतः छतरियों के निर्माण के पीछे शासकों की अथवा व्यक्ति विशेष की क्या भावना रही होगी, यह प्रश्न अनिवार्य है। सम्भवतः मृत्यु के पश्चात् भी पूर्वजों के बीच बने रहने की कामना, अपने पालक रूप में अथवा धार्मिक भावना से अनुप्राणित हो इन छतरियों का निर्माण किया जाता रहा होगा।

बारह खम्भों की छतरी व यहाँ स्थित अन्य छोटी बड़ी छतरियाँ किसके समय में निर्मित हुई, किसकी हैं इस विषय में जानकारी का अभाव है, इन पर लिखे लेख भी समय के साथ नष्ट प्रायः हो चुके हैं। इनमें से कुछ के अन्दर अभी शिवलिंग स्थापित है, कुछ में पद्चिन्ह पाषाण पर अंकित हैं। छतरियों की भीतरी दीवारों पर पुष्पलताओं का सुन्दर अलंकरण है। इनके छज्जे काफी हद तक टूट चुके हैं, परन्तु स्तम्भ ठीक स्थिति में है। ये छतरियाँ आज काल की गति का शिकार हो गयी हैं।

मध्यकाल के इतिहास में अपना एक विशिष्ट महत्व रखने वाली ये छतरियाँ आज जर्जर अवस्था में है। लोगों द्वारा इन्हें जीर्ण–शीर्ण कर दिया गया है, इनमें लगे पत्थर, कलात्मक खम्भे आदि निकाल लिए गए हैं। इनमें लगे महत्वपूर्ण लेख खण्डित और नष्ट कर दिये गए हैं। कला की इस अपूर्व पुरासम्पदा के समुचित संरक्षण की आवश्यकता है।

(8) धानगढ़ की छतरी :–

शहाबाद चारों ओर से पहाड़ियों की तलहटी में बसा हुआ नगर है। इन पहाड़ों की चोटी पर चारों दिशाओं में चार छतरियाँ क्रमशः धानगढ़ की छतरी, अजयपाल की छतरी, नाहरसिंह की छतरी, व दमदार बाबा की छतरी बनी हुई हैं, जो चार संत महात्माओं की तपो स्थली है। इनका नामकरण उन महात्माओं के नाम पर ही किया गया है।

प्राचीनकाल में शाहाबाद एक अनूठी एवं एक चमत्कारिक नगरी के नाम से विख्यात था। पहाड़ों पर चारों दिशाओं में निर्मित इन छतरियों में धानगढ़ या धानगिरि वाले बाबा की छतरी प्रमुख है। यहाँ पहुँचने के लिए टेड़े मेड़े पहाड़ी रास्ते से जाया जाता है। पूर्व में यहाँ कच्ची सीढ़ियाँ बनी थी परन्तु अधिक वर्षा के कारण समय के साथ ये नष्ट हो चुकी है। अब एकमात्र मार्ग बचा है जिसमें पहाड़ी से चढ़कर ही जाना पड़ता है।

इस छतरी में धानगढ़ बाबा की धूनी (हवन कुण्ड) बनी हुई है। यह साधारण रूप से निर्मित है। इसके नीचे गुफानुमा एक छोटा सा कक्ष है जिसमें एक विशाल चट्टान रखी हुई है। इस चट्टान के नीचे एक गुप्त मार्ग है। लोकमान्यता है कि यह गुप्त मार्ग शाहाबाद के किले में खुलता है। शाहाबाद दुर्ग में कई गुप्त मार्ग बने हुए हैं।

सम्भवतया यह मार्ग किले से आपातकाल में यहाँ सुरक्षित निकलने के उद्देश्य से निर्मित किया गया प्रतीत होता है। यह छतरी इतनी ऊँचाई पर निर्मित है कि यहाँ से शाहाबाद कस्बे की लगभग सभी बड़ी इमारतों को आसानी से देखा जा सकता है। वर्षा ऋतु में यहाँ पहाड़ियों के चारों ओर हरियाली छा जाने पर यह छतरी पहाड़ों के मुकुट के समान प्रतीत होती है।

पाद टिप्पणी

1. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान की सांस्कृतिक परपम्रा, पांचवा अध्याय दुर्ग शिल्प
2. एच.डी. सांकलिया : बिगनिंग ऑफ सिविलाईजेशन इन राजस्थान, ए सेमिनार रिपोर्ट, उदयपुर 1962, पृ. 12
3. भगवतशरण उपाध्याय : भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, दिल्ली, 1991, पृ. 7
4. रामायण : युद्ध काण्ड 3/21, अयोध्या काण्ड 100/68
5. महाभारत : शान्ति पर्व, 86 वां अध्याय, श्लोक 5
6. कौटिल्य : अर्थशास्त्र, 2/3/2
7. विष्णु धर्मोत्तर 2/26/20–88
8. दुर्ग समुद्देश्य, पृ. 199
9. याज्ञवल्क्य 1/321
10. शुक्राचार्य : शुक्रनीति, प्रकरण 6, श्लोक 1
11. पाणिनी : अष्टाध्यायी, 3/1/17
12. लल्लन सिंह : रामायण कालीन युद्ध कला, आगरा, पृ. 196, प्रभुदयाल अग्निहोत्री : पतंजलि कालीन भारत, पटना, 1963, पृ. 188
13. ब्रह्मवैवर्त पुराण : अध्याय 103, पंक्ति 120
14. भुवनदेवाचार्य : अपराजितापृच्छा, पृ. 173
15. लल्लन सिंह : रामायण कालीन युद्ध कला, आगरा, पृ. 190
16. मनु स्मृति, 9/294
17. याज्ञवल्क्य स्मृति : 1/321
18. उत्तर भारती शोध जनरल : वॉल्यूम 7, अप्रेल 196,नृ. 110
19. आर. एल. मिश्रा : दि फोर्ट्स ऑफ राजस्थान, 1985, पृ. 4
20. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग–1, आगरा, 1980, पृ. 541, नारायण सिंह भाटी (सं.) : मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग–1, जोधपुर, 1968, पृ. 23

21. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग–1, आगरा, 1980, पृ. 541, भाटी, नारायण सिंह (सं.) : मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग–1, जोधपुर, 1968, पृ. 308
22. राजस्थान भारती, भाग–17, अंक–2, बीकानेर, पृ. 48–49
23. हरमन गोएट्ज : राजपूत आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, 1978, पृ. 3
24. नारायण सिंह भाटी (सं.) : मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग–1, पृ. 48, भाग–2, पृ. 309
25. हरमन गोएट्ज : राजपूताना एण्ड मुहम्मडन् आर्ट, प्रेसीडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, इलाहाबाद सैशन, 1938, पृ. 333
26. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 161
27. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 195–196
28. वही. पृ. 196
29. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 162
30. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 196
31. वही, पृ. 196
32. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 162
33. वही, पृ. 162
34. वही, पृ. 162
35. वही, पृ. 162
36. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 196
37. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 162
38. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 196
39. वही, पृ. 197
40. वही, पृ. 197
41. बेनीगुप्ता – राजस्थान का इतिहास, 2004, पृ. 118
42. वही, पृ. 118
43. राघवेन्द्र सिंह मनोहर –राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 198
44. अप्रकाशित लेख, बदनसिंह वर्मा, समाज सेवक, शाहाबाद

45. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 163
46. मीनाक्षी कासलीवाल – भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, पृ. 232
47. वही. पृ. 366
48. वही, पृ. 366
49. वही, पृ. 366
50. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर – इस्लामी पीरियड, 1975, बम्बई, पृ. 2
51. बेनी गुप्ता – राजस्थान का इतिहास, 2004, पृ. 99
52. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, 2009, पृ. 84
53. वही, पृ. 44
54. वही, पृ. 44
55. वही, पृ. 44
56. जगतनारायण श्रीवास्तव : कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 17
57. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, पृ. 84
58. वही, पृ. 84
59. जगतनारायण श्रीवास्तव : कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 18
60. वही, पृ. 19
61. मोहनलाल गुप्ता – कोटा सम्भाग का जिलेवार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, 2009, पृ. 74
62. हरिशंकर जी दुबे, कस्बाथाना – मौखिक जानकारी
63. क्षेत्र सर्वेक्षण के आधार पर
64. राकेश प्रकाश पाण्डेय – भारतीय पुरातत्व, 1989, पृ. 11
65. वही, पृ.11
66. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 195–196
67. कालिदास : कुमारसम्भवम्, सर्ग 6, श्लोक 48
68. कालिदास : रघुवंशम्, सर्ग 19, श्लोक 5
69. कालिदास : रघुवंशम्, सर्ग 19, श्लोक 2
70. कालिदास : कुमारसम्भवम्, सर्ग 7, श्लोक 63

71. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 198
72. वही, पृ. 196
73. वही, पृ. 199
74. ऋग्वेद : 10.18.8
75. शतपथ ब्राह्मण : 13.8.3.11
76. आश्वलायन गृहसूत्र : 4 : 5
77. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–4, पृ. 255
78. ई.बी. हैवेल : इण्डियन आर्किटेक्चर लन्दन 1927, पृ. 64
79. गोपीनाथ शर्मा : ऐतिहासिक निबंध, जोधपुर 1970, पृ. 111
80. गोएट्ज हरमन : दी आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, ऑफ बीकानेर स्टेट, ऑक्सफोर्ट 1950, पृ. 64
81. आर. नाथ : झरोखा एन इलस्ट्रेटेड ग्लोसरी ऑफ इंडो–मुस्लिम आर्किटेक्चर, जयपुर, 1986, पृ. 29
82. हरमन गोएट्ज : दी आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, ऑफ बीकानेर स्टेट, ऑक्सफोर्ट 1950, पृ. 64

अध्याय–5

पुरातन जल स्त्रोत

(अ) परिचय :–

जीवन हेतु आवश्यक तत्वों में जल का स्थान सर्वोपरि है। जल प्राकृतिक घटकों में एक आवश्यक व कभी समाप्त नहीं होने वाला संसाधन है। जलीय संरचनाओं के विविध उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्यों में प्राप्त होते हैं यथा दीर्घिका, वापी, कुआ, बावड़ी इत्यादि। भारतीय स्थापत्य में जलीय संरचनाओं को ' सिविल आर्किटेक्चर' के तहत रखा गया है।[1]

हमारी संस्कृति में पूजा अत्यन्त आवश्यक मानी गई है। तीज ज्यौहार हो या जन्म से मृत्यु तक के संस्कार हों, जल पूजा अति आवश्यक मानी गयी है। हमारे शरीर का निर्माण पांच तत्वों से मिलकर हुआ है। इन पांच तत्वों में जल भी शामिल है। हर शुभ संस्कार में जल को अभिमंत्रित किया जाता है। जल के बिना कोई धार्मिक संस्कार सम्भव नहीं है। इतना सब कुछ होने के बावजूद मनुष्य पृथ्वी के गर्भ को छलनी की भांति छेदकर जल निकाल रहा है। हमारे पूर्वज जल का संचय बावड़ी, कुण्ड, तालाब, सागर के माध्यम से करते थे। और उनको उत्तम स्थापत्य के माध्यम से बनाते थे।

प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ बहुत ही उच्च श्रेणी के उन लोगों के उच्च गुणों का वर्णन करते हैं। जिन्होंने अपनी सुविधा के लिए बावड़ियां व कुण्ड बनाकर लोगों की सेवा की। बावड़ियों व कुण्डों का निर्माण उदारवादिता, दयालुता एवं सहयोग भावना के रूप में माना जाता है।[2]

वैदिक साहित्य में एक सूत्र के अनुसार 10 कुएं एक बावड़ी के समान, 10 बावड़ियाँ एक तालाब के समान तथा 10 तालाब एक पुत्र के समान और 10 पुत्र एक वृक्ष के समान होते हैं।[3]

इससे ज्ञात होता है कि जल संचय कितना महत्वपूर्ण है। लम्बी यात्राओं के दौरान लोग बावड़ियों, कुओं तथा तालाबों के निकट अपने विश्राम शिविर लगाते थे और वहीं स्नान भोजन आदि करके यात्रा आगे प्रारंभ करते थे।

पूजा स्थल, पवित्र स्थलों के रखरखाव के अतिरिक्त जनता के उपयोगार्थ बावड़ियों, जल संग्रहण स्थल व कुओं आदि की खुदाई के कार्य में मानव जाति का सेवा भाव निहित होता है। उदयपुर संग्रहालय में विद्यमान सिक्के यह प्रमाणित करते हैं कि लोगों द्वारा पद यात्रियों के लिये बावड़ियों और विश्राम गृहों का निर्माण करवाया जाता था। मध्यकालीन समय में यह परम्परा थी कि राजमाता अपनी जागीर से प्राप्त राजस्व में से बावड़ियों का निर्माण करवाती थी। बून्दी राज्य में अधिकांश बावड़ियां मंदिर व पवित्र स्थलों के निकट बनाईं, जहां भक्त अपने आप को पवित्र करने के लिए स्नान करते थे। बावड़ियों के दोनों ओर विश्राम कक्षों में तथा प्रवेश द्वार पर दीवारों तथा आलियों में गणेश, हनुमान, दुर्गा व महिषासुर आदि की मूर्तियों की स्थापना की गई है। आज भी जब कोई पानी लेने जाता है तो पहले वह विनम्रता से देवता के सामने झुकता है, बाद में आगे बढ़ता है। मूर्तियों की स्थापना जन समुदाय की जल वितरण के सुरक्षित संग्रहण के महत्व को प्रकट करती है। ठहरने के स्थानों पर प्रायः बावड़ियों का निर्माण किया जाता था।

शहरी पीढ़ियां भले ही आराम तलब जिंदगी के चलते तालाबों, कुण्डों व बावड़ियों के महत्व को भूल रही हों पर हमारे पुरखों ने पानी के प्रबन्धन का जो लाजवाब तरीका निकाला था उसकी महत्ता आज भी उसी शिद्दत से कायम है। दुर्भिक्ष के समय भी यह परम्परागत जल स्त्रोत हमारी शरणगाह बनते हैं। समय आ गया है कि हम इन जल स्त्रोतों के महत्व को समझें और जन–जन को पानी की उपयोगिता और भविष्य में जल संग्रहण के बारे में लोगों को जागरूक करें।

जल की महत्ता को स्वीकार करते हुए भारतीय धर्म सूत्रों में जोर दिया गया है कि राजा और प्रजा को तालाब कुएं तथा झीलें बनवानी चाहिए। ऐसे जलाशय जो प्राकृतिक हैं, जैसे झरने, नदियां इनके निकट बस्तियों को बसाया गया है। यथा–कालीबंगा, गिलुण्ड, आहड़ आदि पुरानी बस्तियों के पास नदियाँ रही हैं। अतः यही कारण है कि नदियों के सामीप्य से संस्कृति पनपने में सुविधा रही है।

अर्थशास्त्र में अच्छा प्रशासन उसे कहा गया है जिसमें किसान कृषि के लिए वर्षा पर निर्भर न रहे। ज्योर्तिविद वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ ''वृहतसंहिता'' के प्रासादलक्षणाध्याय में लिखा है, पद्मपत्रों के गुच्छों से बनी छतरियों द्वारा सूर्य की किरणों से रक्षित पानी के तालाब जहां होते हैं, भगवान वहां हमेशा क्रीड़ा करते हैं जलाशय जहां एक ओर सिंचाई के श्रेष्ठ साधन हैं, वहीं दूसरी ओर जन सामान्य तथा पशु–पक्षियों को पेयजल उपलब्ध करवाते हैं।[4]

शाहाबाद क्षेत्र में स्थित ज्यादातर बावड़ियाँ और कुएं सीढ़ियों वाली बावड़ियाँ (स्टेपवेल) हैं। इनमें से अधिकांश में एक ओर ही सीढ़ियाँ निर्मित हैं। कछ बावड़ियों में सीढ़ियों के आगे और मध्य में स्तंभाश्रित मांड या मंडप बने हैं। किन्तु कुछ बावड़ियाँ ऐसी हैं जिनमें दोनों ओर सीढ़ियाँ निर्मित हैं और मध्य में मण्डप बना है। इस क्षेत्र की बावड़ियों और कुओं की यह विविधतायुक्त स्थापत्य सामान्यतः कुछ आश्चर्य उत्पन्न करने वाला और मस्तिष्क में कई प्रकार के प्रश्न उत्पन्न करने वाला है, इन बावड़ियों के निर्माण कार्य को देखकर मस्तिष्क में सहज ही विचार उत्पन्न होता है कि बावड़ियों को इतनी विविधता एवं कई–कई ताकों, छतरियों, मण्डपों आदि से सुसज्जित क्यों बनाया गया?

इस प्रश्न एवं ऐसे कई प्रश्नों के सन्दर्भ सोचने, विचारने एवं तदविषयक शास्त्रों व साहित्य का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि बावड़ियों एवं कुओं का भी देव–प्रासाद की तरह ही भारतीय स्थापत्य कला में महत्व है।

जिस प्रकार देव प्रासाद को भारतीय आध्यात्मिक और दर्शन के प्रसंग में तीर्थ की संज्ञा दी गई है, उसी प्रकार बावड़ियों एवं कुण्डों इत्यादि से युक्त स्थानों को भी तीर्थ स्वीकारा गया है।[5]

जिस प्रकार प्रासाद को देव स्वरूप स्वीकारा जाकर उसे एक विशिष्ट आकृति में निरूपित करने के प्रसंग में भारत में प्रासाद स्थापत्य का उदय एवं विकास हुआ है, उसी प्रकार वापिकाएं कुण्ड इत्यादि का भी भारत में एक विशिष्ट स्थापत्य के रूप में विकास हुआ है जिसका उतना ही महत्व है जितना एक देव प्रासाद का, इसीलिए बावड़ी और कुण्ड के निर्माण के प्रसंग में भी भारतीय स्थापत्य सम्बन्धी प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रंथों में ऐसी व्यवस्थाएं प्रतिपादित की गई हैं जिनके अनुरूप

वास्तुपद विकल्पन, प्राचीन साधन, आयादि षडवर्ग निर्धारित मान या हस्तलक्षण, षडछन्दस विधान इत्यादि के बारे में पूरा विचार करने के उपरान्त ही इनका निर्माण कार्य किया जाये।[6]

(ब) शाहाबाद क्षेत्र के पुरातन जलस्त्रोत :–

शाहाबाद क्षेत्र में स्थित बावड़ियों व कुण्डों के स्थापत्य का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है यहाँ बावड़ियाँ अथवा कुण्डों का निर्माण स्थापत्य शास्त्रों के निर्देशों के अनुरूप हुआ है। राज्य सरकार एवं भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के उनके संरक्षण के प्रति विशेष सतर्कता बरतनी चाहिए, क्योंकि उपेक्षा के कारण इन बावड़ियों की ताकों में प्रतिष्ठित विविध देवी देवताओं की अनुपम मूर्तियां तो गायब हो ही गयी हैं और अब समाज और संस्कृति के शत्रुओं के हाथों उनके कलापूर्ण भागों को भी अपनी अर्थ–पिपासा को शांत करने के लिए क्षत–विक्षत किया जा रहा है जो अपने आप में जघन्य अपराध है। इस प्रकार की ऐतिहासिक धरोहरों की ऐतिहासिकता को बचाने के लिए प्रशासन व समाज दोनों को आगे आकर इनके रख–रखाव की व्यवस्था करनी चाहिए अन्यथा इनका नाममात्र शेष रह जायेगा।

(1) गुलाब बावड़ी :–

शाहाबाद दुर्ग निर्माण के समय दुर्ग के भीतर धांधेल वंशी शासक मुकुटमणिदेव के द्वारा इस बावड़ी का निर्माण कराया गया। इस बावड़ी को गुलाब बावड़ी के नाम से जाना जाता है। किवदंती है कि इस बावड़ी का निर्माण विशेष उपयोग के लिए किया गया था। बावड़ी में नीचे जाने के लिए 100 से भी अधिक सीढ़ियाँ निर्मित हैं, इसका निर्माण बड़े ही कलात्मक तरीके से किया गया है।

बावड़ी के अन्दर कक्ष निर्मित है, जिन पर बड़े ही मजबूत लकड़ी से निर्मित किवाड़ लगे हुए हैं, किवाड़ों पर लगे ताले जल की स्वच्छता के कारण ऊपर से ही स्पष्ट दिखाई देते हैं। कहा जाता है कि इन कक्षों में राजकोष का खजाना रखा जाता था। इनकी विशेषता है कि जल के अन्दर वर्षों से डूबे होने पर भी इन कक्षों के किवाड़ गलते या सड़ते नहीं हैं। किवदंती है कि इन कक्षों में आज भी विपुल धन सम्पत्ति भरी पड़ी है तथा इस खजाने की बीजक शिवपुरी (मध्यप्रदेश) या झालावाड़ में होने की चर्चा चलती है।[7] परन्तु किसी ने इन्हें देखा नहीं है। प्रशासन

द्वारा कई बार गुलाब बावड़ी पर पानी के इंजन लगाकर इसका पानी खाली करने की कोशिश की गई है ताकि खजाने के बारे में जानकारी ली जा सके, परन्तु पानी खाली होना तो दूर इसका जल स्तर तक कम नहीं होता है। इसलिए क्षेत्रवासी इसे 'जादुई बावड़ी' भी कहते हैं। इस बावड़ी के अन्दर एक गुप्त मार्ग भी बताया जाता है जो संकट काल में राजपरिवार द्वारा किले से बाहर निकलने हेतु उपयोग में लाया जाता था।

इसका जल स्वच्छ व मीठा है, किले के निवासियों को पेयजल इसी बावड़ी से प्राप्त होता था। वर्तमान में यह बावड़ी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है, इसकी सीढ़ियां भी लगभग टूटी हुई हैं, जो कक्ष पहले ऊपर से ही स्पष्ट दिखाई पड़ते थे अब वह बावड़ी में नीचे उतरकर जाने पर भी दिखाई नहीं देते हैं। इसमें बड़े–बड़े वृक्ष व घास–फूस उग चुके हैं। बावड़ी के ऊपर लगे खम्बे व पत्थर गिरने के कारण यह बन्द सी हो गयी है।

ऐसा माना जाता है कि धन के लालची लोगों ने भी खजाना प्राप्त करने की लालसा से इसके सौन्दर्य के साथ खिलवाड़ किया है। इसकी मजबूती और जल स्तर को देखकर कहा जा सकता है कि पुरातत्व विभाग द्वारा इसका जीर्णोद्धार कराकर इसे पुनः निर्मित किया जा सकता है। पेयजल उपयोग, पर्यटन एवं पुरातत्व की दृष्टि से यह बावड़ी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(2) अवस्थी जी की बावड़ी :–

शाहाबाद कस्बे से करीब 1 किलोमीटर की दूरी पर निर्मित यह बावड़ी बहुत ही विशाल आकार में निर्मित है, जो कि प्राचीनकाल में गाँव के प्रमुख जल स्त्रोतों में अपना स्थान रखती होगी। इसकी स्थापत्य शैली को देखकर लगता है कि इसका निर्माण किसी शाही परिवार द्वारा करवाया गया होगा। एक अन्य मान्यतानुसार अवस्थी ब्राह्मणों के पूर्वजों द्वारा निर्मित होने के कारण इसका नाम अवस्थी जी की बावड़ी पड़ा है।

बाहर से इस बावड़ी की निर्माण शैली इमारतनुमा प्रतीत होती है। मुख्य द्वार से प्रवेश करने के उपरान्त बावड़ी दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग के मध्य में बावड़ी निर्मित है। इसके चारों ओर बरामदे निर्मित हैं, जिनमें क्रमशः 28 स्तम्भ लगे

हुए हैं। यह स्तम्भ साधारण पद्धति से निर्मित हैं, जिनकी छत पर छज्जे लगे हुए हैं। बावड़ी 15 फीट लम्बी व 8 फीट चौड़ी है। इसके अन्दर भी चारों ओर बरामदे निर्मित हैं, जिनमें क्रमशः 16 स्तम्भ लगे हुए हैं, इनमें पत्थर से निर्मित घाट पानी निकालने हेतु बनाए गए हैं। घाट लगभग जीर्ण स्थिति में हैं।

बावड़ी के द्वितीय भाग में प्रवेश हेतु प्रथम भाग के मध्य में द्वार निर्मित हैं। अन्दर प्रवेश करने पर दोनों ओर क्रमशः 20 स्तम्भ लगे हुए हैं, तथा तीसरी ओर बावड़ी में नीचे उतरने हेतु सीढ़ियां निर्मित हैं। यहाँ से 18–20 सीढ़ियाँ उतरने के उपरान्त एक आयताकार कुण्ड निर्मित है, जो बावडी के प्रथम भाग से जुड़ा हुआ है।

वर्तमान में इस बावड़ी की सीढ़ियाँ जीर्ण हो चुकी हैं, जिनके पत्थर निकले हुए हैं। जीर्णोद्धार के अभाव में यहाँ निर्मित इमारत जर्जर अवस्था में है। बावड़ी की मरम्मत करके इस ऐतिहासिक धरोहर को सुरक्षित किया जा सकता है।

(3) तपसी जी की बावड़ी :–

शाहाबाद की बाहरी सीमा पर तपसी जी की बावड़ी स्थित है।[8] मध्यकाल में निर्मित तपसी जी की बावड़ी स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण बावड़ी है। यहाँ स्थित शिवमंदिर के बाहर उत्कीर्ण शिलालेख के अनुसार उक्त बावड़ी का जीर्णोद्धार झाला जालिमसिंह के द्वारा करवाया गया था।[9]

पुरातन दृष्टि से महत्व रखने वाली यह बावड़ी राजपूत स्थापत्य शैली से निर्मित है। यह वर्गाकार आकृति में बनी हुई है। इसमें नीचे उतरने हेतु जो सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, वह अब लगभग टूट चुकी हैं। बीच में कहीं एक–दो सीढ़ियाँ ही शेष दिखाई देती हैं। बावड़ी में ऊपर की ओर पत्थर पर नक्काशी कर कुछ आकृतियाँ उकेरी गई हैं जो अब स्पष्टतया दिखाई नहीं देती हैं। पानी निकालने के लिए भी ऊपर बने स्थान टूट चुके हैं। इसके ऊपर पत्थर की एक दो शिवलिंग रखी हुई हैं, जो सम्भवतया बाद में यहाँ रखी गई हैं।

उक्त बावड़ी के अलावा यहाँ बगीची में बने पानी के टांके तथा किले वाली पहाड़ी की ढलान पर बने जलकुण्ड तत्कालीन जल स्थापत्य कला के सुन्दर उदाहरण हैं। ज्ञातव्य है कि तपसी जी की बगीची के पीछे की ओर शाहाबाद दुर्ग का

पिछला हिस्सा दिखाई पड़ता है। बीच में घना जंगल है। बावड़ी के समीप बने पानी के टांके अथवा हौज में ट्यूबवैल द्वारा पानी भरा जाता है जिससे यहां चरने वाले जानवरों को पीने का पानी मिलता है। बावड़ी के समीप ही सिरसा नदी बहती है जिसके कारण इस बावड़ी में जलस्तर अच्छा रहता है। इस बावड़ी के पानी से ही बगीचे में लगे पेड़–पौधों को भी सिंचित किया जाता है।

(4) पोखाराम की बावड़ी :–

शाहाबाद नगर के एक सिरे पर जहाँ अवस्थी जी की बावड़ी बनी है, वहीं दूसरे अन्तिम सिरे पर पोखाराम की बावड़ी निर्मित है। इसकी निर्माण शैली आकर्षक है, तथा इसमें वर्षभर पानी रहता है। इसमें नीचे प्रवेश करने के लिए 15 से 18 सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं, नीचे पहुँचने के उपरान्त सीढ़ियों के सामने की ओर द्वि–मंजिला बरामदे निर्मित हैं, जिनमें सामने की ओर स्तम्भ लगे हैं, इनके मेहराबों की स्थापत्य शैली से यह मुगल स्थापत्य शैली से निर्मित हुई प्रतीत होती है, वस्तुतः इसके निर्माण के समय व निर्माणकर्ता के विषय में साक्ष्यों का अभाव है।

सीढ़ियों के मध्य में एक 4 X 4 के आकार में एक चौकी रखी है, जिस पर मुस्लिम समुदाय द्वारा चादर चढ़ाई जाती है। इस बावड़ी में शाहाबाद जामा मस्जिद से निकलने वाले ताजियों को विसर्जित करने की परम्परा रही है। इस कारण इसका पानी अस्वच्छ प्रतीत होता है ।

(5) बड़ी बावड़ी, नाहरगढ़ :–

नाहरगढ़ दुर्ग के आन्तरिक भाग में रानी महल (रनिवास) के निकट एक पुरातन बावड़ी निर्मित है, इसे बड़ी बावड़ी के नाम से जाना जाता है। यह बावड़ी आयताकार आकृति में निर्मित है। इसमें नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ निर्मित हैं, जो लगभग टूट चुकी हैं। इसके ऊपर पानी निकालने के घाट निर्मित हैं।

बावड़ी के निकट ही सोपानों से अलंकृत कुण्ड बने हैं, जिनका उपयोग स्नान करने हेतु किया जाता होगा। इसकी निर्माण शैली को देखकर प्रतीत होता है कि इसका निर्माण दुर्ग निर्माण के समय ही हुआ होगा।

(6) रामद्वारे की बावड़ी :–

शाहाबाद कस्बे से 2 किलोमीटर दूर राजपुर जाने वाले पहाड़ी मार्ग पर बनी यह कलात्मक बावड़ी रामद्वारे वाली बावड़ी कहलाती है। इस बावड़ी के समीप रामद्वारा नामक प्राचीन मंदिर स्थित है। मंदिर तो वर्तमान समय में खण्डहर अवस्था में है, परन्तु इसी के नाम पर यह बावड़ी जानी जाती है। जनश्रुति के आधार पर यह बावड़ी 10 वीं या 11 वीं शताब्दी में निर्मित हुई बताई जाती है। यह वर्गाकार आकृति में बनी हुई है। इसमें बनी सीढ़ियाँ अब टूट चुकी हैं। इस बावड़ी में वर्षभर पानी रहता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है जब शाहाबाद के समस्त जल स्त्रोतों का पानी सूख जाता था तब यह बावड़ी क्षेत्र के लिए एकमात्र जलस्त्रोत बचती थी।

शाहाबाद में कई बार वर्षा की कमी के कारण अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न हुई है, ऐसे समय में यही रामद्वारे की बावड़ी ही ग्रामवासियों के लिए पेयजल स्त्रोत रही है। साधारण सी दिखने वाली इस बावड़ी के समीप रामद्वारा नामक प्राचीन मंदिर जीर्णावस्था में स्थित है तथा कुछ टूटी हुई छतरियों के भग्नावशेष हैं। जो अतीत में इस स्थान की समृद्ध स्थिति का स्मरण कराते हैं।

(7) नगरकोट वाली बावड़ी :–

यह बावड़ी शाहाबाद कस्बे में नगरकोट माता मन्दिर के समीप स्थित है। इस बावड़ी के जमीन से इतनी ऊँचाई पर पहाड़ी पर स्थित होते हुए भी इसका पानी सूखता नहीं है। मान्यता है कि इस बावड़ी का निर्माण नगरकोट माता मन्दिर के निर्माण के समय धांधेल वंशी शासक राजा मुकुटमणि देव द्वारा करवाया गया था। माता मन्दिर पर जाने वाले श्रद्धालु जब थक कर पहाड़ी पर पहुँचते थे तो यही बावड़ी एकमात्र पेयजल का स्त्रोत थी। इसका पानी बहुत मीठा है। यह बावड़ी पूर्व में राजपूत स्थापत्य शैली से निर्मित थी किन्तु अब यह अपने मूलरूप को खो चुकी है। प्रशासन द्वारा जीर्णोद्धार करवाये जाने के कारण यह एक अच्छी स्थिति में है।

शाहाबाद क्षेत्र के प्रमुख जलकुण्ड :–

(1) लक्ष्मण कुण्ड, सीताबाड़ी :–

सीता के नाम से जुड़ा होने के ऐतिहासिक प्रमाण तो पर्याप्त नहीं है परन्तु वर्षों से किवदन्ती चली आ रही है कि हिन्दू देव श्रीराम ने जब लोक अपवाद वशीभूत होकर अपनी पत्नी का परित्याग किया था, तो श्रीराम के अनुज लक्ष्मण, सीता को यहाँ अकेला निर्वासित जीवन जीने के लिए छोड़ गये थे। सीताबाड़ी वन सघन आम्रकुंज के साथ वर्षों से लोक श्रद्धा का केन्द्र बना है। हिन्दू समाज के श्रद्धालु अपने मृतकों की भस्मी यहाँ विसर्जित करते हैं, जो आर्थिक विवशतावश गंगाजी नहीं जा सकते वे भी अस्थियों को यहीं प्रवाहित कर देते हैं।

सीताबाड़ी में कुल सात कुण्ड स्थित हैं लेकिन कुछ महत्वपूर्ण कुण्ड अति शोभनीय है, यही पर इनके मंदिर बने हुए हैं। सबसे विशाल लक्ष्मण कुण्ड है। चारों तरफ पक्के बरामदे होने से यह कुण्ड बहुत ही आकर्षक लगता है। इस कुण्ड में नीचे से प्राकृतिक रूप से जलधारा निकलती है। इसमें स्नान करने के घाट बने हुए हैं तथा कुण्ड आयताकार सोपान के साथ निर्मित है।

विशाल लक्ष्मण कुण्ड में सफेद संगमरमर की छतरी बनी हुई है। वहीं दक्षिण में उत्तराभिमुख मन्दिर निर्मित है, जहाँ लक्ष्मण जी सहित राम परिवार की प्रतिमाएँ हैं। यहाँ वर्षभर अच्छी आवक में पानी बना रहता है, श्रद्धालु यहाँ स्नान हेतु आते हैं। प्रतिवर्ष ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी से ज्येष्ठ शुक्ल छठ तक धार्मिक एवं पशु मेला भरता है, जिसका आयोजन स्थानीय समिति द्वारा किया जाता है। वट सावित्री अमावस्या पर यहाँ के पवित्र कुण्डों में स्नान के लिए जनसमूह उमड़ पड़ता है।

(2) सूरजकुण्ड, सीताबाड़ी :–

सीताबाड़ी स्थित सूरज कुण्ड यहाँ का दूसरा मुख्य कुण्ड है, इसका अपना एक अलग महत्व है। सूरज कुण्ड का पानी बहुत स्वच्छ है जिसमें एक छोटी सी सुई डालने पर भी वह दिखाई दे जाती है। इस कुण्ड की विशेषता यह है कि पानी का स्तर गर्मी में ज्यादा रहता है तथा सर्दी और बरसात में कम हो जाता है। इस कुण्ड में आज तक मछलियाँ नहीं देखी गई हैं। यह कुण्ड पाँच फुट लम्बा व

पाँच फुट चौड़ा है, जिस पर सोपान निर्मित हैं। यहाँ सूर्यदेव की चित्ताकर्षक प्रतिमा है तथा मन्दिर के अन्दर एवं बाहर की ओर कई देवी–देवताओं के चित्र–चित्रित किये गये हैं। प्रवेश द्वार से दायीं तरफ शिवजी का प्राचीन शिवलिंग तथा साथ गणेश जी, पार्वती जी तथा हनुमान जी की प्रतिमा स्थापित है।

कुण्ड में संगमरमर का काम टाइलों पर फूलपत्ती की आकृतियों द्वारा किया गया है। राम सूर्यवंशी थे सम्भवतः यही सोचकर इस सूर्य कुण्ड का निर्माण किया गया था। कुण्ड के प्रवेश द्वार पर संगमरमर की पट्टिका पर पृथक–पृथक दो लेख खुदे हुए हैं, जो हिन्दी भाषा में है तथा इस प्रकार हैं– ''वि. सं. 1974, (20 मई 1917) में जीर्णोद्धार हेतु बहादुर ने 25 रुपये खर्च किए। ''आजाद राज्य, कोटा राजपूताना के समय का शिलालेख है, सूर्यकुण्ड का जीर्णोद्धार 5 मार्च 1975 को हुआ।''

शाहाबाद क्षेत्र के अन्य पुरातन जलस्त्रोत :–

(1) रामगढ़ की झील :–

रामगढ़ बारां मुख्यालय से लगभग 45 किलोमीटर दूर किशनगंज तहसील में स्थित है। रामगढ़ झील मानव निर्मित ना होकर प्राकृतिक है। आज से लाखों वर्ष पूर्व कोई आकाशीय उल्का पिण्ड यहाँ पर गिरा था। जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ झील का निर्माण हुआ।[10] इस झील के चारों तरफ उल्का पिण्ड के गिरने से जमीन की सतह से ऊपर पहाड़ों का निर्माण हुआ तथा जहाँ पर उल्का पिण्ड गिरा वह जमीन की सतह से नीचे होकर झील में परिवर्तित हो गई उल्का पिण्ड के गिरने से बनी यह झील भारत की दूसरी सबसे बड़ी झील है। इस उल्का पिण्ड के गिरने से जो पहाड़ियाँ बनी उन पर 11वीं शताब्दी में राजा मलय वर्मा ने बारीक एवं कलात्मक कटाई कर एक शिवालय का निर्माण करवाया।[11] यह शिवालय झील के उत्तरपूर्व दिशा में स्थित है। इस शिवालय की बाहरी दीवारों पर कामक्रीड़ा की आकृतियां उकेरी गई है जो कि खजुराहों की याद दिलाती है।

(2) कुण्डाखो :–

जैसा कि नाम से ही विदित होता है 'कुण्डा' अर्थात् गहरे जल का कुण्ड, 'खो' अर्थात् घना जंगल। अर्थात् घने जंगल में स्थित गहरे पानी का कुण्ड! यह एक

प्राकृतिक जल प्रपात है जो कि शाहाबाद कस्बे से करीब 2 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इसमें पहाड़ी की चट्टानों में से होकर पानी गिरता है जो नीचे जाकर एक कुण्ड या तालाब का रूप ले लेता है इसकी गहराई के बारे में लोकमान्यता है कि यह 70 हाथी डूबने जितना गहरा है। इसका पानी आगे बढ़कर बहते हुए शाहाबाद की सिरसा नदी जिसका पूर्व नाम महलों वाली नदी था, में मिल जाता है। किवदन्ती है कि कोटा के झाला जालिम सिंह ने मेघसिंह और उसके सामन्तों को कुण्डा खोह नामक स्थान पर भोजन के लिए आमन्त्रित किया और जब वे सब भोजन करने में व्यस्त थे तब जालिम सिंह के सेनापति बड़ोरा के जागीरदार अनवर खाँ ने पीछे से अपनी सेना सहित किले में प्रवेश कर मेघसिंह के सैनिकों को मार कर भगा दिया तथा किले एवं शाहाबाद नगर पर कब्जा कर लिया। तब से यह कहावत प्रचलित हो गई कि ब्राह्मणों ने लड्डुओं के लालच में अपना राज्य गवां दिया। यह ऐतिहासिक घटना इसी स्थान की है।[12] यहीं नीचे की ओर एक प्राचीन शिवलिंग स्थित है जिसके ऊपर गौमुख से पानी गिरता है। यह शिवलिंग काले पत्थर से निर्मित है तथा गौमुख सफेद पत्थर से बना है। पास ही में एक भवन मन्दिर की आकृति के समान निर्मित हैं, जिसमें पत्थर की जीर्ण–शीर्ण कई मूर्तियों के अवशेष पड़े हुए हैं। इसके निर्माण के विषय में प्रमाणिक जानकारी का अभाव है। वहीं दूसरी ओर चट्टानों के मध्य में एक गुहा में गणेश जी की प्रतिमा स्थापित है। जहाँ आज श्री श्रद्धालु पूजा–अर्चना हेतु जाते हैं। यह एक प्राकृतिक गुहा है जिसमें किसी अज्ञात शासक अथवा व्यक्ति द्वारा इस गणेश प्रतिमा की स्थापना की गई होगी। यहाँ वर्षभर चारों तरफ से पहाड़ी की चट्टानों में से झरने गिरते रहते हैं। ग्रीष्मकाल में पानी की कुछ कमी आ जाती है किन्तु पानी हमेशा बना रहता है। चहुंओर पहाड़ियों से घिरे होने के कारण यहाँ हमेशा शीतल वातावरण रहता है।

पाद टिप्पणी

1. पर्सी ब्राऊन : इण्डियन आर्किटेक्चर (इस्लामी पीरियड), बॉम्बे, 1956, 1964, पृ. 3
2. पीताम्बर शर्मा – बून्दी राज्य के ऐतिहासिक स्मारक, 2008, पृ. 138
3. सूरज जिद्दी और विष्णु बहादुर – राजस्थान की बावड़ियाँ, 1998, पृ. 4
4. कु. स्टेला क्रेमरिशः द हिन्दू टेम्पल भाग–1, पृ. 5
5. वही, पृ. 5–6
6. डी.एन. शुक्ल – वास्तुशास्त्र भाग–1 हिन्दू साइंस ऑफ आर्किटेक्चर, पृ. 392
7. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 198, अप्रेल, 2010, द्वि.सं.
8. वही, पृ. 196
9. मंदिर के बाहर उत्कीर्ण लेख के अनुसार
10. मोहनलाल गुप्ता – कोटा संभाग का जिलेवार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 76
11. वही, पृ. 76
12. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, द्वितीय संस्करण, 2010, पृ. 197

अध्याय–6

क्षेत्र के पुरातत्व का महत्व

(अ) पुरातत्व का परिचय :– पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री हमारे इतिहास–निर्माण में बड़ी सहायक हुई है। इससे भारतवर्ष के अनेक तथाकथित अन्धयुगों पर प्रकाश पड़ा है। अनेकानेक संदिग्ध ऐतिहासिक मतों का निश्चित रूप से खण्डन–मण्डन हुआ है। पुरातत्व का महत्व इसी बात से समझा जा सकता है कि यह आज एकमात्र इतिहास ही नहीं रहा वरन् वह एक स्वतन्त्र विषय बन गया है। इतिहास निर्माण में यह शास्त्र हमारे समक्ष दो रूपों में आता है – (1) प्रतिपादक के रूप में और (2) समर्थक के रूप में। प्रथम रूप में, यह उन ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करता है जो हमें अन्य साधनों से विदित नहीं होते। दूसरे रूप में, पुरातत्व हमें किसी नई वस्तु का ज्ञान नहीं कराता वरन् यह अन्य साधनों से ज्ञात किसी न किसी वस्तु का समर्थन करता है।[1]

प्रत्येक देश में इतिहासकार अपनी उन सूचनाओं के लिए पुरातत्व पर आश्रित रहते हैं, जहाँ कि वे पुनः, अतीत में जा नहीं सकते और उस काल का इतिहास लिखना चाहते हैं। विशेष रूप से भारत में तो गत डेढ़ शताब्दियों से पूर्व का समूचा इतिहास अन्वेषकों द्वारा प्राप्त किए गए तथ्यों एवं उत्खननकर्त्ताओं की सामग्री के अध्ययन पर निर्मित है। भारत में विभिन्न स्थलों पर उत्खनन के द्वारा युगों–युगों की भारतीय संस्कृति अपने गौरवपूर्ण एवं आकर्षक स्वरूप को लिए हुए प्रकट हुई है।[2]

पुरातत्व के विषय में आमतौर पर प्रचलित भ्रान्तियों एवं विसंगतियों का कुछ हद तक निराकरण इसकी परिभाषा के विषय में जानकारी प्रदान करके किया जा सकता है। पुरातत्व शब्द के एक से अधिक अर्थों में प्रयोग का प्रचलन रहा है और अभी भी है! इस प्रसंग में ग्लिन डेनिअल के इस कथन का उदाहरण अप्रासंगिक नहीं होगा कि ''विज्ञान, मानविकी, कला आदि शब्दों को सम्बद्ध विषयों के विद्वानों ने ही स्वयं गढ़ा है। विभिन्न अध्येताओं द्वारा निर्मित, विकसित और परमार्जित ज्ञान की ये विभिन्न शाखाएं, इन उपर्युक्त शब्दों में से किसके अन्तर्गत सम्मिलित की जायें, इस प्रश्न का समाधान बहुत–कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि हम इन शब्दों को

आज किस प्रकार परिभाषित करते हैं और इसके पूर्व विगत अतीत में किस प्रकार परिभाषित किया है।''[3]

हिन्दी भाषा में 'पुरातत्व' शब्द अंग्रेजी भाषा के आर्किऑलॉजी (Archaeology) शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रचलित होता है। इसलिए हिन्दी के इस 'पुरातत्व' शब्द का वास्तविक अर्थ ज्ञात करने के लिए अंग्रेजी में इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विचार कर लेना असंगत नहीं होगा। आर्किऑलॉजी शब्द यूनानी भाषा के 'आर्किओस' (Archaios) तथा 'लोगोस' (Logos) इन दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'पुरातन ज्ञान'। लेकिन आजकल पुरातत्व शब्द का उसके शाब्दिक अर्थ से किंचित भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है।[4]

प्रसिद्ध विद्वान डॉ. सांकलिया के मतानुसार ''पुरावशेषों'' का अध्ययन ही पुरातत्व है। "Archaeology Primarilly Means Study of Antiquities" परन्तु कालान्तर में पुरातत्व का विकास हुआ एवं विषय के विकास के साथ ही साथ इसकी परिभाषा में भी परिवर्तन होता गया। बाद में पुरातत्व पुरावशेषों का अध्ययन मात्र न रहकर मानव के अतीत के अध्ययन के रूप में प्रस्थापित हुआ। श्री के.एम. श्रीवास्तव ने पुरातत्व की परिभाषा व्यापक अर्थों में इस प्रकार की है – एक लम्बी अवधि से प्रकृति एवं जलवायु में सुरक्षित मानव के विभिन्न उपकरणों, अस्त्र–शस्त्रों एवं अन्य उपयोगी सामग्रियों के आधार पर मानव के अतीत के विभिन्न चरणों के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन ही पुरातत्व है।[5]

ग्लिन डेनिअल के अनुसार पुरातत्व शब्द का प्रयोग दो प्रमुख अर्थों में किया जा सकता है।

(1) मानव अतीत के भौतिक अवशेषों के अध्ययन, और

(2) मानव के प्रागितिहासिक काल से सम्बन्धित पुरावशेषों के अध्ययन के अर्थ में।

इनमें से प्रथम परिप्रेक्ष्य में पुरातत्व शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ ग्रहण किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रागितिहासिक एवं ऐतिहासिक कालों के पुरावशेषों को सम्मिलित किया गया है।[6]

इस दृष्टि से पुरातत्व के अन्तर्गत पाषाण काल के औजारों से लेकर आजकल के काल–पात्रों तक का समावेश किया जा सकता है।

अभी तक ज्ञात प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व लगभग 3000 वर्षों पहले लेखन कला का सर्वप्रथम विकास सम्भवतः सुमेरिया में हुआ था। इस प्रकार मानव इतिहास का बहुत बड़ा भाग लिपि–ज्ञान से रहित और उसके विकास से पूर्व का है। लिपि का विकास हो जाने पर भी आरम्भ में इसका प्रचलन केवल दजला–फरात, नील तथा सिन्धु और ह्यंग हो नदियों की उपत्यकाओं के क्षेत्र तक ही सीमित था। यही नहीं, इन क्षेत्रों में भी लिपि का प्रयोग कुछ खास तथा विशिष्ट कार्यों के लिए ही होता था।[7]

बदली हुई इन परिस्थितियों के आलोक में पुरातत्व की पुरानी परिभाषाओं में भी संशोधन एवं परिवर्द्धन आवश्यक प्रतीत होने लगे हैं। पुरातत्व की पारम्परिक परिभाषा के अनुसार इसके अन्तर्गत प्रधानतः मानवकृत भौतिक पुरावशेषों और पुरानिधियों का अध्ययन अतीत के इतिहास को समझने के लिए किया जाता है। चाहे ऐसे पुरावशेष पाषाण काल के पत्थर के बने हुए उपकरण एवं औजार हो, या मिट्टी के बने हुए बर्तनों के ठीकरे हो, या मानव द्वारा बनाई गई झोंपड़ी के मात्र स्तम्भ गर्त हों, अथवा वास्तुकला तथा तक्षणकला से सम्बन्धित भव्य एवं महान् कलाकृतियाँ हो।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पुरातात्विक अध्ययन में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री भी सम्मिलित की जाती है, जिसका निर्माता मानव स्वयं नहीं था, उदाहरणार्थ मानव के जीवाश्म एवं मानव कंकाल और इन्हीं के समकालिक जीव–जन्तुओं तथा पादपों के जीवाश्म आदि। इन उपर्युक्त, चीजों का मानव अतीत को समझने के लिये बहुत अधिक महत्व है। ऐसी स्थिति में केवल मानवकृत भौतिक पुरावशेषों के द्वारा मानव–अतीत के अध्ययन को ही पुरातत्व की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।[8]

विगत चार दशकों में भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब पुरातत्व मात्र विभिन्न उपकरणों पुरावशेषों का संग्रह एवं उनका विभक्तिकरण न रहकर, उनके आधार पर मानव के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन जैसे संस्कृतियों की क्रमबद्धता, मानव का जीवनयापन, रहन–सहन, पर्यावरण, पुरास्थलों के

प्रकार, पुरास्थलों पर मानव का निवास काल, विभिन्न उपयोगी प्राकृतिक संपदाओं की प्राप्ति एवं इसके परिप्रेक्ष्य में मानव संस्कृतियों का क्रांतिकारी विकास आदि पर विशेष ध्यान दिया गया है।[9]

वर्तमान समय में भारतीय पुरावेत्ता इन संस्कृतियों जनक 'मानव' के अवशेष खोज निकालने में तत्पर है जिससे विभिन्न काल के मानव एवं उसके क्रमबद्ध विकास के साथ–साथ विभिन्न पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सके।

मानव विकास की कहानी की पूर्ति के लिए विभिन्न अन्य विषयों का सहारा लिया जा रहा है एवं अनेक विषय इस कहानी को पूर्ण करने में पर्याप्त रूप से सहायक सिद्ध हो रहे हैं। अतः डॉ. जयनारायण पाण्डेय ने उचित ही कहा है कि ''पुरातत्व मानव अतीत के उन पहलुओं को उजागर करने का एक अत्यन्त सशक्त माध्यम है जिनके विषय में लिखित साक्ष्यों में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इस कार्य के लिए पुरातत्व को अत्यन्त जटिल एवं परिष्कृत विधियों एवं प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है।''[10]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पुरातत्व से तात्पर्य एक ऐसे विषय से है, जो एक निश्चित ऐतिहासिक काल–क्रम एवं पारिस्थितिकी के परिप्रेक्ष्य में एक सुनिश्चित देश तथा काल के सन्दर्भ में भौतिक पुरावशेषों के आधार पर मानव के सांस्कृतिक आचरण का अध्ययन करता है। साथ ही इतिहास निर्माण में पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री सबसे अधिक विश्वस्त है। मूक होते हुए भी इसमें अच्छे ऐतिहासिक तत्व निहित हैं जो प्रामाणिक हैं।[11]

पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य में संस्कृति का संबोध –

संस्कृति शब्द का प्रयोग बहुधा किया जाता है, जैसे पाषाण कालीन संस्कृति, हड़प्पीय संस्कृति, आदिवासी संस्कृति, उत्तर भारतीय संस्कृति, तमिल संस्कृति, ईसाई संस्कृति आदि। अतः संस्कृति शब्द किसी विशेष समूह के मानव या समाज से सम्बन्धित है।

''संस्कृति, मानव समाज से सम्बन्धित है। मानव समाज में रहकर जीवन यापन करता है। अपने ज्ञान व विचारों का आपस में आदान प्रदान कर सकता है।

पशुओं में इन क्षमताओं का अभाव है। पशु अपने ज्ञान का विस्तार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक नहीं कर सकता। मनुष्य व पशु में अन्तर स्थापित कर पाना विद्वानों के लिए संभव नहीं हो सका है, फिर भी मनुष्य के विचारशील होने के कारण एवं समाज या समूह में रहने के कारण मनुष्य एक सामाजिक प्राणी (पशु) कहा जाता है।

संस्कृति लाक्षणिक व्यवहार (विचार एवं अभिभाषण) द्वारा अभिव्यक्त होती है। इस तथ्य के दो महत्वपूर्ण प्रभाव है, प्रथम ''संस्कृति, विशेष रूप से मानव से सम्बन्धित है, क्योंकि दूसरे पशु विचार एवं अभिभाषण की क्षमता नहीं रखते। संस्कृति विभिन्न प्रकार से अनायास परिवर्तित हो सकती है, जो हमारे पूर्व पीढ़ी से सीखने के अनुमान के विपरीत होगा। द्वितीय, लाक्षणिक अभिव्यक्ति होने से एक समूह के मानव एवं दूसरे समूह के मानव के ज्ञान एवं अनुभव में जल्दी जल्दी विनिमय होगा जो प्रागैतिहासिक काल के परवर्ती कालों तक चलती रहेगी''[12]

पुरातत्व विषय के अन्तर्गत हम किसी विशेष संस्कृति, उसके परिवर्तन एवं संस्कृतियों की भिन्नताओं के कारणों का अध्ययन करते हैं। इन अध्ययनों के लिए हमें संस्कृति के सामान्य लक्षणों का ज्ञान आवश्यक है। संस्कृति के प्रमुख लक्षणों में पद्धति (Pattern) परिवर्तन (Changes), प्रसार (Diffusion), आविष्कार (Invention), आकस्मिक अन्वेषण (Accidental Discovery) एवं ग्रहण करना (Adoptation) है।[13]

पुरातत्व में संस्कृति का अत्यधिक महत्व है, संस्कृति के अस्तित्व के विषय में जानने के लिए अवशेषों एवं सांस्कृतिक व्यवहार का अध्ययन आवश्यक होता है। गार्डन चाईल्ड ने पुरातात्विक संस्कृति की परिभाषा निम्न शब्दों में व्यक्त की है। ''पुरातात्विक सामग्रियाँ मिट्टी, पाषाण, धातु, काष्ट एवं अस्थियों के रूप में प्राप्त होती है किन्तु संस्कृति के रूप में अध्ययन करने पर उनका विश्लेषण ईंट, मृद भाण्ड, उपकरण, खाद्य सामग्री आदि के रूप में होता है।''[14] उत्खनन एवं सर्वेक्षण के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली पुरा सामग्रियाँ तत्कालीन मानव के जीवन यापन में उपयोगी थी। किसी पुरास्थल से अकेले अथवा साथ–साथ प्राप्त होने वाले उपकरण्ण, मृद भाण्ड, आभूषण, कला अवशेष, शवाधान आदि पुरावेक्ता के लिए संस्कृति के रूप में महत्वपूर्ण है किन्तु मात्र एक उपकरण, एक मृद भाण्ड या एक झोंपड़ी किसी संस्कृति का स्वरूप नहीं हो सकती। जब एक प्रकार के पुरावशेष कई स्थानों से प्राप्त

होते हैं, तब पुरावेत्ता के लिए ये संस्कृति का रूप धारण करते हैं क्योंकि ऐसे अवशेष एक प्रकार के मानव समूह से सम्बन्धित समाज को प्रदर्शित करते हैं। होल एवं हाइजर के अनुसार ''एक क्षेत्रीय जन सामान्य की भौतिक सामग्री में जो समानताएँ हैं, वही समानता, भाषा, विचार, सही, गलत, कला, धर्म एवं अन्य अविचारणीय लक्षणों में भी समाहित होगी।''[15]

उत्खनन से प्राप्त पुरा सामग्री के विभिन्न समूहों में विभक्त किया जाता है जैसे पाषाण उपकरण, लौह उपकरण, मृद भाण्ड आदि। इन बड़े समूहों को पुनः विभक्त करने पर उनके प्रकार आदि के विषय में ज्ञात होता है। तदुपरान्त इनका विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन करने पर ही किसी संस्कृति के विषय में जानकारी होती है जैसे प्रागैतिहासिक संस्कृति, आद्यैतिहासिक संस्कृति, उत्तर पुरापाषाण कालीन संस्कृतियाँ हड़प्पीय संस्कृति।

मानव द्वारा प्रयोग में लाई गई विभिन्न सामग्री प्राकृतिक रूप में जमा हो जाती है एवं जमाव से प्राप्त सामग्री मानव क्रिया कलाप के साक्ष्य के रूप में उपस्थित रहती है।

राजस्थान की संस्कृति की आत्मा सरस्वती–दृषद्वती तथा बनास, बेड़च, गम्भीरी आदि नदियों की घाटियों में पाये गये खण्डहरों व उपकरणों में छिपी पड़ी है। इस संस्कृति के निर्माता यहाँ के मूल निवासी, संभवतः भील, मीणा तथा हड़प्पा से विस्थापित जन–समूह हो सकते हैं। इन मानवों ने युगों–युगों के अथक परिश्रम द्वारा नगर योजना एवं तकनीकी ज्ञान को परिवर्द्धित कर विशिष्ट सांस्कृतिक कल्पनाओं तथा मूल्यों का प्रारूप प्रस्तुत किया और धर्म की मान्यता तथा विश्वास, व्यवसाय तथा सामुदायिक जीवन, सत्ता तथा शक्ति आदि तत्वों के बीच एक संतुलन स्थापित किया।[16]

इस अतिप्राचीन और प्रच्छन्न संस्कृति का विकसित रूप, उसके इतिहास के निर्माणाधीन विविध युगों तथा उनके अन्तर्गत स्थापित राज्यों और साम्राज्यों की गतिविधियों में निहित है। इन प्रारम्भिक युगों की लिखित कहानियाँ तो उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु महाकाव्यों, पुराणों, धर्मग्रन्थों तथा अनुश्रुतियों में ऐसे प्रसंग आते हैं जिनके आधार पर प्राचीनतम संस्कृति तथा आने वाले युगों की संस्कृतियों के पारस्परिक

सम्बन्ध, संस्पर्श, अनुयोजन एवं परिवर्द्धन के धुँधले चित्र की परिकल्पना मात्र ही सम्भव है।[17]

संस्कृति मानव समाज से सम्बन्धित है। किसी पुरावशेष को संस्कृति के रूप में अध्ययन करने पर मानव के विभिन्न पहलुओं के साथ–साथ मानव विकास की कहानी परिलक्षित होती है। शाहाबाद भूक्षेत्र की संस्कृति को समझने के लिए यहाँ के शासकों की परम्परा, इस क्षेत्र के त्यौहार, उत्सव, वस्त्राभूषण, धार्मिक गतिविधि तथा कला और साहित्य का अध्ययन आवश्यक है।

इन सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है समय के साथ इन वस्तुओं में हुए बदलाव, पूर्व में उपयोग में ली जाने वाली वस्तुएँ और वर्तमान में उपयुक्त होने वाली वस्तुएँ। जब किसी स्थल पर नवीन प्रकार के अवशेष प्राप्त होने लगते हैं, तो स्वभावतः प्रश्न उठता है कि किस संस्कृति या काल से सम्बन्धित है। या इस स्थल पर इस प्रकार के अवशेष कहां से आये। यदि अन्य स्थलों पर भी पूर्व स्थलों जैसे अवशेष प्राप्त होते हैं तो सांस्कृतिक प्रसार के विषय में सहज ही ज्ञान हो जाता है। किसी स्थल पर यदि किसी संस्कृति का विनाश प्रदर्शित होता है तो विनाश के कारण स्वयमेव या बाहरी स्थलों के निवासियों का इस स्थल पर आगमन के फलस्वरूप हुआ, ज्ञात हो जाता है।

शाहाबाद क्षेत्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में धर्म प्रमुख रहा है। इस क्षेत्र के लोकनृत्य, लोकगीत और विभिन्न उत्सव आदि के बीच आदर्शों की स्थापना में धर्म की मुख्य भूमिका रही है। शाहाबाद भूक्षेत्र सहरिया जनजाति बाहुल्य क्षेत्र होते हुए भी यहाँ सभी धर्म अपनी–अपनी रंगत के साथ प्रेम भाव के खुले स्वतन्त्र वातावरण में फलते–फूलते रहे हैं। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने 'राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है– राजस्थान के शासकों ने कभी भी वनवासियों को अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में बाधक नहीं माना, वरन् अपने अभ्युदय के लिए उन्हें साधक माना। यहाँ तक कि वनवासियों की कई मान्यताओं, विश्वासों और युद्ध–कौशल को अपनाकर उनको अपने निकट लिया। राजस्थान की जनसंख्या में इनके बाहुल्य को सम्मानपूर्वक स्वीकार किया गया है। समूचा राजस्थान मौलिक

संस्कृति की धारा में अवगाहन करता रहा है और आज भी इसकी प्रगति संतोषजनक है।[18]

यहाँ के प्राकृतिक वातावरण ने निवासियों के विकास में भरपूर योगदान दिया है और उन्हें शारीरिक तथा मानसिक रूप से सुदृढ़ किया है। यह प्रकृति ही यहाँ के निवासियों की आजीविका का मुख्य साधन रही है। शाहाबाद के आसपास के सघन वनों में खैर, गोंद, चिरोंजी (अचार) तेंदू, महुवा, सफेद मूसली, बेर, मकोय तथा सैकड़ों किस्म की जड़ी बूटियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती थीं। शाहाबाद अपनी पान की खेती के लिए भी बड़ा मशहूर रहा। शाहाबाद के पान तब दूर–दूर तक मशहूर थे लेकिन अब यहाँ इसकी खेती बन्द हो गई है। शाहाबाद किले के नीचे कुण्डाखोह नाला एक बड़ा ही रमणीक प्राकृतिक स्थल है जहाँ अद्‌भुत किस्म की वनस्पतियाँ भी पाई जाती है।[19]

समय–समय पर यह भूक्षेत्र बड़ी कठिन प्राकृतिक विपदाओं को झेलते हुए तथा इन परिस्थितियों का डटकर सामना करके भी राजस्थान राज्य के मानचित्र में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। यहाँ आज भी घास–फूस की झोंपड़ियाँ निवास हेतु बनाई जाती है। मुख्य रूप से सहरिया जनजाति के लोग इसी तरह के कच्चे घर बनाकर रहना पसंद करते हैं। सरकार द्वारा समय–समय पर कई योजनाएँ इनके निवास हेतु चलायी गयी हैं, जिनके द्वारा पक्के मकान बनाकर इन्हें निःशुल्क रूप से आवंटित किए गए हैं परन्तु ये जनजाति सामान्य बस्ती से दूर जंगलों में कच्चे घर व झोपड़ियाँ बनाकर ही रहना पसंद करती हैं।

इनकी झोंपड़ियाँ प्रागैतिहासिक काल के मानव जैसी ही होती हैं। कम ऊँचाई वाले द्वार जिनमें प्रवेश हेतु झुककर अन्दर जाया जाता है। इनके द्वारा उपयोग में ली जाने वाली वस्तुएँ भी ज्यादातर प्राचीन मानव के समान ही है।

शाहाबाद क्षेत्र में समय–समय पर होने वाले निर्माण कार्यों हेतु जो खुदाई की जाती है उसमें कई प्रकार की पुरातात्विक महत्व की वस्तुएँ निकलती रहती है जैसे पत्थरों के औजार, विभिन्न प्रकार की ईंटें, मिट्‌टी के बर्तन इत्यादि। किसी स्थल के उत्खनन में जब पुरा सामग्री प्रागैतिहासिक काल से लेकर इतिहासकाल, मध्ययुग, आधुनिक काल तक की प्राप्त हो तो पुरावेत्ता के लिए समस्याओं का निराकरण

आसान हो जाता है। किसी भी पुरावस्तु के विवरण एवं विवेचन में भी आसानी रहती है। ऐसे स्थलों पर नृवंश शास्त्र का अध्ययन क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। तब यह भी देखा जा सकता है कि क्या वर्तमान आदिवासियों में उत्खनन से प्राप्त उपकरण प्रचलित हैं। किस वस्तु का प्रयोग कब से एवं किन–किन कार्यों में किया जाता है? इस प्रकार के अध्ययन से विभिन्न कालों से सम्बन्धित समाज का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

आदिवासियों के निवास शाहाबाद में मुख्य नगर से दूर ही हैं ऐसे स्थानों से इस प्रकार की ऐतिहासिक वस्तुओं का निकलना, प्राचीनकाल में वहाँ बस्ती होने का आभास कराते हैं। जहाँ उत्खनन कार्य कराने से उस समय की संस्कृति के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। जिन स्थलों पर सांस्कृतिक क्रमबद्धता नहीं है, उन स्थलों पर इस प्रकार के अध्ययन में समय का अन्तराल होने के कारण सावधानी की आवश्यकता है। ऐसा समझा जाता है कि आधुनिक अविकसित आदिवासियों जैसा ही प्रागैतिहासिक मानव परिवेश रहा होगा। पिछले दो दशकों में भारत के आदिवासियों के अध्ययन के आधार पर कई क्षेत्रों में प्रागैतिहासिक जीवन एवं समाज को समझने का प्रयत्न किया गया है।

इस आदिवासी क्षेत्र पर भी कई प्रकार से शोध कार्य किया जा रहा है और यहाँ पुरातत्व प्रेमियों के लिए और प्रचुर मात्रा में शोध कार्य की संभावनाएँ व्याप्त हैं। यद्यपि शाहाबाद क्षेत्र का शोध–संसार व्यापक है जिसमें नित नई कड़ियाँ जुड़ना सदैव जीवन्त है। आदिवासियों की वर्तमान संस्कृति का निश्चित ही इतिहास से सम्बन्ध रहा होगा। सम्भव है इस क्षेत्र की संस्कृति के अवयवों के निर्माण में इस वर्ग के लोगों ने अपना पर्याप्त योगदान दिया होगा।

पुरातत्व का अन्य विषयों से सम्बन्ध :–

पुरातत्व काल अधिकतर लिपि विकास के पूर्व का है एवं अधिक समय के विषय में लिपि का न होने के कारण, विस्तृत जानकारी नहीं प्राप्त हो पाती। अतः मानव इतिहास एवं संस्कृति की पूर्ति के लिए विभिन्न विषयों का सहारा लिया गया है। चूंकि मानव का निवास उन्हीं स्थानों पर होता था जहाँ पर उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। अतः मानव से सम्बन्धित मानविकी एवं प्रकृति से सम्बन्धित प्राकृतिक विज्ञान विषयों से पुरातत्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव कहानी की पूर्ति के लिए विभिन्न विषयों की सहायता ली गई है।

पुरातत्व और मानविकी :–

पुरातत्व एवं इतिहास :– पुरातत्व तथा इतिहास दोनों ही विषय मानव के अतीत काल के विषय में अध्ययन करते हैं। इतिहास शब्द का यदि व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाये तो इसके अन्तर्गत मानव के अतीत के विषय में आदिकाल से लेकर कुछ पीढ़ियों पहले तक के कालों के सम्बन्ध में किये जाने वाले सभी प्रकार के अध्ययन एवं अनुसंधान आ जाते हैं। पुरातत्व और इतिहास इन दोनों शब्दों का विभिन्न विद्वान् अलग–अलग अर्थों में प्रयोग करते हैं। पुराविद् इतिहास का अपेक्षाकृत संकुचित अर्थ ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार इतिहास उन कालों या मानव समूहों के सम्बन्ध में अध्ययन करता है जो किसी न किसी प्रकार की लिपि का प्रयोग करते थे।[20]

इतिहास के सामान्य ज्ञान के बिना पुरातत्व का अध्ययन सम्भव नहीं है। इतिहास की रचना मनुष्य द्वारा की गई है। इतिहास का आधार वास्तविक घटनाएँ हैं। वास्तविक घटनाओं के साक्ष्यों की व्याख्या इतिहास कहलाता है। इतिहास में नामधारी व्यक्तियों का भी उल्लेख मिलता है जबकि पुरातत्व में अज्ञातनामा व्यक्तियों तथा समाजों का मुख्यतः प्रतिपादन मिलता है। इसलिए पुरातत्व को इतिहास की एक शाखा मात्र माना जाये, या स्वतन्त्र विषय, इसमें विवाद है।[21]

पुरातत्व एवं नृतत्व शास्त्र :– पुरातत्व एवं नृतत्व शास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए कुछ देशों में पुरातत्व को नृतत्व शास्त्र के अन्तर्गत रखा गया है। नृतत्व

शास्त्र मानव उद्‌भव एवं उसके विकास का अध्ययन करता है, जबकि पुरातत्व में मानव कृतित्व (पुरासामग्रियों) का अध्ययन होता है।[22]

इसके अलावा नृतत्व विज्ञान तथा पुरातत्व दोनों में कुछ अन्य मूलभूत अन्तर है। नृतत्व विज्ञान में मानव समुदायों के सम्बन्ध में अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। लेकिन पुरातत्व में विलुप्त मानव–समाज एवं मृत मानवों का अध्ययन किया जाता है। पुराविद् मानव के स्थान पर, उसकी कृतियों, उपकरणों और उसके क्रिया–कलापों से सम्बन्धित स्थल अथवा स्थलों का अध्ययन करता है। नृतत्व विज्ञान में प्रधान रूप से मानव के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है, जब कि पुरातत्व में मनुष्य के बजाय उसकी कृतियों–उपकरणों एवं औजारों तथा पुरावशेषों के अध्ययन को प्रमुखता दी जाती है।[23]

पुरातत्व एवं समाज शास्त्र : – समाज शास्त्र में मानव समाज की संरचना एवं उसकी विभिन्न प्रकार की रीति–प्रथाओं एवं संस्कारों आदि का अध्ययन किया जाता है। उत्खननों में विभिन्न प्रकार की पुरासामग्री प्राप्त होती है जिससे समाज–स्वरूप, समाज संगठन, रीति रिवाज, प्रथाओं के विकास के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। सामग्री के आधार पर ही नेल्सन महोदय ने समाज को क्रमशः चार भागों में विभक्त किया–

(1) वन्यता (Savagery)
(2) यायावर पशुचारण (Nomad)
(3) स्थायी कृषि एवं (Settled Agriculture)
(4) सभ्यता (Civilization) [24]

अतः जैसे–जैसे समाज का विकास हुआ, रीति–रिवाजों में बदलाव एवं विविधता आई। मध्य पाषाणकाल से ही गृह निर्माण के अवशेष मिलने लगते हैं जो कि नियमित रूप से निर्मित नहीं थे। नव पाषाण काल एवं ताम्र पाषाण काल में गर्त निवास, गोल एवं चौकोर झोपड़ियों का निर्माण हुआ। उत्खननों में मानव कंकाल भी प्राप्त होते हैं। कहीं–कहीं एक स्थल पर एक मनुष्य कहीं–कहीं स्त्री पुरुष एवं बच्चे भी दफनाए रहते हैं। बच्चों को घर के अन्दर ही दफनाने की प्रथा आम रूप से प्रचलित थी। इन मुर्दों के साथ विभिन्न प्रकार की अन्त्येष्टि समाग्री दफनाई हुई प्राप्त

होती है जिससे उस समय प्रचलित सामाजिक प्रथाएँ एवं मनुष्य से सम्बन्धित आने वाली वस्तुओं के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है।[25]

पुरातत्व एवं भूगोल :– मानव के सांस्कृतिक विकास पर भौगोलिक परिस्थितियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। प्रागैतिहासिक काल में जब मानव के भौतिक और सांस्कृतिक उपादन बहुत कम थे, पृथ्वीतल पर घटित होने वाली भौगोलिक घटनाओं का उसके जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।[26]

उदाहरण के लिए प्रातिनूतन काल के जलवायु सम्बन्धी तीव्र उतार–चढ़ावों के साथ मानव के विकास का इतिहास अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। वनस्पति, जीव–जन्तु तथा पृथ्वीतल पर प्रवाहित होने वाले जल की मात्रा का पुरातात्विक अध्ययन के लिए ज्ञान नितान्त आवश्यक है। मानव के सन्निवेश (Settlement Pattern) पर भी भौगोलिक स्थिति का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।[27]

पुरातत्व और प्राकृतिक विज्ञान :–

पुरातत्व एवं भू–तत्व विज्ञान :– भूतत्व विज्ञान का पुरातत्व से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। पुरातत्वीय विभिन्न अंगों, पुरासामग्रियों के निर्माण, तिथि निर्धारण, जलवायु निर्धारण आदि में भू–तत्व का विशेष योगदान है। पाषाणकाल के उपकरण विभिन्न पत्थरों पर निर्मित होते हैं, इन पत्थरों के प्रकार एवं उनके प्राप्ति स्थल के विषय में जानकारी भू–तत्व विज्ञान के माध्यम से ही हो पाती है।[28]

पुराविदों ने अपने अनुभव से यह सीखा है कि भू–तात्विक जमावों, जैसे नदी वेदिकाओं (River Terraces) एवं अनुभागों (River Sections) , झीलों के किनारों तथा शिलाश्रमों में मानवकृत पुरावशेषों के मिलने की अधिक सम्भावना रहती है। भू–तात्विक जमावों के साथ प्राप्त मानवकृत पुरापाषाणिक औजारों एवं पुरातत्व की दृष्टि से उपयोगी अन्य पुरावशेषों की तिथियाँ सौर वर्षों में निश्चित करना आसान नहीं है। इसीलिये इनकी तिथि भू–तात्विक कालों में निर्धारित की जाती है।[29]

पुरातत्व एवं भौतिक विज्ञान :–भौतिक विज्ञान का निरपेक्ष तिथि निर्धारण के कारण पुरातत्व में विशेष योगदान है। इसके अलावा भौतिक विज्ञान सम्बन्धी विश्लेषण आदि की परिष्कृत विधियों का भी पुराविदों के लिए अत्यधिक महत्व है।

पोटेशियम आर्गन तथा रेडियो कार्बन (c^{14}) तिथि निर्धारण पद्धति ने प्रारम्भिक मानव के तिथि क्रम के विषय में हमारी जानकारी में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिये हैं।

पोटेशियम आर्गन (K40/A40) विधि से कई लाखों वर्षों पुराने उन प्राचीन पुरावशेषों का तिथि निर्धारण सम्भव है, जो ज्वालामुखी के उद्‌गार से निकले हुए लावा वाले जमाव में मिले हैं। रेडियो कार्बन विधि से 30–40 हजार वर्षों तक का आसानी से और 70 हजार वर्षों तक केवल कुछ प्रयोगशालाओं द्वारा तिथि निर्धारण सम्भव है।[30]

पुरातत्व एवं रसायन विज्ञान :– पुरावशेषों–विशेषकर जीवाश्मों का निर्माण किन रसायनिक परिस्थितियों में होता है, इसकी जानकारी पुराविदों के लिए विशेष उपयोगी है। इसके अलावा उत्खनन से प्राप्त विभिन्न प्रकार की पुरानिधियों के परिरक्षण के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के रसायनों की आवश्यकता होती है। पुराविदों के लिए इनका सामान्य ज्ञान आवश्यक है। पुरावशेषों का संरक्षण रसायनों के बिना सम्भव नहीं है।[31]

पुरातत्व एवं वनस्पति विज्ञान :– वनस्पति विज्ञान ने भी पुरातत्व सम्बन्धी अध्ययन के लिए कुछ अत्यन्त उपयोगी विधियों का विकास किया है, जो अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु एवं पुरा–वनाली के विषय में प्रकाश डालती है। वनस्पति विज्ञान का इस सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण योगदान पराग विश्लेषण (Palynology) को माना जा सकता है।[32]

पुरातत्व एवं प्राणि विज्ञान :– प्राणि विज्ञान विशेषकर पुराप्राणि–विज्ञान का पुरातत्व से गहरा सम्बन्ध माना जा सकता है। पुरा प्राणिविद् जीवाश्मों (Fossils) के अध्ययन द्वारा काल–क्रम का निर्धारण करते हैं। प्रातिनूतन काल (जिसे मानव का काल भी कहा जाता है) को हाथी (Elephas) अश्व (Equus) तथा मवेशी (Bos) के जीवाश्मों के मिलने के आधार पर ही अतिनूतन काल (Pliocene) से अलग किया जाता है। विलुप्त (Extinct) एवं जीवित पशुओं की किस्मों एवं संख्या के आधार पर भी किसी पुरातात्विक स्थल का काल–क्रम मोटे तौर पर निर्धारित किया जा सकता है।

वनस्पतिवेत्ता की ही भाँति पुराप्राणिवेत्ता (Palaeozoologist) अतीत की जलवायु के विषय में पुराविद को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।[33]

(ब) शाहाबाद क्षेत्र के पुरात्व का महत्व :–

वीरता और शौर्य की क्रीड़ास्थली राजस्थान के कण–कण में इतिहास रचा बसा है। यहाँ के हर अंचल में दुर्भेद दुर्गों और गढ़ों, भव्य एवं कलात्मक राजप्रासादों, शिल्प एवं सौन्दर्य से सम्पन्न देवमन्दिरों, जालियों और झरोखों से युक्त विशाल बावड़ियों तथा अलंकृत छतरियों के रूप में इतिहास, कला और संस्कृति की अनमोल सम्पदा विद्यमान है। वस्तुतः यहाँ के प्रत्येक गाँव, नगर और कस्बे का अपना शताब्दियों का शानदार गौरवशाली इतिहास और विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान है। यहाँ के प्रायः सभी ऐतिहासिक स्मारकों के साथ वीरता और बलिदान के रोमांचक आख्यान जुड़े हैं। ये स्मारक राजस्थान के स्थानीय और आंचलिक इतिहास की विविध घटनाओं से सम्बन्धित होने के कारण अतीत की बिखरी कड़ियाँ जोड़ने की दृष्टि से अत्यधिक महत्व रखते हैं। भारत के सच्चे इतिहास के निर्माण में 'पुरातत्व' की सामग्री अत्यन्त उपयोगी है और खुदाई आदि के द्वारा अभी तक जो कुछ किया गया है, वह दाल में नमक के बराबर है। जब हम यूरोप के सभ्य देशों के कार्य से तुलना करते हैं, तब उसे बहुत अल्प पाते हैं। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी की खोज की रिपोर्ट तथा 'प्राचीन मुद्रा' छापी, और उसकी पत्रिका के योग्य सम्पादक श्रद्धेय ओझा जी ने भी हिन्दी में इस ओर बहुत कार्य किया है।

इतिहास की सबसे ठोस सामग्री पुरातत्व–सामग्री है। और उस सामग्री से भारत की कोई जगह शून्य नहीं है। गांव के पुराने डीहों पर फेंके मिट्टी के बर्तनों के चित्र–विचित्र टुकड़े भी हमें इतिहास की कभी–कभी बहुत ही महत्वपूर्ण बातें बतलाते हैं, लेकिन उन्हें समझने के लिए हमारे पास वैसे श्रोत्र और नेत्र होने चाहिये।[34]

शाहाबाद पुरातात्विक महत्व का एक प्राचीन नगर है, जिसका अपना शताब्दियों का गौरवशाली इतिहास और विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान रही है। यहाँ की संस्कृति और सभ्यता प्रागैतिहासिक काल से पल्लवित रही और वर्तमान में भी यहाँ

की उच्च संस्कृति व लोगों के सादे जीवन से शाहाबाद नगर राजस्थान में अपना पृथक स्थान बनाए हुए है।

शाहाबाद राजस्थान के दक्षिण पूर्व भाग में अवस्थित है। यह संभागीय मुख्यालय कोटा से 155 किलोमीटर तथा जिला मुख्यालय बारां से 80 किलोमीटर दूर है। शाहाबाद परगने की सीमाएं कई स्थानों पर मध्यप्रदेश के शिवपुरी व कौलारस परगने की सीमाओं को छूती हैं। यह एक विशाल पर्वत श्रृंखला की तलहटी में कूनू नदी के बाएं तट पर बसा हुआ है।

शाहाबाद नगर का पूर्व महत्व इसी से आंका जा सकता है जब जनश्रुति में यह कहा जाता है कि जिस समय कोटा में साठ घर भी नहीं थे तब शाहाबाद में साठ हजार की बस्ती थी। इसका प्रमाण आज भी यहाँ दूर–दूर तक फैले खण्डहरों एवं पुरानी हवेली, महलों, गढ़ और शहर पनाह से मिल जाता है।

शाहाबाद में अनेक स्थानों पर प्राप्त पुरावशेषों के आधार पर यह बस्ती 9वीं–10वीं शती में निर्मित प्रतीत होती है।[35]

शाहाबाद का दुर्ग हाड़ौती अंचल का एक सुदृढ़ और दुर्भेद्य दुर्ग है। यह बारां से लगभग 80 किलोमीटर दूर कोटा–शिवपुरी मार्ग पर एक विशाल और ऊँचे पर्वत शिखर पर स्थित है। सघन वन और सुरम्य प्राकृतिक परिवेश से आवृत्त इस दुर्ग के पर्वतांचल में बसा कस्बा दुर्ग के नाम पर शाहाबाद कहलाता है।

शाहाबाद का किला अपने चतुर्दिक फैले विशाल घने जंगल तथा दो तरफ से कुण्डा खोह नामक गहरे प्राकृतिक झरने तथा तीसरी ओर एक तालाब से घिरा होने के कारण एक ऐसा अनूठा दुर्ग है जिसे प्रकृति ने सुदृढ़ सुरक्षा कवच प्रदान किया है। शाहाबाद का दुर्ग शताब्दियों से अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, सुदृढ़ बनावट और सामरिक महत्व के कारण आक्रान्ताओं के आकर्षण का केन्द्र रहा है। यह किला अनियमित आकार की पर्वतमालाओं और घने जंगल के मध्य ऐसे प्रदेश में स्थित है जो चम्बल, कालीसिन्ध तथा अन्य सहायक नदियों, तालाबों तथा झरनों से घिरा है। रणथम्भोर दुर्ग की भांति ही शाहाबाद का किला प्रकृति प्रदत्त इसी परिवेश के कारण एक विकट दुर्ग माना जाता था। साथ ही दिल्ली, मालवा और दक्षिण को

जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण इस किले का अपना विशेष महत्व और आकर्षण था।[36]

पुरातत्व का मानव सभ्यता की कहानी में महत्वपूर्ण स्थान है। स्वयं में विलक्षण शाहाबाद ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यद्यपि यहाँ का सांस्कृतिक वैभव यहाँ के परिक्षेत्र में आच्छादित है, तथापि यहाँ का कला कौशल भी स्वयं में अद्वितीय है। वास्तुकला की विविध शैलियों एवं उच्च अलंकरण को समेटे हुए शाहाबाद के पुरातन स्थलों का स्थापत्य भारतीय इतिहास के स्थापत्य सन्दर्भित अध्याय में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

शाहाबाद के इतिहास की जानकारी हेतु विविध स्त्रोत हैं जिनमें साहित्यिक स्त्रोत एवं पुरातात्विक स्त्रोत प्रमुख है। साहित्यिक स्त्रोतों में जहाँ लिखित इतिहास का स्थान महत्वपूर्ण है, वही पुरातात्विक स्त्रोतों में पुरातन स्थलों से प्राप्त अवशेष व शिलालेखों से शोध विषय की सही–सही जानकारी प्राप्त होती है। समय–समय पर उत्खनन के दौरान निकलने वाली यह सामग्री ऐतिहासिक महत्व की सिद्ध होती है जिस पर शोध करने की प्रचुर संभावनाएँ विद्यमान हैं।

यह सच है कि जनमानस में पुरातत्व के प्रति एक विशेष अभिरूचि और रूझान देखने को मिलता है परन्तु ऐसे लोग सामान्यतः पुरातत्व का सम्बन्ध विचित्र एवं आकर्षक प्राचीन वस्तुओं के संग्रह और जमीन के अन्दर गड़े हुये खजानों आदि की खोज के लिये किये जाने वाले उत्खनन–कार्यों इत्यादि से जोड़ते हैं। इस प्रकार आमतौर पर लोगों में पुरातत्व के रोमानी पक्ष के प्रति विशेष आकर्षण देखने को मिलता है। ऐसी धारणा के कारण लोग इन पुरातात्विक स्त्रोतों को हानि भी पहुँचा देते हैं जो एक जघन्य अपराध है। साथ ही वे इतिहास के साथ भी छेड़छाड़ करते हैं। ऐसे कई उदाहरण शाहाबाद क्षेत्र में हमारे सामने दृष्टव्य हुए हैं।

पुरातत्व के प्रति ऐसी धारणा आंशिक रूप में भी सही नहीं है। तथ्य यह है कि पुरातत्व मानव–अतीत के उन पहलुओं को उजागर करने का एक अत्यन्त सशक्त माध्यम है, जिनके सम्बन्ध में लिखित साक्ष्यों से कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। चूँकि इन क्षेत्र के अधिकतर पुरातन स्थलों के विषय में लिखित जानकारी

का अभाव है, ऐसी स्थिति में इस कार्य के लिये पुरातत्व को अत्यन्त जटिल एवं परिष्कृत विधियों और प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है।

शहाबाद भू–क्षेत्र में स्थापत्य का दिग्दर्शन यहाँ अवस्थित मन्दिरों, हवेलियों, महलों, राजप्रासादों, जलाशयों, छतरियों आदि में दिग्दर्शित होता है। यहाँ के शासकों और धनवान व्यक्तियों, सेठ साहूकारों आदि ने स्थापत्य कला को संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्रदान किया। मंदिरों के निर्माण कराने के पीछे शासक वर्ग व धनाड्य वर्ग की आध्यात्मिकता की भावना छिपी हुई थी, किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि स्थापत्य कला को प्रोत्साहन देने हेतु भी देवालयों का निर्माण करवाया गया।

शाहाबाद क्षेत्र में बने हुए सभी मंदिरों की निर्माण शैली लगभग मिलती जुलती सी प्रतीत होती है। अलंकरणों का प्रयोग भी समान अभिप्रायों को लेकर ही किया गया है। यहाँ तक कि निर्माण सामग्री के उपयोग में भी समानता दर्शायी गयी है। यहाँ स्थित मुख्य मंदिरों में दुर्ग में स्थित लक्ष्मण मन्दिर, राधा कृष्ण मंदिर, शहरपनाह के अन्तिम छोर पर बना नगर कोट माता मंदिर, सहस्त्रेश्वर महादेव मंदिर, सीताबाड़ी के मंदिर, विलासगढ़ के मंदिर आदि उल्लेखनीय हैं जो कि न सिर्फ दर्शनीय स्थल हैं बल्कि क्षेत्रवासियों की आस्था के प्रमुख केन्द्र हैं।

रियासतकाल में शाहाबाद कस्बा एक सुदृढ़ शहरपनाह (प्राचीर) के भीतर बसा हुआ था। इसकी प्राचीर में निर्मित प्रवेश द्वारों के अतिरिक्त नगर के अन्दर भी प्रवेश हेतु चार विशाल दरवाजे निर्मित हैं जो आज भी हमें शाहाबाद के ऐतिहासिक वैभव की दास्तान कहते नजर आते हैं।

वर्तमान में असम्बद्ध रीति से बसाया गया प्रतीत होने वाला एक ही शासक के काल में पूरा निर्मित होने वाले नगर का निर्माण एवं विकास स्थापत्य कला के मध्यकालीन शास्त्रीय मानदण्डों को दृष्टि में रखकर पूर्व योजनानुसार किया गया होगा तथा इसके निर्माण–विकास में योगदान देने वाले प्रत्येक शासक तथा निर्माण कार्य सम्पन्न करने वाले प्रत्येक शिल्पी ने इसकी मूलभूत योजना को विकृत न होने देने पर पूरा ध्यान दिया होगा।

ऐसी प्रतीति होने के कारक तथ्य निम्नलिखित हैं–

- शाहाबाद नगर को बसाने के लिए जो स्थान चुना गया है, वह प्राचीन एवं मध्यकालीन स्थापत्य कला के मानदण्डों के बिल्कुल अनुरूप है। शाहाबाद नगर पहाड़ी एवं वन्य भागों से परिवेष्ठित सुरक्षित कुछ ऊँची पहाड़ी भूमि के ठीक बीचों–बीच बसाया गया है।

- शाहाबाद नगर को बसाने में पहाड़ी स्थल के चयन के उपरान्त भी आत्मनिर्भरता के शास्त्रीय दृष्टिकोण को पूर्णरूपेण ध्यान में रखा गया है। नगर के बाहर चारों ओर पर्याप्त मात्रा में कृषि भूमि उपलब्ध है और नगर के बाह्य–आभ्यान्तरिक भाग प्राकृतिक जल स्त्रोतों से परिपूर्ण है।

- शाहाबाद नगर प्राचीर सुरक्षा की दृष्टि से अनुपम है।

- शाहाबाद नगर के भीतर बने चार प्रवेश द्वार जो समय व मरम्मत के अभाव में जीर्ण–शीर्ण व नष्ट प्राय हो रहे हैं इनकी स्थिति पुरातत्व के महत्व को नहीं जानने के कारण से हुई समझी जा सकती है किन्तु जिस किसी भी कारण से ऐसा हुआ, यह कार्य स्थापत्य स्मारकों के संरक्षण के विपरीत किया गया जघन्य अपराध है।

- शाहाबाद नगर की इस शहरपनाह या परिखा में स्थान–स्थान पर कई कट्‌ालिकाएँ बुर्जे बनाई गई थीं जिन पर बड़ी–बड़ी तोपें रखी रहती थीं। दुर्ग की प्राचीर पर तो एक तोप अभी भी रखी हुई है। जो नवलबाण कहलाती है।

- शाहाबाद नगर की शहरपनाह से नगर का जो मानचैत्रिक स्वरूप उभरता है, वह मण्डन द्वारा राजवल्लभ में उल्लिखित बीस प्रकार के नगरों में से चौथे ''वुत्तायत वारूण''[37] संज्ञक नगर जैसा दिखाई पड़ता है, जिसे मण्डन ने उत्तम कोटि का नगर बताया है।

अतीत के गीत गुनगुनाता शाहाबाद दुर्ग ऐतिहासिक धरोहर है जो इतिहास और पुरातत्व प्रेमी पर्यटकों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। शाहाबाद दुर्ग गिरी दुर्ग है, जो तत्कालीन दुर्ग स्थापत्य का सुन्दर उदाहरण है। इसमें निर्मित भव्य

राजप्रासाद, महल, भवन, मंदिर, जलाशय आदि पुरातन दृष्टि से अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

इसमें बने गुप्त प्रवेश द्वार शत्रु के किसी संभावित आक्रमणों को विफल करने के लिए भूलभूलैया की तरह हैं। दुर्ग के भीतर सुन्दर भित्ति चित्र बने हुए हैं। इनमें राधा–कृष्ण के मंदिर में बने चित्र विशेष रूप से दर्शनीय हैं। इन चित्रों में राजसी वैभव और लोक जीवन का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है।

राजस्थान में इतनी प्रचुर संख्या में गढ़ और दुर्ग निर्माण की परम्परा के पीछे यहाँ की भौगोलिक स्थिति तथा तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ कारणभूत रही हैं। प्राचीन एवं मध्ययुग में राजनीतिक शासन व्यवस्था के होते सेन्य शक्ति के साथ दुर्ग भी एक सामरिक आवश्यकता थी। राज्य का अस्तित्व तब दुर्ग रक्षा पर ही निर्भर करता था। यहाँ तक कि दुर्ग का पतन राज्य के अस्तित्व नाश का ही पर्याय होता था।

यही कारण है कि प्रत्येक राज्य की राजधानी अनिवार्यतः दुर्ग में हुआ करती थी या फिर चतुर्दिक सुदृढ़ एवं उत्कृष्ट प्राचीर से परिवेष्टित होती थी जिसमें राजकीय परिग्रह सहित स्थानीय प्रजाजनों के आवास भी बने होते थे। शाहाबाद के विशाल दुर्ग में उनके भग्नावशेष आज भी देखे जा सकते हैं।

मध्ययुग में व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक असुरक्षा तथा आये दिन होने वाले उत्पादों एवं युद्धों की दुरन्त विभीषिका के सन्दर्भ में ही दुर्गों के सामरिक महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है।

आज युग परिवर्तन के साथ हमारे स्वर्णिम अतीत की यह अनमोल सम्पदा तेजी से नष्ट होती जा रही है। शाहाबाद क्षेत्र के कई गढ़ जैसे विलासगढ़, रामगढ़, कस्बाथाना का गढ़ आदि तो खण्डहर भी हो चुके हैं और जो शेष है, वह अपने अवसान की प्रतिक्षा में है।

शाहाबाद दुर्ग, नाहरगढ़ दुर्ग क्षेत्र के इतिहास की अनमोल धरोहर हैं, जो इतिहास और पुरातत्व प्रेमी पर्यटकों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बनकर उभर सकते हैं, लेकिन जरूरत है इनके उचित संरक्षण की। यदि समय रहते हमने सारा सम्भाल

नहीं की तो वह दिन दूर नहीं जब ये सदा के लिए काल के गर्त में विलीन हो जाऐंगे। हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमारे ये गढ़, दुर्ग उस युग की देन है, जो अब लौट कर आने वाला नहीं है। वीरता और शौर्य के प्रतीक ये गढ़ और किले अपने अनूठे स्थापत्य, विशिष्ट संरचना तथा अद्‌भूत शिल्प एवं सौन्दर्य के कारण दर्शनीय है। जिन्हें देखने के लिए देशी विदेशी पर्यटक यहाँ आते हैं।

शाहाबाद में अनेक स्थान–स्थान पर भव्य छतरियाँ व स्मारक बने हुए हैं जो विगत युग की स्थापत्य कला की सुन्दर झलक प्रस्तुत करते हैं। अपने प्रियजनों की स्मृति को संजोकर रखने के उद्देश्य से शासकों द्वारा इन छतरियों का निर्माण करवाया गया। ये छतरियाँ न सिर्फ स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, वरन् इन छतरियों से तत्कालीन सामाजिक दशा का भी पता चलता है। छतरियों में देवलियों (पत्थर की शिला) पर खुदे शिलालेखों से राजा–महाराजाओं की मृत्यु तिथि का सही उल्लेख प्राप्त होता है।

शाहाबाद क्षेत्र में ज्यातर छतरियाँ नगर के बाहर बनी हुई हैं, और सभी छतरियों की शिल्प शैली लगभग समान है। यद्यपि शैली में समय के अनुसार थोड़े बहुत परिवर्तन हुए हैं तथा छतरियों के बाहरी व भीतरी ढाँचे लगभग समान ही है।

कला का आविर्भाव उत्तर पाषाण काल से होता है। प्रागैतिहासिक काल में चित्रण प्राकृतिक एवं स्वाभाविक था परन्तु बाद के चित्रणों में शैली का समावेश हो जाता है। विभिन्न चित्रण में लम्बाई, चौड़ाई का अनुपात, गणना का ज्ञान, मानव मस्तिष्क विकास को प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार शवाधानों के निर्माण में पत्थरों की लम्बाई, चौड़ाई आदि की वास्तविक माप भी गणना एवं मानव मस्तिष्क विकास को दर्शाते हैं। उत्खनन के दौरान जब इस प्रकार की कोई भी वस्तु सामने आती है तो उसके द्वारा हमें उस समय के समाज की स्थिति का ज्ञान होता है।

स्थापत्य की दृष्टि से क्षेत्र की सभी छतरियाँ उल्लेखनीय हैं फिर भी इनमें से कुछ छतरियाँ ही महत्वपूर्ण है जिनमें शाहाबाद दुर्ग में निर्मित शासकों की क्षार बाग छतरियाँ व नगर के बाहर की ओर बनी बारह खम्भों की छतरियाँ प्रमुख हैं। वहीं ऐतिहासिक दृष्टि से अपना एक विशिष्ट स्थान रखने वाली थानेदार नाथूसिंह की छतरी क्षेत्र में शौर्य और वीरता का प्रतीक मानी जाती है।

शोध विषय से संबंधित पुरातात्विक स्त्रोतों में 'शिलालेखों' का स्थान महत्वपूर्ण है। शोध विषय की दृष्टि से उल्लेखनीय ये शिलालेख शाहाबाद राज्य की तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति के साथ शासकों की स्थापत्य कला में रुचि को भी प्रदर्शित करते हैं।

मन्दिर निर्माण के सन्दर्भ में शिलालेख 'भण्डदेवरा मन्दिर का लेख' उल्लेखनीय है। इस लेख में राजा मलयवर्मा ने किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में अपने इष्ट महादेव के इस मन्दिर का निर्माण करवाये जाने का उल्लेख मिलता है। यह लेख ईसा की लगभग 10वीं शताब्दी का प्रतीत होता है।[38]

शिलालेखों के संदर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि शिलालेख, केवल शासक वर्ग की निर्माण रुचि को ही प्रस्तुत नहीं करते हैं, अपितु धनाड्य वर्ग की स्थापत्य में कितनी रुचि थी, क्या–क्या निर्माण कार्य धनाड्य वर्ग द्वारा करवाए गए विशेषतः मंदिरों व जलाशयों के निर्माण संबंधी सूचना भी शिलालेखों द्वारा प्राप्त होती है।

दुर्ग से प्राप्त एक शिलालेख स्थानीय करों की वसूली तथा नागरिकों के प्रति मुगल नीति पर प्रकाश डालता है। जिसमें मुगल शासक औरंगजेब द्वारा करों के विरोध में फरमान जारी करने का उल्लेख भी मिलता है। मंदिर निर्माण व अन्य भवनों की सूचना के अतिरिक्त जलाशयों कुओं आदि के निर्माण संबंधी सूचना के स्त्रोत भी शिलालेख हैं।

कला के अनेक रूपों में स्थापत्य प्रथम और प्रधान है। इसका कारण है कि जहाँ लिखित ऐतिहासिक साधनों की उपलब्धि नहीं हो सकती, वहाँ स्थापत्य के अवशेष अज्ञातकाल के इतिवृत्त के साक्षी बनते हैं तथा विस्मृत युगों की याद दिलाने में सहायक होते हैं।[39]

पुरातन जल स्त्रोतों के निर्माण में यहाँ के राज वर्ग की अपेक्षा धनाड्य व्यक्तियों ने इसमें अपना पूर्ण सहयोग दिया। यहाँ समय–समय पर निर्मित बावड़ियों, कुण्डों आदि ने न सिर्फ यहाँ के आमजन की जल समस्याओं को सुलझाया, अपितु स्थापत्य की दृष्टि से भी इन जलाशयों का महत्व कम नहीं आंका जा सकता।

जलाशयों के ऊपर बने घाट, कलात्मक छतरियों आदि ने जलाशयों का महत्व बढ़ाया है।

मध्यकाल एवं उससे पूर्व के समय में जन बस्तियों एवं जन बस्तियों से अलग दूरस्थ स्थानों पर निर्मित बावड़ियों, कुओं इत्यादि की संख्या अधिक है जिनमें गुलाब बावड़ी अपनी ऐतिहासिकता के लिए जानी जाती है वही अवस्थी व तपसी जी की बावड़ी अपने अनूठे स्थापत्य के लिए प्रसिद्ध है।

रियासत काल में झाला जालिमसिंह द्वारा निर्मित करायी गयी तपसी जी की बगीची यहाँ का प्रमुख ऐतिहासिक स्थल है, जहाँ वर्षभर पर्यटक बड़ी संख्या में आते हैं। कुण्डा खोह अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए जाना जाता है। इसके चारों ओर विशाल ऊँची–ऊँची चट्टानोंदार पहाड़ियाँ हैं जिनसे वर्षभर पानी के झरने गिरते हैं और एक गहरे तालाब में जल एकत्रित हो जाता है। कुण्डा खो का इतिहास शाहाबाद दुर्ग से जुड़ा हुआ है जनश्रुति है कि झाला जालिमसिंह ने शाहाबाद का किला खाण्डेराव के पुत्र मेघसिंह से छल से जीता था।[40] यह घटना इसी स्थान की है।

शाहाबाद क्षेत्र के अन्य पुरातात्विक स्थलों का महत्व :–

केलवाड़ा शाहाबाद अंचल का एक प्रमुख कस्बा है, जो कोटा–शिवुपरी राष्ट्रीय राजमार्ग पर बारां से लगभग 30 किलोमीटर पर अवस्थित है। केलवाड़ा का किला तत्कालीन दुर्ग स्थापत्यकला का सुन्दर उदाहरण है। केलवाड़ा सीताबाड़ी के भव्य देवमंदिरों के लिए भी प्रसिद्ध है। सीताबाड़ी में लक्ष्मण मंदिर, लवकुशकुण्ड, सूरजकुण्ड मंदिर, सीता कुटि, वाल्मिकी आश्रम, राधाकृष्ण मंदिर स्थापत्य कला की दृष्टि से उत्कृष्ट और दर्शनीय है। इसके अलावा यहां बहने वाली बाणगंगा नदी भी अपनी ऐतिहासिकता के कारण उल्लेखनीय है।

यहाँ प्रतिवर्ष लगने वाला सीताबाड़ी मेला सहरिया जनजाति का कुम्भ कहलाता है जो क्षेत्र की लोकप्रियता का परिचायक है और एक तीर्थ स्थल के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए है।

प्राचीनकाल में कृष्ण विलास के नाम से प्रसिद्ध विलासगढ़ में एक दुर्ग, कई जैन और हिन्दू मन्दिर तथा एक छोटे से नगर के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं जो मध्यकालीन हिन्दू इतिहास के लिये धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से बड़े महत्व के हैं। विलासगढ़ से कई प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जो कि अलंकारिक प्रतिमायें हैं। शिव, विष्णु, देवी, सरस्वती, ब्रह्मा, नृसिंह आदि देवों की प्रतिमाओं के अतिरिक्त यक्ष, यक्षिणी, द्वारपाल, नर्तकी, नायिका, पशु, विचित्र पक्षी आदि की भी अनेक प्रतिमायें हैं। कला की दृष्टि से ये सब प्रतिमायें उच्च कोटि की हैं।[41]

प्राचीन समय में श्रीनगर कहलाने वाला रामगढ़ अपने अनूठे स्थापत्य एवं मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध है। रामगढ़ में पहाड़ी पर जो एक जीर्ण–शीर्ण दुर्ग स्थित है, वह लगभग चार सौ या पाँच सौ वर्ष पुराना दुर्ग है। आज से लाखों वर्ष पूर्व कोई उल्का धरती पर गिरने से उल्का खण्ड से बनी पहाड़ी पर बारीक कलात्मक कटाई करवाकर ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में राजा मलय वर्मा ने भण्डदेवरा नामक शिवालय निर्मित कराया यह मंदिर कोणार्क और खजुराहों की कलात्मक श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

मंदिर में स्थापित नटराज, महाराज का लिंग एवं अन्य देव प्रतिमाओं के साथ यक्ष, किन्नर, देवी, देवता, गन्धर्व एवं अप्सराओं की मूर्तियां भी उत्कीर्ण की गई हैं। देव रमणियों, किन्नरियों एवं अप्सराओं में मांसल सौन्दर्य का अंकन किया गया है। उनके सुचिक्कन कपोल, वलयाकार केश गुच्छ, अलसाई आँखें उन्नत चिबुक, दीर्घ ग्रीवा, उन्नत एवं वलयाकार उरोज, क्षीणकरि, मांसल जंघायें तथा उनके शरीर पर धारण अलंकारों का श्रेष्ठ अंकन किया गया है। मनुष्य के मन की कामना, कला और स्थापत्य का सहारा पाकर किसी अजाने लोक से आई इस उल्का में जीवन्त हो उठी थी।

पूरे मंदिर क्षेत्र में सिर विहीन धड़ अथवा धड़विहीन सिर बिखरे पड़े हैं जो इस मंदिर के कला वैभव की कहानी कहते हैं। मंदिर के पास बने सरोवर से भी अनेक मूर्तियां एवं मूर्ति खण्ड उपलब्ध होते हैं।[42] जो हमें तत्कालीन समय की स्थापत्य कला का ज्ञान कराते हैं तथा साथ ही मूर्तियों के अलंकरण से इस मंदिर की विलीन कला और सौन्दर्य का अनुमान लगाया जा सकता है।

पचमढ़ी से ज्ञात हुए मन्दिरों के भग्नावशेष अतीत में यहाँ रहे धार्मिक स्थल का स्मरण कराते हैं। सहजनपुर जिसे अतीत में शाहाबाद राज्य की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है, आज यहाँ सिर्फ किसी नगर या बस्ती होने के प्रमाण मात्र शेष बचे हैं। सहजनपुर से ज्ञात भग्नावशेषों से हमें शाहाबाद के इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है।

पुरातात्विक स्त्रोत एवं इनका शोध विषय में महत्व :–

इतिहास मानव अतीत के क्रिया–कलापों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। पुरातत्व इस व्याख्या में अत्यन्त सार्थक एवं सक्रिय भूमिका अदा करता है। पुरातत्व प्रमुख रूप से भौतिक पुरावशेषों के माध्यम से मानव इतिहास की संरचना में संलग्न है। पुरातात्विक साक्ष्यों की सहायता से मानव का सांस्कृतिक इतिहास आसानी से लिखा जा सकता है। एक स्वतन्त्र विषय के रूप में पुरातत्व का अस्तित्व विवादपूर्ण है। विश्व के अधिकांश विश्वविद्यालयों में पुरातत्व का अध्ययन–अध्यापन इतिहास की एक शाखा के रूप में किया जाता है।

भारत में पुरातत्व का प्राचीन इतिहास के एक अंश के रूप में अध्ययन होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पुरातत्व को नृतत्व विज्ञान की एक शाखा माना जाता है। पुरातत्व को एक स्वतंत्र विषय न मानने वाले विद्वानों के प्रमुख तर्क इस प्रकार है– पुरातत्व के पास अपने केवल कुछ आँकड़े तथा अध्ययन सम्बन्धी कुछ विधियाँ और विचारधाराएँ हैं। लेकिन इनमें से अधिकांश भू–तत्व विज्ञान, नृतत्त्व विज्ञान तथा इतिहास आदि संग्रहण की गयी है।[43]

स्टुअर्ट पिग्गट (Stuart Piggott), पुरातत्व को इतिहास की एक शाखा मात्र मानते हैं। ब्रिटेन की पुरातत्व सम्बन्धी प्रसिद्ध संस्था प्रिहिस्टरिक सोसाइटी (Prehistoric Society) ने सन् 1963 ई. के अपने अध्यक्षीय भाषण में पिग्गट ने अफसोस जाहिर करते हुए कहा है कि 'बहुत से विद्वान् पुरातत्व किम्बा प्रागैतिहास को एक स्वतन्त्र एवं गम्भीर बौद्धिक विषय कदापि नहीं मानते हैं। वे इसे मानव अतीत के इतिहास निर्माण का एक ऐसा तरीका मात्र समझते हैं, जिसमें गम्भीर बौद्धिक प्रक्रिया की जटिलताओं को आसानी से नजरअन्दाज किया जा सकता है।[44]

कुछ समय पूर्व जब विद्वानों ने पुरातत्व को साक्ष्य संकलन की एक प्रणाली–मात्र माना था, उस समय इस कथन का कुछ औचित्य था। लेकिन सत्तर एवं अस्सी के पिछले दो दशकों में पुरातत्व सम्बन्धी साक्ष्य–संकलन करने की विधियों एवं प्रविधियों के विकास होने के साथ ही साथ साक्ष्यों की व्याख्या से सम्बन्धित सिद्धान्तों पर बहुत अधिक बल दिया जाने लगा है।

पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री का राजस्थान के इतिहास के निर्माण में एक बड़ा योगदान है। इसके अन्तर्गत खोजों और खनन से मिलने वाली ऐतिहासिक सामग्री को सम्मिलित किया जाता है। यह ठीक है कि ऐसी सामग्री का राजनैतिक इतिहास से सहज और सीधा सम्बन्ध नहीं है, परन्तु इमारतें, भवन, किले, राजप्रासाद, घर, बस्तियाँ, भग्नावशेष, मुद्राएँ, उत्कीर्ण लेख, मूर्तियाँ, स्मारक आदि से हम ऐतिहासिक काल–क्रम का निर्धारण तथा वास्तु और शिल्प शैलियों का वर्गीकरण कर सकते हैं।[45]

जन–जीवन की पूरी झाँकी पुरानी बस्तियों तथा अन्य प्रतीकों से प्रस्तुत की जा सकती है। स्मारकों के अध्ययन से न केवल स्थापत्य और मूर्तिकला ही जानी जाती है, अपितु उनसे उस समय के धार्मिक विश्वास, पूजा–पद्धति और सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल से मध्यकाल के अनेक भग्नावशेष तत्कालीन अवस्था का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। इसी प्रकार सिक्के, शिलालेख एवं दान–पात्र भी अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं एवं स्थिति के साक्षी हैं।[46]

राघवेन्द्र सिंह मनोहर ने राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे नामक पुस्तक में शाहाबाद क्षेत्र के पुरावशेषों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–शाहाबाद नगर का पूर्व महत्व इसी से आंका जा सकता है जब जनश्रुति में यह कहा जाता है कि जिस समय कोटा में साठ घर भी नहीं थे तब शाहाबाद में साठ हजार की बस्ती थी। इसका प्रमाण आज भी यहाँ दूर–दूर तक फैले खण्डहरों एवं पुरानी हवेली, महलों, गढ़ और शहर पनाह से मिल जाता है।[47]

अतः पुरातत्व मानवाकृत इन पुराने अवशेषों को खोज निकालने का केवल एक तरीका ही नहीं है, बल्कि मानव की सम्पूर्ण भौतिक उपलब्धियों को एक सही परिप्रेक्ष्य में रखकर अध्ययन की एक जटिल एवं गम्भीर बौद्धिक प्रक्रिया भी है।

निष्कर्ष (Conclusion) :-

विवेच्य विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुरातत्व का मानव सभ्यता की कहानी में महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में पुरातत्व ने अपना अच्छा स्थान बना लिया है और इसके अन्वेषणों ने इतिहास की वास्तविकता को उजागर करने में प्रमुख योगदान दिया है, लेकिन अब भी काफी अंशों में काम करना शेष है। इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए पुरातत्वविदों का अध्यवसाय एवं निरन्तर परिश्रम अपेक्षित है। भारत की विशालता के कारण इस क्षेत्र में रुचि लेने वाले विद्वानों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होना कोई आश्चार्य की बात नहीं है। आवश्यकता केवल मात्र इसी बात की है कि पुरातत्व के विभिन्न विशेषज्ञों में परस्पर तालमेल होना चाहिए।

इस कार्य में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा भी समुचित आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए। यह भी एक अनिवार्य तथा आवश्यक तथ्य है कि केन्द्र का पुरातात्विक विभाग दृढ़ हो ताकि वह विभिन्न राज्यों के विभागों की देखरेख संतोषजनक रूप से कर सके। जैसा कि हमारे इतिहास के उदाहरणाों से पता चलता है, भारत की एकता इसके अतीत के अध्ययन से ही अधिक सुदृढ़ होगी। भले ही हमारे देश में अनेक प्रकार की विविधताएँ रही हों, लेकिन इन सबके मध्य एक बारीक सूत्र में विद्यमान एकता भी है, जिसको उजागर करने का कार्य पुरातत्व विभाग सफलतापूर्वक कर रहा है।

इस विपुला पृथ्वी का निरवधि काल तक उत्खनन होता रहेगा और प्रत्येक उत्खनन नूतन ज्ञान सामग्री उपस्थित करेगा। किन्तु, मा वसुन्धरा का कोई अन्त नहीं कि वह कब अपने गर्भलीन वैभव को प्रकट कर अपने को 'वसुधा' कहलाना बन्द कर देगी। जब तक मानव मन में जिज्ञासा है, जब तक उसकी भुजाओं में शक्ति है, या जब तक प्रकृति अपने धर्म से उपरत नहीं होती, तब तक नये–नये ज्ञान–क्षितिजों का तारतम्य बना रहेगा। 'आज' के ज्ञान की सीमाओं को 'कल' बदल देगा और शोध कार्य तो प्रयत्नमात्र है। रास्ता अत्यन्त दुरूह और अनन्त है। आज की

गाड़ी को हम जहाँ खड़ी करके विश्राम करने लगेंगे, कल का मानव उस गाड़ी को वहाँ से आगे चलाना प्रारम्भ कर देगा। पता नहीं प्रकृति अभी बाढ़–भूकम्पों के द्वारा भूमिगर्भ में सोयी कितनी साक्षर चट्टानों के आवरण हटाकर उनको मुक्त आकाश देखने का अवसर देती है।

पाद टिप्पणी

1. विमल चन्द्र पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–1, पृ. 18
2. श्रीकृष्ण ओझा – भारतीय पुरातत्व, पृ. 16
3. जयनारायण पाण्डेय – पुरातत्व विमर्श, 1988, पृ. 2
4. वही, पृ. 2
5. राकेश प्रकाश पाण्डेय – भारतीय पुरातत्व, 1989, पृ. 1
6. जयनारायण पाण्डेय – पुरातत्व विमर्श, 1988, पृ. 4
7. वही, पृ. 4
8. वही, पृ. 5
9. राकेश प्रकाश पाण्डेय–भारतीय पुरातत्व, 1989, पृ. 1
10. वही, पृ. 1
11. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का इतिहास, पृ. 7
12. राकेश प्रकाश पाण्डेय–भारतीय पुरातत्व, 1989, पृ. 6
13. वही पृ. 6
14. वही, पृ. 7
15. वही, पृ. 7
16. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का सांस्कृतिक, इतिहास, 2007, पृ. 31
17. वही, पृ. 31
18. वही, पृ. 12
19. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 199
20. जयनारायण पाण्डेय –पुरातत्व विमर्श, पृ. 9
21. वही, पृ. 9
22. राकेश प्रकाश पाण्डेय – भारतीय पुरातत्व, पृ. 12
23. जयनारायण पाण्डेय – पुरातत्व विमर्श, पृ. 10
24. राकेश प्रकाश पाण्डेय – भारतीय पुरातत्व, 1989, पृ. 12

25. वही, पृ. 13
26. जयनारायण पाण्डेय – पुरातत्व विमर्श, पृ. 9
27. वही, पृ. 9
28. राकेश प्रकाश पाण्डेय – भारतीय पुरातत्व, 1989, पृ. 13
29. जयनारायण पाण्डेय – पुरातत्व विमर्श, 1988, पृ. 11
30. वही, पृ. 12
31. वही, पृ. 12
32. वही, पृ. 12
33. वही, पृ. 13
34. राहुल सांकृत्यायन – पुरातत्त्व निबन्धावली, पृ. 1
35. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 195
36. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 161
37. मण्डन : राजवल्लभ, अ. 4 श्लोक 4, पंक्ति 2 उत्तरार्ध
38. कोर्प्स इंस्क्रिप्शन इण्डिया प्रथम भाग, पृ. 31–32 और परिशिष्ट संख्या–6
39. जी. एन. शर्मा – ऐतिहासिक निबन्ध, जोधपुर, 1970, पृ. 89
40. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 197
41. जगतनारायण श्रीवास्तव – कोटा राज्य का इतिहास, पृ. 18
42. मोहनलाल गुप्ता – कोटा संभाग का जिलेवार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 76
43. जयनारायण पाण्डेय – पुरातत्व विमर्श, पृ. 5
44. वही, पृ. 5
45. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, 2011, पृ. 1
46. वही, पृ. 1
47. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के प्राचीन नगर और कस्बे, पृ. 195

संदर्भ ग्रन्थ–सूची (Bibliography)

(A) प्राथमिक स्त्रोत

(i) प्राचीन साहित्य –

1. जे.एच अचेले (सं.), बृहत्संहिता, वरदा, पूणे, 1997
2. आश्वालायन गृहसूत्र
3. उपनिषद्
4. कल्हण : राजतरंगिणी
5. कालिदास : कुमारसंभव, रघुवंशमहाकव्यम्
6. कौटिल्य : अर्थशास्त्र
7. जयसोम : कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकम्
8. दिव्यावदान
9. पाणिनी : अष्टाध्यायी
10. पुराण
11. भुवनदेवाचार्य : अपराजितापृच्छा
12. मनु : मनुस्मृति
13. याज्ञवल्क्य स्मृति
14. श्रीमद्वाल्मीकीयं रामायणम् : टीकाकार– श्री पण्डित रामतेज पाण्डेयः, चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली–7
15. वेद

अभिलेख –

1. राजा जयगम के काल का लेख, शाहाबाद, वि.सं. 1678
2. जामा मस्जिद का लेख, शाहाबाद, 1671
3. शाहाबाद दुर्ग का लेख, शाहाबाद, श्री मुख संवत्सर 1250
4. औरंगजेबकालीन लेख, शाहाबाद, 1679
5. नाहरगढ़ दुर्ग का लेख, नाहरगढ़, हिजरी 1090

6. राजा मलयवर्मा का शिलालेख, भण्डदेवरा, 10वीं शताब्दी
7. राजा त्रिशास वर्मा का शिलालेख, भण्डदेवरा, वि.सं. 1219
8. परमार राजा भोज का शिलालेख, भण्डदेवरा
9. विष्णु मूर्ति शिलालेख, रामगढ़ दुर्ग, वि.सं. 1223
10. जैन प्रतिमा शिलालेख, रामगढ़ दुर्ग, वि.सं. 1224
11. शिव–पार्वती मूर्ति शिलालेख, रामगढ़ दुर्ग, वि.सं. 1231
12. स्तम्भ लेख, रामगढ़ दुर्ग, वि.सं. 1232
13. मानक–मनेश्वर स्तम्भ शिलालेख, रामगढ़ दुर्ग, वि.सं. 1269
14. जैन प्रतिमा शिलालेख, रामगढ़ दुर्ग, वि.सं. 1237

(B) द्वितीय स्त्रोत

1. प्रभुदयाल अग्निहोत्री : पतंजलिकालीन भारत, पटना, 1963
2. वासुदेवशरण अग्रवाल : कला व संस्कृति, इलाहाबाद
3. सरला अग्रवाल : वास्तुदर्शन, कामेश्वर प्रकाशन, बीकानेर, 1996
4. प्रो. पी.के. आचार्य : ए डिक्शनरी ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर, वाराणसी
5. ई.टी. रिचमोण्ड : मुस्लिम आर्किटेक्चर, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1926
6. वासुदेव उपाध्याय : प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, पटना, 1972
7. भगवतीशरण उपाध्याय : भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, नई दिल्ली, 1991
8. भगवतीशरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ, 1969
9. सी.यू. एचिसन : ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्स, वॉल्यूम II व III 1932
10. एपिग्राफिका इंडिका, भाग–3
11. कलरफुल राजस्थान फॉर ऑल सीजन्स, राजस्थान सरकार, 1995
12. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–4

13. एस.एम. असगर अली कादरी : हिन्दू–मुस्लिम स्थापत्य कला शैली, आगरा, 1963

14. स्टेला केमरिश : दि हिंदू टेम्पल, वॉल्यूम–1, कलकत्ता, 1946

15. बी. आशर कैथरीन : आर्किटेक्चर ऑफ मुगल इंडिया, न्यू देहली, 1995

16. कॉपर्स इंसाक्रिप्शनइंडिकेरम, खण्ड–2, भाग–1

17. सुखवीर सिंह गहलोत : राजस्थान का इतिहास (तिथिक्रम से), राजस्थान साहित्य मंदिर, जोधपुर, 1980

18. डी.एच. गार्डन : भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि, पटना, 1970

19. वाचस्पति गेरोला : भारतीय संस्कृति व कला, लखनऊ

20. हरमन गोएट्ज : दी आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट, ऑक्सफॉर्ड, 1950

21. अमलानंद घोष (सं.) : जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड I व II, दिल्ली, 1975

22. कैलाशचंद्र जैन : एन्शियेंट सीटीज एण्ड टाऊन ऑफ राजस्थान, दिल्ली, 1972

23. महेशचन्द्र जोशी : युगयुगीन भारतीय कला, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1995

24. कर्नल जेम्स टॉड : एनाल्स एण्ड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान, वॉल्यूम I, II व III, ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1920

25. जी.एच. तिल्लोत्सन : दि राजपूत पैलेसेस, डवलपमेंट ऑफ आर्किटेक्चरल स्टॉयल, 1450 टू 1750, देहली, 1987

26. विमल कुमार दत्त : भारत शिल्प, इलाहाबाद, 1957

27. बी.एम. दिवाकर : राजस्थान का इतिहास, जयपुर, 1998

28. आर. नाथ :

    (i) मिडिवल इंडियन हिस्ट्री एण्ड आर्किटेक्चर, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कोर्पोरेशन, न्यू देहली, 1995

    (ii) मुगल स्कल्पचर ए.पी.एच. पब्लिशिंग कोर्पोरेशन, न्यू देहली, 1997

    (iii) झरोखा – एन इलस्ट्रेड ग्लोसरी ऑफ हिन्दू–मुस्लिम आकिटेक्चर

    (iv) प्राचीन भारतीय अवशेष : एक अध्ययन, मध्यप्रदेश, 1998

    (v) मध्यकालीन कलाएँ और उनका विकास, जयपुर, 1973

29. राम पांडे : राजस्थान का इतिहास, भाग 1 व 2, कुणाल प्रकाशन, जयपुर, 1982

30. बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का इतिहास, प्राचीनकाल से 1956, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

31. एच.बी. पॉल : टेम्पल ऑफ राजस्थान, अलवर, जयपुर प्रकाशन, 1969

32. फर्ग्यूसन बर्गेस : हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर Volume I-II लंदन, 1920

33. पर्सी ब्राऊन : इंडियन आर्किटेक्चर (इस्लामिक पीरीयड), मुंबई, 1955

34. ए.एल. बाशम : वंडर देट वॉज इंडिया, Vol. I , लंदन, 1987

35. जे.एन बेनर्जी : डवलपमेंट ऑफ हिन्दू आईकोनोग्राफी, कलकत्ता, 1956

36. वी.एस. भार्गव :

    (i) राजस्थान का इतिहास, किरण पब्लिकेशन्स, अजमेर 1999

    (ii) राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, किरण पब्लिकेशन्स, अजमेर, 1999

37. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1997

38. सूत्रधार (ले.) मंडन : जैन पं. भगवानदास (अनु. व सं.) प्रासाद मंडन, जयपुर 1963.

39. एल.पी. माथुर : फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंग होल्डस ऑफ राजस्थान, न्यू देहली, 1989

40. सर जॉन मार्शल : मोहनजोदड़ो एण्ड इन्डस वेली सिविलाईजेशन, लंदन, 1931

41. बलदेव मिश्रा एवं अन्य : टॉडकृत बीकानेर राज्य का इतिहास यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1987

42. कृष्णदास राय : भारतीय मूर्तिकला, वाराणसी, 1973

43. अनिल कुमार रावत, मुगल साम्राज्य में मनसबदारी प्रथा, दिल्ली 1990

44. गायत्री वर्मा : कालिदास के ग्रंथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति, वाराणसी, 1963

45. हरिशचंद्र वर्मा : मध्यकालीन भारत (भाग 1 व 2) दिल्ली, 1983

46. के.डी. वाजपेयी :

(i) भारतीय कला, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

(ii) भारतीय वास्तुकला का इतिहास, लखनऊ

47. सत्यकेतु विद्यालंकार : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, मैसूर, 1956

48. जी.एच. शर्मा :

(i) ऐतिहासिक निबंध, जोधपुर, 1970

(ii) राजस्थान का इतिहास, भाग–1, आगरा, 1980

49. डी.एन शुक्ल :

(i) राजनिवेश एवं राजसी कलाएँ यंत्र एवं चित्र, लखनऊ, 1967

(ii) प्रतिभा विज्ञान, लखनऊ, 1956

50. स्मिथ : ऑक्सफोर्ड हिस्ट्र ऑफ इंडिया।

51. बी.ए. स्मिथ : हिस्ट्री ऑफ फाईन आर्ट्स इन इंडिया एण्ड सीलोन, ऑक्सफॉर्ड, 1930

52. आशुतोष सक्सेना : राजस्थान का ऐतिहासिक पुरातत्त्व, साहित्यगार, जयपुर, 1998

53. सतीशचंद्र :

(i) मोहनजोदड़ों व सिंधु सभ्यता, काशी, 1998

(ii) हिस्ट्री ऑफ आर्किटेक्चर एवं एन्शियेंट बिल्डिंग मेटेरियल इन इंडिया, भाग–I व II दिल्ली, 2003

54. एच.डी. साँकलिया : बिगनिंग ऑफ सिविलाईजेशन इन राजस्थान, सेमिनार रिपोर्ट, उदयपुर, 1981

55. चन्द्रमणि सिंह : राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर

56. लल्लन सिंह : रामायण कालीन युद्धकला, आगरा।

57. भगवान सिंह : हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, दिल्ली, 1987

58. राजकिशोर सिंह एवं उषा यादव :

(i) भारतीय वास्तुकला, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1975

(ii) प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1982

59. ई.बी. हावेल : इंडियन आर्किटेक्चर, लंदन, 1927
60. कजिन्स हेनरी : दि आर्किटेक्चर एण्ड एंटीक्वीटीज ऑफ वेस्टर्न इंडिया, लंदन, 1926
61. आर.एस. त्रिपाठी : प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1951
62. गोपानी नाथ शर्मा : राजस्थान सांस्कृतिक इतिहास, 2007
63. नीलिमा वशिष्ठ : राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा
64. जयसिंह नीरज, भगवतीलाल शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, बीसवां सं.
65. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' : ललितकला के आधारभूत सिद्धान्त, द्वि.सं.
66. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' : भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राज. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2009
67. रवि साखलकर : कला के अन्तर्दर्शन, द्वितीय संस्करण
68. रवि साखलकर : कला कोश, द्वितीय संस्करण
69. प्रेमचन्द्र गोस्वामी : राजस्थान संस्कृति कला एवं साहित्य, च.सं.
70. रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पंचम संस्करण
71. विजयेन्द्र कुमार माथुर : ऐतिहासिक स्थानावली
72. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, 2011
73. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास भाग–1, आगरा, 1980
74. राकेश प्रकाश पाण्डेय : भारतीय पुरातत्त्व, 1989
75. विमल चन्द्र पाण्डेय : प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग–1
76. शिवकुमार गुप्ता : भारतीय संस्कृति के मूलाधार
77. जयनारायण पाण्डेय : पुरातत्त्व विमर्श, इलाहाबाद, 1988

78. इन्दुमती मिश्र, प्रतिभा विज्ञान, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1987

79. ए.के. मित्तल : भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (सिन्धु सभ्यता से 1206 ई), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003

80. कीलहॉर्न : एपीग्राफिया इंडिया, जिल्द 1

81. कृष्ण देव : Temple of India, Vol. I Text & Vol. II Plates, Aryan Books International, New Delhi, 1994

82. जयशंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2002

83. दामोदर धर्मानंद कोसंबी : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2002

84. परमेश्वरी लाल गुप्त : भारतीय वास्तु कला, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1999

85. रमानाथ मिश्र : भारतीय मूर्तिकला, 1978

86. रमानाथ मिश्र : भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा.लि. दिल्ली, 2002

87. राधा कुमुद मुखर्जी : हिन्दू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

88. रोमिला थापर : भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

89. विमलचन्द्र पाण्डेय : प्राचीन भारत का इतिहास (भाग–2), अभय प्रेस, मेरठ, 1987–88

90. विमलचन्द्र पाण्डेय : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (भाग–2), सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2001

91. वासुदेव विष्णु मिराशी : कार्पस इन्सक्रप्शन इन्डी केरम – जिल्द iv , इन्सक्रप्शन ऑफ द कल्चूरी चेदि इरा, भाग–1, गवर्मेन्ट एपीग्राफिस्ट फॉर इंडिया, ऊटकमण्ड, 1955

92. शशिबाला श्रीवास्तव : भारतीय मंदिर एवं देवमूर्तियां, रामानंद विद्याभवन, कालकाजी, दिल्ली, 1989

93. सच्चिदानंद सहाय : मंदिर स्थापत्य का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1981

94. श्री कृष्णा ओझा : भारतीय पुरातत्त्व

95. प्रभात कुमार मूजमदार : भारत के प्राचीन अभिलेख

(C) गजेटियर, पत्र–पत्रिकाएँ

I गजेटियर –

1. Rajasthan District Gazzetteers, Baran, (1997) Directorrate District Gazetteers, Government of Rajasthan, Jaipur.

II समाचार पत्र

2. योगेशचन्द्र शर्मा, दैनिक नवज्योति, कोटा (राज.) 10 फरवरी, 2010

III पत्र–पत्रिकाएँ

3. पत्रिका ईयर बुक (2012), राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर

परिशिष्ट–1

भारतीय प्रतिमाओं में अंकित विभिन्न मुद्रायें

धर्म, तंत्र और नृत्यकला के प्रभाव के कारण भारतीय मूर्तिकला के कुछ विशेष नियम विकसित हुए हैं। इन नियमों के अनुसार मूर्तियों को खड़ी, बैठी व लेटी स्थितियों में दिखाया जाता है।

खड़ी मूर्तियाँ :–

इस स्थिति को 'स्थान' कहा जाता है। इसकी निम्न स्थितियाँ होती हैं–

- **भद्रासन :–** पैरों को खोलकर सीधे खड़े होना।
- **समभंग :–** बिल्कुल सीधे खड़े होना जिसमें शरीर में कोई भी भंग न हो। हाथ व पैर सीधे व शरीर के दोनों भाग एक समान हों। इसे वज्रासन, दण्डासन अथवा खड़गासन भी कहा जाता है।
- **अभंग :–** शरीर की स्थिति समभंग की भाँति ही, परन्तु एक घुटना आगे की ओर मुड़ा हुआ।
- **त्रिभंग :–** शरीर में तीन अंग हों। यथा– सिर एक ओर, वक्ष से कटि तक का भाग अन्य दिशा में, कमर से नीचे का भाग पुनः दूसरी दिशा में। जैसे– कृष्ण को त्रिभंगी मुद्रा में बाँसुरी वादन करते दिखाया जाता है।
- **अतिभंग :–** शरीर में कई अंग दिखाये जाते हैं, जैसे– शिव–ताण्डव में।
- **शाल–भंजिका :–** इस मुद्रा में त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी स्त्री एक हाथ से शाल वृक्ष की शाखा पकड़े दिखाई जाती है। यह मुद्रा बुद्ध जन्म की प्रतीक भी मानी गई है। बुद्ध के जन्म के समय माया देवी शाल वृक्ष की शाखा पकड़ें थीं जिसके कारण इसे शाल–भंजिका मुद्रा कहा जाता है।

बैठी मूर्तियाँ :–

इसे 'आसन' भी कहा जाता है। इसकी मुख्य निम्न स्थितियाँ हैं–

- **पद्मासन** :– पालथी लगाये हुए, दोनों पैरों के तलवे ऊपर की ओर दिखाई दें तथा एक समान सीध में हों।
- **अर्धपद्मासन** :– पालथी लगाये हुए व एक पैर का तलवा ऊपर की ओर उल्टा दिखाया जाये।
- **ललितासन** :– इसमें एक पैर पालथी की स्थिति में हो जबकि दूसरे पैर का घुटना मुड़ा हुआ ऊपर आसन पर रखा हो तथा बायीं हथेली पर शरीर का बोझ हो।
- **महाराज लीलासन** :– कुर्सी पर एक पर लटकाये हुए व एक पैर ऊपर, शरीर कुछ लेटी हुई स्थिति में बायीं कुहनी पर स्थित हो।
- **मैत्रेयासन** :– कुर्सी या ऊँचाई पर बैठे दोनों पैर एक समान नीचे लटके हुए।
- **विश्राभासन** :– कुर्सी पर बैठकर एक पैर लटकाना, दूसरा पैर हाथ से पकड़ना।

लेटी हुई मूर्तियाँ :–

लेटी हुई स्थिति को 'शयन' कहते हैं।

शयन की स्थिति में प्रायः शेषशायी विष्णु, बुद्ध का परिनिर्वाण, यशोदा और कृष्ण, कौशल्या और राम तथा त्रिशला और महावीर आदि का चित्रण मिलता है।

अरूप व सरूप मुद्रायें :–

मुद्रायें दो प्रकार की होती हैं– अरूप तथा सरूप। अरूप मुद्राओं से किसी भाव अथवा क्रिया की व्यंजना की जाती है। इनमें हस्त मुद्रायें प्रमुख हैं। सरूप मुद्राओं में आयुध आदि लिए हुए दिखाया जाता है।

हस्तु–मुद्रायें :–

मूर्ति अथवा चित्र की भाषा मूक होती है। परन्तु हस्तमुद्राओं, शरीर की भंगिमा, वेशभूषा तथा वातावरण के माध्यम से भावों की व्यंजना की जाती है। सबसे अधिक महत्व हस्त–मुद्राओं का होता है। कुछ विशेष हस्त–मुद्रायें निम्न प्रकार से हैं–

- **ध्यान मुद्रा :–** पद्मासन लगाये, दोनों हाथ गोद में रखें, हथेलियाँ ऊपर की ओर व ध्यानमग्न अवस्था।

- **अभय मुद्रा :–** पद्मासन लगाये, बायाँ हाथ गोद में और दाहिना हाथ हथेली सामने की ओर किये हुए सीने के समान्तर उठा हुआ।

- **भूमिस्पर्श मुद्रा :–** पद्मासन लगाये, बायाँ हाथ उसी प्रकार गोद में हथेली ऊपर की ओर व दाहिने हाथ की तर्जनी उंगली भूमि की ओर संकेत करती हुई।

- **धर्म–चक्र–प्रवर्तन मुद्रा :–** इसमें बुद्ध के दोनों हाथ सीने तक उठे हुए और एक हथेली सामने की ओर, एक हथेली अन्दर की ओर, दोनों हाथों की तर्जनी तथा अंगूठे की स्थिति इस प्रकार मानो धागा पकड़े हों या हाथ से चक्र पकड़े हों और दूसरे से उसकी परिधि घुमा रहे हों। यह बुद्ध द्वारा सारनाथ में प्रथम उपदेश द्वारा बौद्ध धर्म का चक्र आरम्भ करने की प्रतीक मुद्रा है। इसीलिए यह धर्म–चक्र–प्रवर्तन मुद्रा कहलाती है।

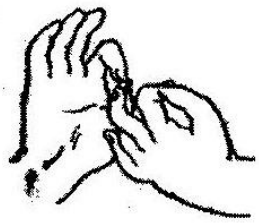

- **वरद मुद्रा :–** खड़ी अथवा बैठी मूर्ति का दाहिना हाथ कुछ आगे रहता है, हथेली खुली रहती है तथा अंगुलियाँ सटी हुई नीचे की ओर आधी–मुड़ी हुई रहती हैं। इसके माध्यम से वरदान देने की क्रिया दर्शायी जाती है।

- **व्याख्यान तथा वितर्क मुद्रा :–** दाहिने हाथ की तीन अंगुलियाँ (मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा) ऊपर की ओर सीधी रहती हैं तथा तर्जनी और अंगूठे को मिला देने पर वृत्त जैसा आकार बनता है जो पूर्णता का प्रतीक है।

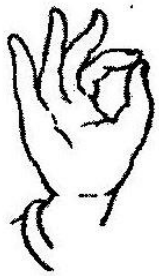

- **ज्ञान मुद्रा :–** (वज्र, मुद्रा, बोधश्री मुद्रा) इसमें बायें हाथ की शेष अंगुलियाँ तथा अंगूठा बन्द दिखाये जाते हैं तथा तर्जनी सीधी–खड़ी रहती है जिसे दाहिने हाथ की मुट्ठी से बन्द कर लेते हैं। यह ज्ञान की सर्वोच्चता की प्रतीक है। इससे वज्र की आकृति बन जाती है। अतः इसे वज्र मुद्रा भी कहा जाता है।

- **अंजलि मुद्रा :–** इसमें दोनों हाथ जुड़े रहते हैं मानो प्रार्थना कर रहे हों।

- **पुष्प पुट** :– इस मुद्रा में दोनों हाथ इस प्रकार मिले रहते हैं मानों हाथों में पुष्प आदि लेकर देवता को समर्पित करने वाले हों अथवा देवता से याचना कर रहे हों।

- **बुद्ध पात्र मुद्रा** :– इसमें बायें हाथ की हथेली को इस प्रकार दिखाते हैं मानों उस पर कोई पात्र रखा हो। इसके ऊपर दाहिनी हथेली ऐसी स्थिति में रखते हैं मानो उस पात्र को ढंक रहे हों। इसके द्वारा यह व्यक्त किया जाता है कि जो सत्य को नहीं जान पाता वह नियम के बन्धन में बन्द हो जाता है।

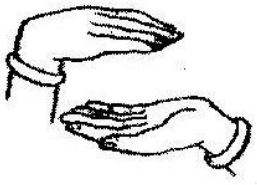

- **गोपन मुद्रा** :– इसमें बायें हाथ की मुट्ठी बनाकर सीधे हाथ से ढंकी दिखाते हैं (जैसे दीपक को बुझने से रोकना) यह किसी रहस्य को छिपाने का भाव व्यक्त करती है।

- **वृषभासन मुद्रा** :– इसमें खड़े हुए शिव का एक हाथ कुहनी से आगे की ओर मुड़ा हुआ इस प्रकार दिखाते हैं मानो वह वृषभ (नन्दी) की पीठ पर

रखा हो। खड़े हुए शिव के शरीर में भी इस प्रकार की भंगिमा दिखाई जाती है मानो के वृषभ का थोड़ा–सा सहारा लिए खड़े हैं।

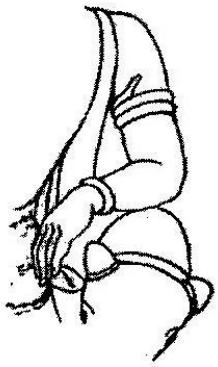

आसन–वस्तु :–

जिस वस्तु या वाहन पर किसी आकृति को बैठा या खड़ा दिखाते हैं उसे ही 'आसन–वस्तु' कहते हैं। भारतीय मूर्तियाँ चौकी, सिंहासन, चटाई, गज, मृग अथवा व्याघ्र चर्म, कमल, शिला, पद्म पत्र, सुमेरु, पशु (हाथी, सिह, अश्व, वृषभ, महिष, मृग, मेढ़ा, शूकर, गधा व शार्दूल आदि), पक्षी (मयूर, हंस, उलूक, गरुड़ आदि), जलचर (मकर, मीन, कच्छप आदि) पर बैठी हुई अथवा खड़ी हुई अंकित की जाती है।

आयुध :–

आयुधों के माध्यम से प्रतिमाओं के गुण अथवा शक्ति प्रदर्शित की जाती है। किसी देवी प्रतिमा के अनेक गुण प्रकट करने की दृष्टि से हाथों की संख्या भी बढ़ायी गई है। इन हाथों में जो वस्तुएँ दिखाते हैं वे किसी शक्ति, क्रिया या गुण की प्रतीक होती हैं। मुख्य रूप से ये आयुध निम्न प्रकार हैं–

आयुध	**प्रतीकता**
पात्र	औषधि, भिक्षा
परशु	रक्षा, बन्धनमोक्ष
घण्टा	क्षण–भंगुरता
धनुष–बाण	प्रेम, एकाग्रता, बुद्धि, काम
शंख	नियम, धर्म, विधि
चँवर	गरिमा, उच्चता, आध्यात्म–संकेत

मणि (चिन्तामणि)	वैभव, सम्पन्नता, मन, आत्मा
त्रिशूल	शक्ति, अधिकार, मन–वचन–कर्म, इच्छा–ज्ञान–क्रिया, अग्नि–स्वर्ग–पृथ्वी
पद्म	पृथ्वी, निर्लिप्तता, पवित्रता, करुणा, सहानुभूति, ज्ञान की शुभ्रता, ग्रीष्म, सफलता, आध्यात्मिक तथा लौकिक शक्ति, नारी,तत्त्व, योनि, वरदान

आयुध	**प्रायिकता**
दर्पण	निःसारता, प्रतिबिम्ब, सूर्य, भौतिक भ्रम, आत्म–मुग्धता
कन्दुक	प्राकृतिक नियम, माया की क्रीड़ा
पाश	बन्धन, करुणा का बन्धन, प्रेम–पाश
माला	108 विषय, 108 देव
माला–सूत्र	सत्य का आधार, वस्तुओं के अन्तरंग में छिपा हुआ शाश्वत सत्य
पुस्तक	ज्ञान, धर्मग्रन्थ
खड्ग	तप, अज्ञान का नाश, धर्म की शक्ति, विवेक, चातूर्य, प्रज्ञा
वज्र अथवा गदा	कठोरता, नियम, दृढ़ता, लिंग, विजय, धर्म, सर्व–शक्तिमत्ता
कलश	सत्य, मदिरा, द्रव, जल, अमृत, निधि
चक्र	पाप–नाश, बन्धन–मुक्ति, धर्म–प्रवर्तन
सर्प	प्रकृति की भयंकर शक्ति, पुनर्जन्म, राजसी तत्व
वंशी	माया
शुक	प्रेम
अग्नि–पात्र	पाप नाश, संहार

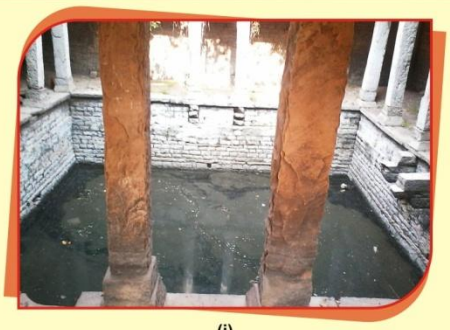

(i)

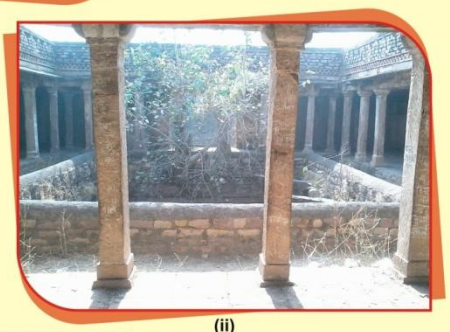

(ii)

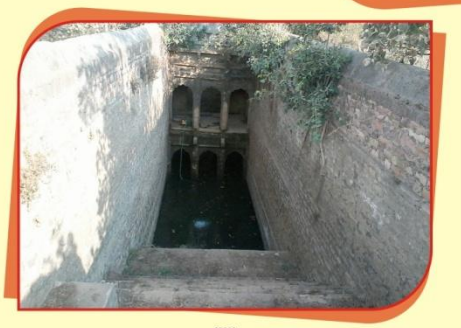

(iii)

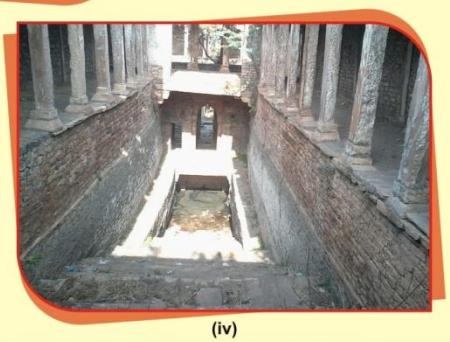

(iv)

(1)

(v)

(vi)

(2)

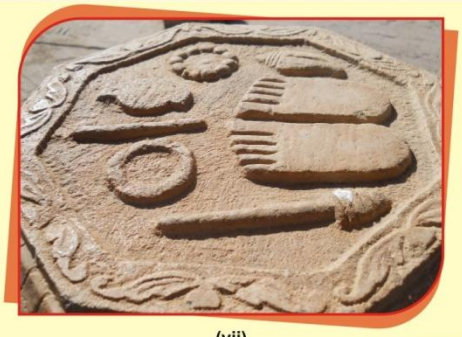

(vii)

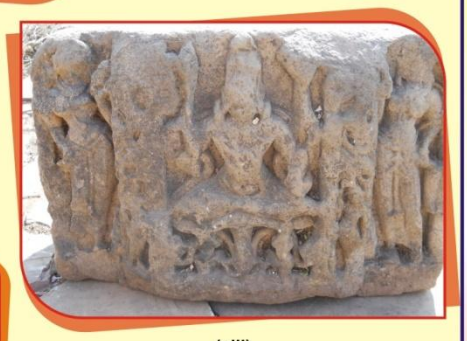

(viii)

(ix)

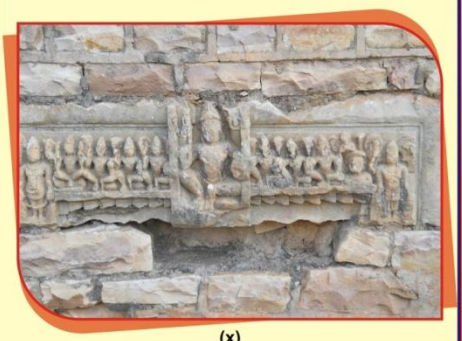

(x)

(3)

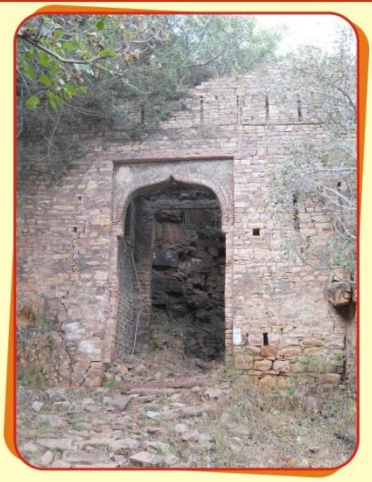

(xi)

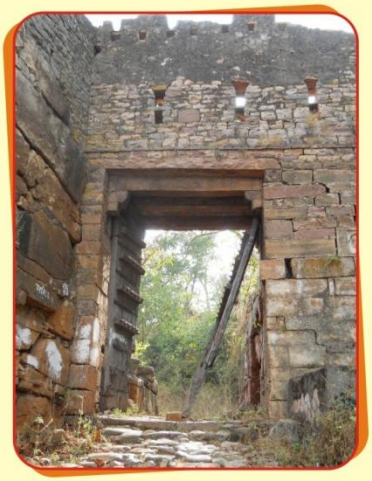

(xii)

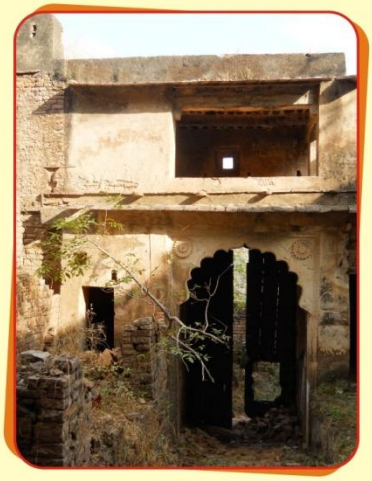

(xiii)

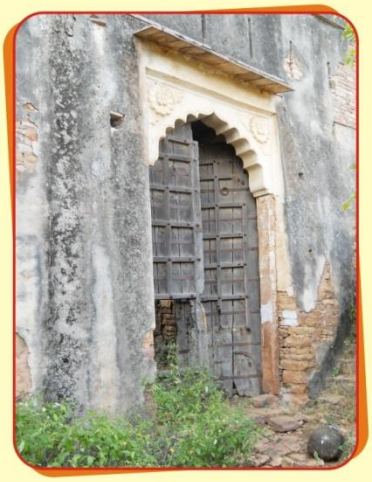

(xiv)

(4)

(xv)

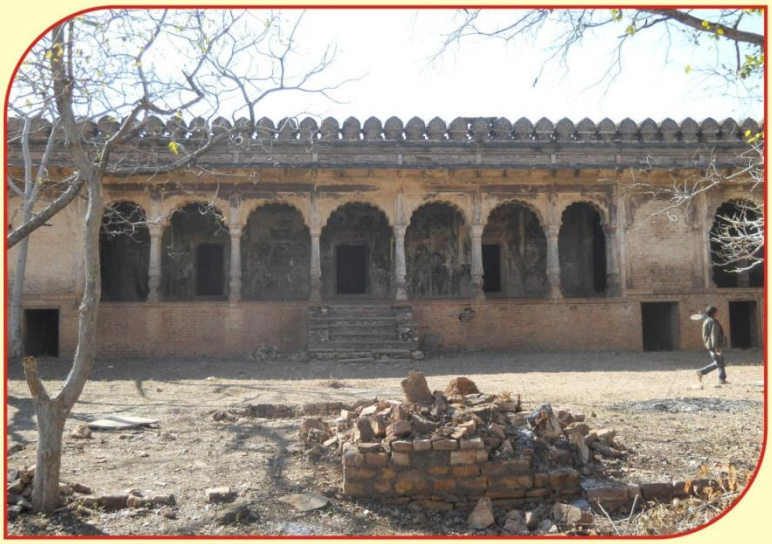

(xvi)

(5)

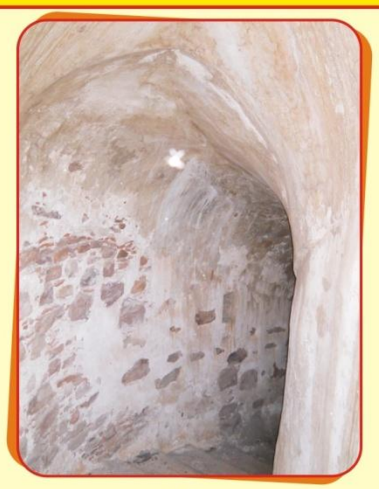

(xvii)

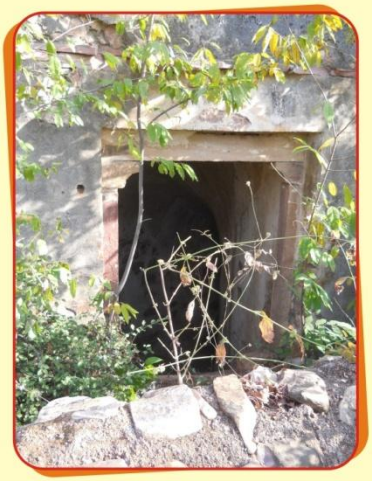

(xviii)

(xix)

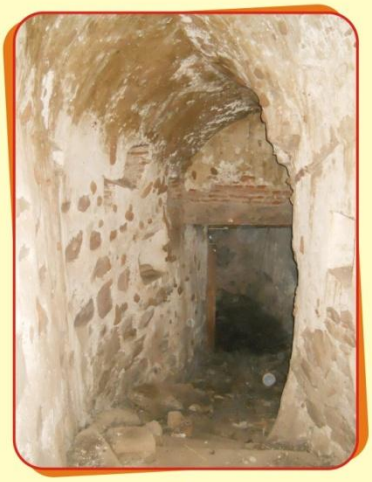

(xx)

(6)

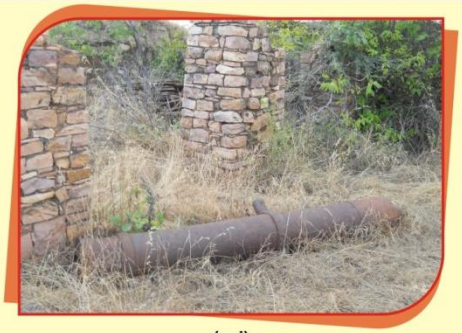

(xxi)

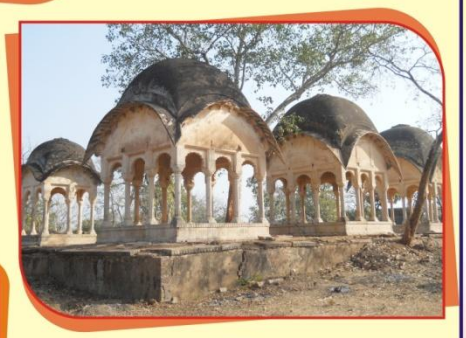

(xxii)

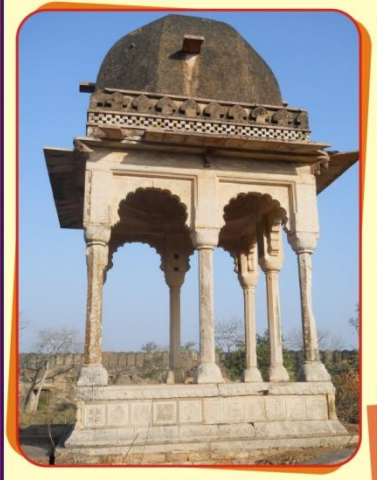

(xxiii)

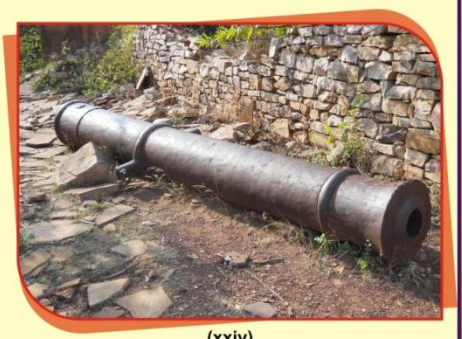

(xxiv)

(7)

(xxv)

(xxvi)

(8)

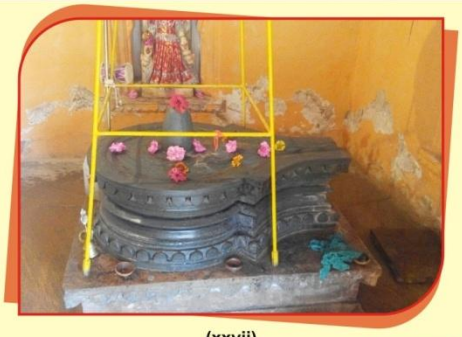

(xxvii)

(xxviii)

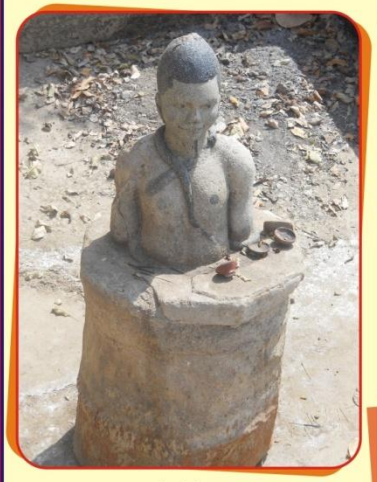

(xxix)

(xxx)

(9)

(xxxi)

(xxxii)

(10)

(xxxiii)

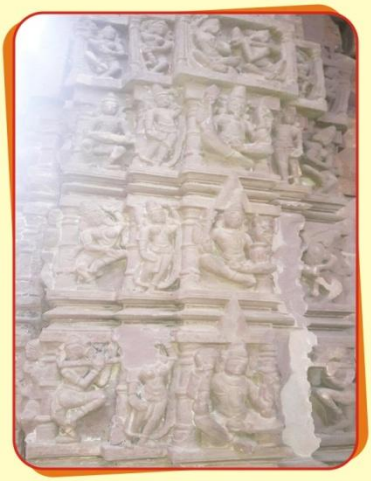

(xxxiv)

(xxxv)

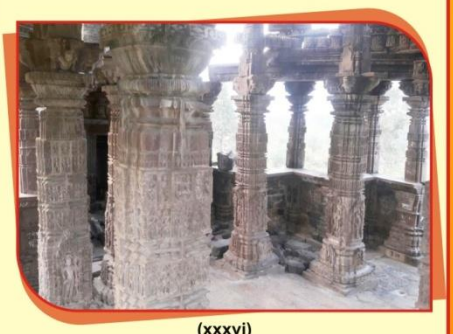

(xxxvi)

(11)

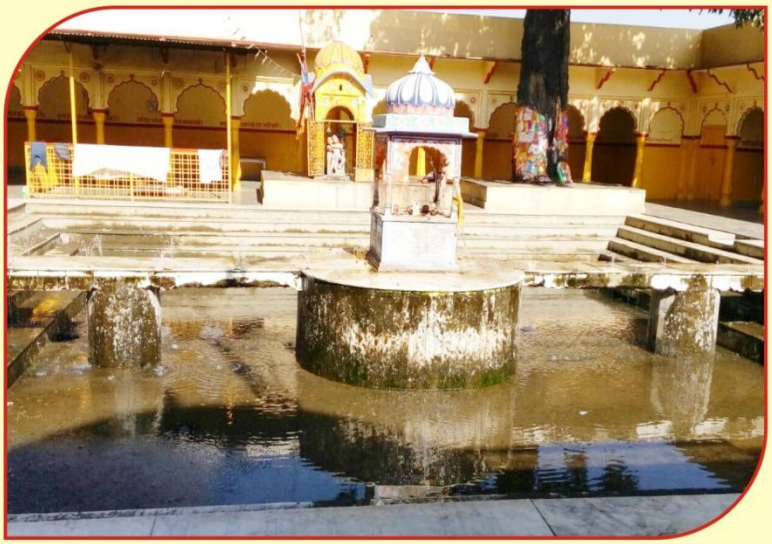

(xxxvii)

(xxxviii)

(12)

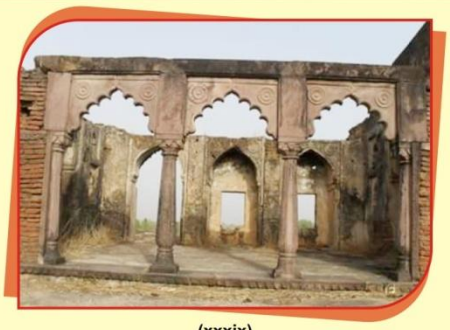

(xxxix)

(xxxx)

(xxxxi)

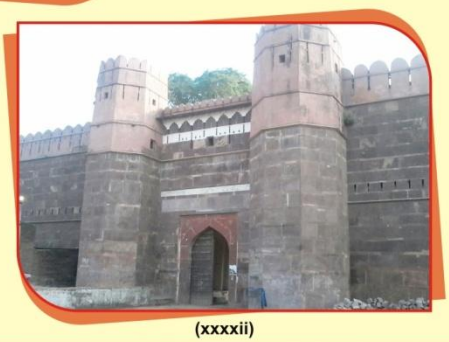

(xxxxii)

(13)

(xxxxiii)

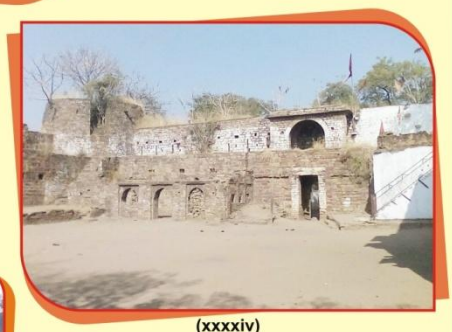

(xxxxiv)

(xxxxv)

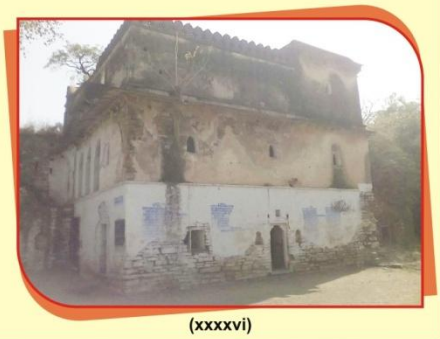

(xxxxvi)

(14)

(xxxxvii)

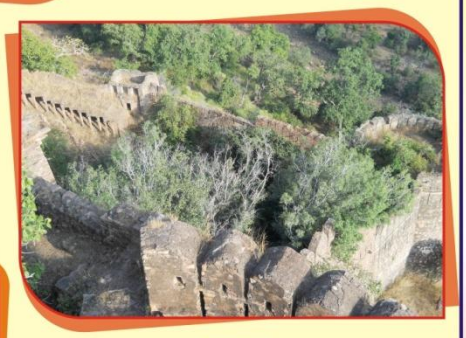

(xxxxviii)

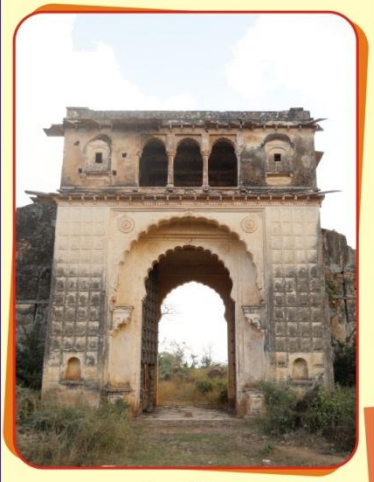

(xxxxix)

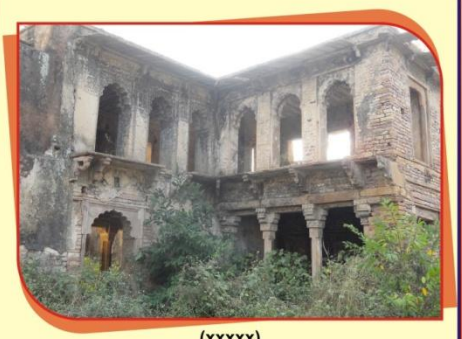

(xxxxx)

(15)